# *सप्तभंगीतरंगिणी प्रवचन*

प्रवक्ताः
(अध्यात्मयोगी,न्यायतीर्थ,पूज्य श्री 105 क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी)

## वंदित्वा सुरसन्दोहवन्दाघ्रिसरोरूहम्।
## श्रीवीरं कुतुकात्कुर्वे सप्भंगीतरंगिणीम्।।1।।

सप्तभंग तरंगों के अधिगम की आवष्यकता का आधार—ग्रन्थकार मंगलाचरण कर रहे है कि देव समूहों से वंदनीय है चरणकमल जिसके ऐसे श्री वीर भगवान को नमस्कार करके सहज अनायास ही सप्त्भंगी तरंगिणी को बनाता हूँ इस ग्रन्थ की रचना का आधार क्या है? क्यो इस ग्रन्थ रचना की आवष्यकता हुई है ? इन सब बातो जानने के लिये तत्वार्थसूत्र के एक सूत्रपर दृश्टि दीजिये— ''प्रमाणनयैरधिगमः'' इस सूत्र की उत्थानिका मे यह समझना चाहिये कि संसार के सब जीव दुखी है,जन्म—मरण की परम्परा मे संकट पा रहे है। इन जीवों को संकटो से मुक्ति आवष्यकता है। इन संकटो से मुक्ति यह जीव तभी पा सकता है जब की संकट रहित,वैभवसहित,समृद्ध अपने आप के स्वरूप का परिज्ञान कर सके। ऐसे सहज आत्मस्वरूप का परिज्ञान करने के लिये यह आवष्यक है कि इसके प्रतियोगी इस समस्त जगत के स्वरूप की सही जानकारी की जाये। इसी का प्रयोज्य बताया गया सम्यग्दर्षन—कि प्रयोजनभूत जीवादिक 7 तत्वो का श्रद्धान करना सम्यग्दर्षन है। उन तत्वों का परिज्ञान कैसे हो ? इसके लिये सूत्रकार ने कहा है—'प्रमाणनयैरधिगमः' सो इसकी व्याख्या सुनिये। अधिगम तो यहाँ कर्ता कारक है और प्रमाण नय ये करणकारक है। समस्त तत्वार्थो का परिज्ञान प्रमाण और नयो से होता है। तो सर्वप्रथम अधिगम की बात सुनो ! अधिगम के मायने है समझ। अधिगम दो प्रकार से होता है—एक स्वार्थ और दूसरा परार्थ। एक ऐसा जानना कि हम खुद जान गए उसे हम कहना नहीं चाहते अथवा कह भी नहीं सकते। इस तरह का अपने आपमें जो परिज्ञान हो वह तो है स्वार्थ अधिगम। स्व मायने खुद के अर्थ मायने प्रयोजन के लिये। जो खुद के लिये जानना होता है उसे स्वार्थ अधिगम कहते है। दूसरा होता है परार्थ अधिगम—जो अधिगम समझ दूसरे के लिये की जा रही है अर्थात् दूसरे लोग भी समझ जायें,ऐसे प्रयोजन के लिये जो जानना किया है और उसकी प्रवृति की जाती है याने जो अधिगम हुआ उसे कहते है परार्थ अधिगम।

**स्वार्थाधिगम व परार्थाधिगम के प्रकार**— स्वार्थ अधिगम और परार्थ अधिगम ये दोनो प्रमाण और नयो से जाने जाते है। स्वार्थाधिगम तो ज्ञानात्मक है और परार्थाधिगम यह षब्दात्मक है। इसके द्वारा बात हम समझकर दूसरों को समझाने के लिये चलते है। तो दूसरे लोग समझ जायें उसका उपाय क्या है ? कुछ षब्दों से ही तो कहेंगे। दूसरों को समझाने के लिये हम प्रयत्न क्या करेंगे ? कुछ षब्द ही बोलेंगे,जिससे वे समझ जायें। तो परार्थां होता है षब्दस्वरूप। तो स्वार्थाधिगम जो केवल ज्ञानात्मक है जिसका प्रयोजन खुद की ही जानकारी सन्तोश आदिक विकास करना हैं, उसमें तो विकल्प नहीं है और कुछ वाह्म में उसका व्यवहार नहीं होता है, वह तो खुद की समझ के लिये है। अब जो परार्थाधिगम कहा गया है कि दूयरों को प्रतिबोध देने के लिये अधिगम करना, जानकारी करना, वह है षब्दरूप, तो यह परार्थाधिगम दो प्रकार का है— प्रमाणात्मक और नयात्मक।

षब्द द्वारा जो हम दूसरों को समझाने के लिये प्रवृति करेंगे,ऐसा वह षब्दरूप अधिगम दो प्रकार का है– प्रमाणात्मक अधिगम उसे कहते है कि समस्तरूप से तत्वार्थ का जानना होता है वह है प्रमाणात्मक और जो एकदेष रूप से तत्वार्थ का जानना होता है वह है नयात्मक। तो प्रमाणात्मक और नयात्मक यह दो प्रकार का जो अधिगम है, भेद है 7 रूपों में प्रवृत होता है। कुछ भी बात हो, जहाँ कहा तो वहाँ 7 भंग अपने आप आ जाते है क्योकि कहने में विधि और प्रतिशेध की प्रधानता होंगी। जब तक उसमें विकल्प नहीं, उसका कोई भंग नहीं। जहाँ कुछ दूसरो के समझाने की विधि मे जानकारी की तरंग बनी है वहाँ ही भंग बनती है। तो यह दो प्रकार का भी भेद 7 प्रकार से युक्त होता है विधि और प्रतिशेध की प्रधानता मे। बस,यह ही प्रमाण सप्तभंगी है और नय सप्तभंगी है।

**स्पतभंगों का विवरण** – 7 भंगों का वाक्य का जो समूह है उसे सप्तभगी कहते है। वे वाक्य है कौन ? 'स्यात् अस्ति एव घटः' याने घट है, किसी अपेक्षा को चित्त मे रखकर कहा जा रहा हे कि घट है। दूसरा भंग है–'स्यात् नास्ति एव घटः' घट को छोडकर अन्य पदार्थो को निरखते हुए जब ध्यान मे आ रहा है बाकी सब पदार्थ ये नही है जिस घट को स्यात् अस्ति बताया गया है वह घट अन्य पदार्थो की अपेक्षा से नहीं है, ऐसे निशेध की प्रधानता से भी पकड होती है। तो तब ये दो दृश्टियाँ आयी। किसी भी पदार्थ को निरखकर यह है, और यह अन्य नही है, ये दो बातें दृश्टि मे आती है, जानने मे भी यो दो बनी हुई है भले ही हम उसका प्रयोग न करे लेकिन जानकारी बराबर इसी ढग से होती है। स्यात् अस्ति एव घटः– यह अन्य पदार्थ नही है जब इन दो प्रकार की जानकारीयाँ हुई तो एक जिज्ञासा होती है तो आखिर एक षब्द मे बतलाओ कि असलियत क्या है ? जैसे घट स्वरूप से है, पररूप से नही है। जब ये दो बाते ध्यान मे आ रही तो असली बात एक षब्द मे बताओ ? तो उस समय यह ज्ञान होता है कि यो तो अवक्तव्य है वह घट। एक षब्द मे उसके समस्त अंगो को भंगो को संगो को बता सके इस षब्द का काम नही है। तब तृतीया भंग निश्पन्न होता है कि स्यात् अवक्तव्य। यो तीन स्वतंत्र एकाकी भंग है। पदार्थ है– पदार्थ नही है, पदार्थ अवक्तव्य है। इन तीन भंगो के होने पर कुछ और विकल्प की ओर चलता है, कुछ और धर्म विवरण करना चाहता है। तो वहॉ भाव बनाता है कि घट स्यात् अवक्तव्य है और उसके साथ अस्ति नास्तिपना भी लगता है। तो जैसे अवक्तव्य के साथ स्वतंत्र भंग और लगे है इस तरह अवक्तव्य के बिना स्वतंत्र दो भंग भी लग गए। तब 7 भंग इस प्रकार बनते है कि कथंचित् घट है, कथंचित घट नही है, कथंचित घट अवक्तव्य है कथंचित घट है और नही है, कथंचित घट है और अवक्तव्य है, कथंचित घट नही है अवक्तव्य है और 7 वाँ भंग होता है कि कथंचित घट है, नही है, इस रूप से अवक्तव्य है। ऐसे इन 7 वाक्यो के समुदाय का नाम सप्तभंगी है।

**सप्तवाक्यो मे अधिगम की पर्याप्तता का कारण**– 7 वाक्यो मे अधिगम कैसे बना ? इसका कारण है सुनने समझने वाले के प्रष्न। प्रष्न करता के जो प्रष्न हुए उसका ज्ञान हो जाये, उसका समाधान हो जाये, यह तो एक प्रयोजन रहता ही है। तो उस प्रष्न के समाधान मे जो वाक्य कहा वह इन सप्तभंगो की ही बात है देखीये! समझना है एक पदार्थ को। उस पदार्थ मे अविरुद्ध नाना धर्मो का ज्ञान किया जाना है यद्यपि ये धर्म षब्दषः विरुद्ध जच रहे है लेकिन वे सभी धर्म एक वस्तु मे ही रह रहे है इस लिये वे अविरुद्ध कहलाते है। है और न, इन दोनो का स्वरूप तो विरुद्ध है। है का अर्थ विधि है, न का अर्थ निशेध है,स्वरूप यद्यपि इसके विरुद्ध है लेकिन ये सभी धर्म एक वस्तु मे रहते है इसलिये अविरुद्ध है। घट अपने स्वरूप से है, यह भी बात घट मे देखी जाती है और पररूप से नही है यह भी बात घट मे देखी जाती है। इस कारण ये दोनो धर्म परस्पर अविरुद्ध हो गए। तो ऐसे

अविरुद्ध विधि प्रतिशेध रूप नाना धर्म एक पदार्थ मे रहते है। उस पदार्थ के विषशण है, ऐसे ज्ञान को उत्पन्न करने वाले जो 7 वाक्यो का समुदाय है वही सप्तभंगी कहलाता है।

**सप्तभंगो के निर्माण मे प्राश्नित मे प्रश्न का आधारत्व** – यहाँ पर विचार करें तो बहुत सी बातों का स्पश्टीकरण होता है। प्रष्नकर्ता ने कोई प्रष्न किया तो उसके बाद उसके उत्तररूप ज्ञान होगा ना। तो उसके ज्ञान को उत्पन्न किसने किया ? प्रष्नकर्ता के प्रष्न ने । तो का जो प्रष्नज्ञान है उस प्रष्न के ज्ञान का कारण हुआ प्रष्न। तो प्रष्न जनक और प्रष्न ज्ञान है जन्य किसी षंकाकार ने कोई षंकी की और विद्वानो ने उसका समाधान किया। तो समाधान का जनक कौन हुआ ? प्रष्नकर्ता का प्रष्न और समाधान जन्य है। किसी षंकाकार का प्रष्न ही तो समाधान मिलने का कारण बनेगा। षंका का उत्तर दिया जा रहा है। तो उत्तर तो जन्य और षंका है जनक। षंका के उत्तर को षंका ने पैदा कराया। षंका की गई उसका मिला उत्तर। तो उत्तर। तो प्रष्न हुआ जनक और उसका जो उत्तर है वह है जन्य। तो यह समझना चाहिये कि जो 7 भंग उत्पन्न हुए है उन 7 भंगो को प्रष्नकर्ता के प्रष्न ने उत्पन्न किया है। प्रष्न भी 7 प्रकार से उत्पन्न हुआ करता है, अतएव समाधान भी 7 प्रकार के आये है प्रष्नकर्ता ने किया प्रष्न और प्रष्न मे क्या पुछा गया उसके ज्ञान से ही तो समाधान देने वाले को कहने की इच्छा हुई, और कहने की इच्छा होने पर वक्ता ने फिर वाक्यो का प्रयोग किया। कोई प्रष्नकर्ता प्रष्न करता है तो सुनने वाला यही तो कहता है कि मैं इसका समाधान कर दूं। जहां प्रष्नकर्ता के प्रष्न का समाधान करने की इच्छा जगी तो फिर वक्ता बोलने लगता है। तो यहां अब तक समझिये कि समाधानकर्ता ने जो वाक्य प्रयोग किया उसका जनक तो है वक्ता की विवक्षा। किसी ने प्रष्न सुन लिया और उसका जवाब देने की इच्छा न जगाये तो वह कुछ बोलेगा तो नही। वक्ता कुछ बोलेगा तो इसका कारण है विवक्षा, बोलने की इच्छा। अब बोलने की इच्छा समाधानकर्ता मे कैसे उठी ? एसका जनक है प्रष्नकर्ता का प्रष्न। प्रष्नकर्ता ने प्रष्न किया तो अब इस विद्वान ने यह इच्छा की कि मैं इसे जवाब दूं। इसके बाद वह जवाब देने लगता है। तो इस पद्धति में प्रष्न करने वाले के प्रष्न ज्ञान की प्रयोज्यता हुई, वह आधार बना अर्थात जो 7 प्रकार के वाक्य बोले गए हैं उसका कारण बना प्रष्नकर्ता के प्रष्न का ज्ञान और, फिर उस समाधान करने की इच्छा होने से यह विद्वान अब समाधान देने लगा तो 7 वाक्यों का निर्माण हुआ यों सप्तभंगी के निर्माण में प्रष्नकर्ता के प्रष्न का होना आधार है और उस प्रयोग म`अब ये 7 प्रकार के भंग हुए जिनको कि ऊपर बताया गया है।

**प्रकृतग्रन्थोक्त सप्तभंगी के लचण की अन्य आचार्यप्रणीत लक्षण से पुष्टि**
—सप्तभंगी का लक्षण आचार्यो ने इस प्रकार कहा है कि प्रष्न के वषसे एक वस्तु में अविरोध विधि और प्रतिशेध की कल्पना करना सो सप्तभंगी हे इस लखण मे जो 'प्रष्न के वष से' इतना षब्द दिया है इस षब्द से प्रयोज्यता प्रकट होती है अर्थात सप्तभंगी मे 7 ही भंग क्यो हुए ? उसका कारण और प्रयोजन प्रकट होता है कि प्रष्नकर्ता के प्रष्न 7 प्रकारो मे ही सम्भव है। इस बात को आगे कहेगे कि क्या 7 प्रकार के ही प्रष्न उठते है? कम उठकर ही रह जाये? या इससे अधिकउठें, ऐसा क्सोंनही होता ? इस समय तो इतना जानना है कि जो पदार्थो की जानकारी मे 7 प्रकार की नही हो रहे, फिर भी वज्ञतु के सम्बन्ध मे जानकारी करन मे 7 प्रकार की पद्धतियाँ बनती है उनका आधार है प्रष्नकर्ता के प्रष्न। यद्यपि किसी समय प्रष्नकर्ता नही भी है, प्रष्न भी नही हो रहे, फिर भी वस्तु के सम्बन्ध मे जानकारी करने मे 7 भंग बन जाते है। वहाँ भी यह अर्थ लेना कि चूंकि प्रष्न 7

प्रकार के ही हो सकते है तो कोई जानकारी भी 7 प्रकार की ही कर सकेगा। आचार्यो ने जो सप्तभंगी का लक्षण कहा है ध्समे बताया है विधि और और प्रतिशेध की कल्पना करना।

तो विधि और प्रतिशेध की कल्पना का भाव यह है कि हाँ अथवा ना बताने के प्रकार मे ज्ञान का उत्पन्न करना। और,यह विधि प्रतिशेध कल्पना भी अविरूद्ध रूप से है। विधि और प्रतिशेध का ऐसा खास वैषिश्ठय याने विषेशता इस षब्द से जोड दिया है कि देखो ! एक ही पदार्थ मे विधि और प्रतिशेध दोनो बराबर सम्भव है ओर ऐसा विदित भी होता है। यह विधि प्रतिशेध की कल्पना जो कि प्रष्नकर्ता के प्रष्न के आधार से हुई है और अविरूद्ध भाव से हुई है वह सब एक वस्तु मे होनी चाहिये। यो तो विधि प्रतिशेध नाना स्थलो मे नाना पदाथ्र के होता है, उससे कही सप्तभंगी न बन जायेगी। किन्तु एक ही पदार्थ मे अविरूद्ध भाव से विणि और प्रतिशेध का परिचय होना सो सप्तभंगी मे बनेगा। यों 7 वाक्यो मे जिसका समुदायपना र्प्याप्त होता है अर्थात का परिज्ञान की सम्पन्नता 7 प्रकार के वाक्यो मे निश्पन्न होता है ऐसा यह कल्पना के आधार भूत पदार्थ के बारे मे ज्ञान होता है।

**सप्तभंगी के लक्षण मे कहे गये अविरुद्ध शब्द की सार्थकता का विवरण** — अब सप्तभंगी के लक्षण मे जो विषेशण दिये गये है इन सबकी सार्थकता बताते है। सप्तभंगी का लक्षण प्रारम्भ मे यह किया गया है—''**एकवस्तुविशे□यकार्विद्धरुविधिप्रति□ोधात्मकधर्मप्रकारकबोधजनकसप्तवाक्यपर्यायप्त समुदायत्वम्**''इस उक्त लक्षण मे जो अविरुद्ध षब्द दिया है उसका प्रयोजन यह है कि प्रत्यक्ष अनुमान आदि से विरुद्ध विधि और प्रतिशेध पाले वाक्यो मे यह लक्षण न चला जाय सो इसकी अतिव्याप्ति रोकने के लिये अविरुद्ध षब्द दिया है। जो प्रत्यक्ष प्रमाण से विरुद्ध बैठता है ऐसा विधि प्रतिशेध एक वस्तु मे नही लगाया जा सकता। जैसे अविरुद्ध विधि और प्रतिशेध की कल्पना अथवा जानकारी की गई है वह अविरुद्ध है। उसमे प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणो से विरोध नही आता। ये ऐसे भंग एक पदार्थ मे लादे जाये कि जो परस्पर मे विरुद्ध हो तो वह पदार्थ का स्वरूप नही कहलायेगा। तो प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणो से विरुद्ध विधि प्रतिशेध वाले वाक्यो मे यह लक्षण नही जाता। जिस विधि और प्रतिशेध की जानकारी करायी जाये वह प्रमाण से विरुद्ध न होना चाहिये। जैसे कोई अग्नि को ही कहने लगे कि इसमे ठंडापन है और ठंडापन है नही अथवा गर्मी है, तो ऐसी विरुद्ध बाते पदार्थो मे नही बतायी जा सकती। अपेक्षा से सभी धर्म सम्भव है। एन धर्मो को बताया जाता है। वे धर्म परस्पर विरुद्ध है स्वरूप से लेकिन एक वस्तु मे रहते है। जैसे जीव के सम्बन्ध मे कहा गया है कि जीव नित्य है और जीव के ही सम्बन्ध मे बताया गया है। कि अनित्य है तो नित्य का स्वरुप और अनित्य का स्वरुप एक दूसरे से बिल्कुल उल्टा है। इसलिये स्वरुप दृश्टि से नित्य और अनित्यपने मे विरोध है। जो नित्यपना है सो अनित्यपना नही है लेकिन जीव मे द्रव्यदृश्टि से नित्यपना है और र्प्यादृश्टि से अनित्यपना है अतः इन दोनो का जीव पदार्थ मे विरोध नही आता। तो जो स्वरूप से विरुद्ध अनेक धर्म एक वस्तु मे अविरुद्ध रू से रहते है, उनकी जानकारी सप्तभंगी मे बतायी जाती है।

**सप्तभंगी के लक्षण मे एकवस्तुविशे□यक शब्द की सार्थकता** —अब अस सप्तभंगी के लक्ष्ण मे जो यह षब्द दिया गया है कि एक वस्तु विषेश्यक अर्थात विधि और प्रतिशेधकी निगरानी एक वस्तु के सम्बन्ध मे ही की जाती हे। इस षब्द के देने से बहुत सी विडम्बनाएं समाप्त की दी गई। घट है, घट नही है,यो भिन्न–भिन्न स्थलो मे भिन्न–भिन्न वातावरणो मे दोनो का प्रयोग भी होता है। जहाँ घडा है को बताना है घडा है किसी महल मे ! तभी किसी अन्य ग्राम मे किपडे की खोज हो रही थी, न मिला तो बता दिया कि कपडा नही है। अब एक जगह का घट है और दूसरी जगह का घट है और

दूसरी जगह का पट नही है इन दो मेल से सप्तभंगी न बनेगी। यह बात एक विषेश्यक षब्द से जाहिर होती है। अनेक वाक्यो के समुदा मे सप्तभंगी नहीं बनता, किन्तु एक ही पदार्थ के सम्बन्ध में अविरुद्ध विधि प्रतिशेध की जानकारी से सप्तभंगी बनता है।

**सप्तभंगी के लक्षण में सप्त शब्द की सार्थकता**— अब सप्तभंगी में जो सप्त षब्द दिया है कि कही दो ही वाक्यो मे स्याद्वाद की समाप्ति न हो जायेगी। जैसे कहा कि कथंचित घट है कथंचित घट नही है तो यो मात्र दो वाक्यो मे स्याद्वाद की सम्पन्नता नही बतायी जा सकती। तो केवल दो वाक्यो मे सप्तभंगी बन जाये इसके निवारण के लिये सप्त षब्द दिया है, कोई पुरुश केवल लौकिक रूप में एक ही वाक्य बोले—जैसे किसी को घट की जरूरत थी और वह कहता है कि घट लावो तो केवल एक उदासीन वाक्य को लेकर कोई इामे ही सप्तभंगी की समाप्ति करे तो यह बात नही बनती, इस कारण बताया गया है कि 7 वाक्यो की संगति हो तो सप्तभंगी की समाप्ति बनता है। इस प्रकरण मे एक विषेश बात यह समझना चाहिये कि लक्षण मे जो यह षब्द दिया गया है कि 'प्राष्निकप्रष्नज्ञानप्रयोजत्वेसति' इतना अंष यद्यपि अतिव्याप्ति अव्याप्ति इस दोश के निवारणकरने मे समर्थ नही है, तथापि यह विषेशण दिया गया है यह बताने के लिये कि सप्तभंगो का जो उत्थान हुआ है उसका आधार प्रष्नकर्ता का प्रष्न है। यह विषेशण देना आवष्यक हुआ है। इसका तात्पर्य है कि इतना कह देने मात्र से कि प्रष्नकर्ता के प्रष्नज्ञान की प्रयोज्यता पर सप्तभंगी होता है सो कही इतने मात्र से अतिव्याप्ति और अव्याप्ति दोशो का निवारण तो विचार विमर्ष के बाद किया जायेगा। प्रष्नकर्ता कुछ भी प्रष्न करे और उत्तर दे, वह उत्तर सही है अथवा नही उनमे किसी प्रकार का दोश नही आता, वे सब बाते तो प्रमाण के आधार पर है। प्रष्नकर्ता ने प्रष्न किया और उसका उत्तर दिया, इतने मात्र से निर्दोशता न समझ लेना चाहिये। निर्दोशता तो प्रमाण से साबित होगी। यहाँ तो बताने के लिये कि जिन्हे समझाया जाना है ऐसे षिश्यो के प्रष्न 7 प्रकार के ही सम्भव हो सकते है। इस कारण भंग 7 ही होते है। इस नियम की सूचना देने के लिये यह विषेशण दिया गया है।

**अधिगम मे सप्तभंग की संभवना** — सप्तभंगी के लक्षण के सम्बन्ध मे संक्षेप मे उक्त कथन के बाद अब यह जिज्ञासा होती है कि प्रष्नकर्ता के प्रष्न 7 प्रकार से ही क्यो सम्भव है ? समाधान यह है कि प्रष्नकर्ता के जानने की इच्छा 7 प्रकार मे ही बनती है। जैसे प्रष्नकर्ता जानना चाहता था कि जीव क्या नित्य है ? जीव क्या अनित्य है ? तो जैसे इन दो मोटी जिज्ञासाओ के बल पर इनका भंग बन जाता है ऐसे ही प्रष्नकर्ता कुछ विवेकी है, बुद्धिमान है, तो उसके ही प्रष्नो का विस्तार कितने प्रकारो मे हो सकता है ? तो वह अधिक से अधिक 7 प्रकार के ही सम्भव है। तो चूंकि जिज्ञासा 7 प्रकार की होती है अतएव प्रष्नकर्ता के प्रष्न 7 प्रकार के ही सम्भव है। प्रष्नकर्ता मे किसी पदार्थ के जानने की इच्छा हुई है उस इच्छा को व्यक्त करने पाले वाक्य जो हो उनका भी नाम प्रष्न है। जैसे किसी ने प्रष्न किया कि गौ, इस षब्द का वाच्य क्या है ? गौ षब्द का मतलब क्या है ? तो जैसे उत्तर दिया गया कि देखो जिसमे सास्ना लगी हो, पूछ लगी हो, जिसका कंधा विषाल हो, खुर और सींग हो आदिक अवयव करके जो विषिश्ट प्राणी हो उसका नाम गौ है। तो जब प्रष्नकर्ता ने यह पूछा कि गाय क्या होती है ? गाय को न जानने वाले पुरूश को वहाँ गाय के जानने की इच्छा हुई। जैसे कही उपदेष मे या लोकव्यवहार मे गाय की कुछ विषेशताये बतायी गई, उनको सुनकर गाय को न जानने को न जानने वाले पुरूश पूछ बैठते है कि गाय क्या चीज है ? बस उसका उत्तर उसके प्रष्न के अनुसार उत्तर देने वाला देता है। तो यो ही पदार्थ के सम्बन्ध मे प्रष्नकर्ता के जो प्रष्न हो सकते है वे 7 प्रकार के ही हो

सकते है। इस कारण उत्तर भी 7 प्रकार से दिया गया और उनसे जो 7 वाक्य बने उनके समुदाय का नाम सप्तभंगी है।

**सप्तभंगी के विधान मे प्रश्न, जिज्ञासा प्रश्नज्ञान व समाधान का सम्बन्ध** —पुरूश उत्तर देने वाला होता है वह कैसे समझे कि इस पुरूश को जानने की इच्छा क्या है ? वह तो उसके प्रष्न से ही जान जायेगा। इस कारण प्रष्नकर्ता का प्रष्न ही प्रष्नकर्ता की जिज्ञासा का प्रतिपादक है। प्रष्न करने वाले ने जो कुछ भी पूछा उस वाक्य से यह ध्वनित हुआ िकइस प्रष्नकर्ता की इस प्रष्नकर्ता को अमुक तत्व के जानने की इच्छा है।तब प्रष्नकर्ता का प्रष्न तो हुआ जनक और उत्तर देने वाले का ज्ञान हुआ जन्य। देखो उत्तर देने वाला अभी बडी षान्ति समता से बैठा हुआ था, ण्से कुछ मतलब नही था, खलबली नही थी, पर प्रष्नकर्ता ने कोई प्रष्न कर दिया तो उस प्रष्न को सुनकर उत्तर दाता की वृत्ति मे परिवर्तन हुआ। इतना तो वह तुरन्त समझ गया कि अमुक प्रष्नकर्ता अमुक पदार्थ को जानना चाहता है। अब भले ही उसके राग न हो इतना बताने का, न बताने का, न बताये, मगर जो सुना है उससे प्रष्नकर्ता के प्रष्न का ज्ञान तो हो ही गया, उत्तर अगर देगा तो उसी के अनुसार देगा। तब प्रष्नकर्ता का प्रष्न हुआ समाधान का जनक और समाधान हुआ जन्य। यो सप्तभंगी के लक्षण मे जो मुख्य बात कही गयी है कि एक वस्तु के सम्बन्ध मे अविरुद्ध विधि और प्रतिशेध को सिद्ध करने वाले ज्ञान को जो पैदा करे ऐसे 7 वाक्यो के समुदाय का नाम सप्तभंगी है सो यह लक्षण निर्दोश सिद्ध होता है।

**प्रश्नकर्ता की सप्तविध जिज्ञासा का कारण** —अब षंकाकार कहता है कि सप्तभंगी के लक्षण के विवरण मे जो यह कहा गया कि 7 भंग होने का कारण है प्रष्नकर्ता के 7 प्रकार के प्रष्न और प्रष्नकर्ता मे 7 प्रकार के प्रष्न हुए है उसका कारण है 7 प्रकार की जिज्ञासा अर्थात प्रष्नकर्ता को जानने की इच्छा 7 प्रकार के ज्ञान की हुई। सो ठीक है लेकिन प्रष्न यहाँ यह होता है कि प्रष्नकर्ता के मन मे जिज्ञासा 7 प्रकार से ही क्यो हुई ? इसके समाधान मे कहते है कि प्रष्नकर्ता को अथवा किसी भी समझदार को किसी एक धर्मी वस्तु के परिचय करने के सम्बन्ध मे संष्सय 7 प्रकार से ही उत्पन्न हो सकता है। अब यहाँ कोई पूछे कि संषय भी 7 प्रकार से ही क्यो होता है ? तो उसका उत्तर है कि संषयो के विशयभूत धर्म भी 7 प्रकार के होते है। ये धर्म वे ही है— कथंचित सत्व, दूसरा कथंचित असत्व, तीसरा क्रय से योजित उभय अर्थात सत्य व असत्य, चौथा अवक्तव्यपना,5 वाँ कथंचित सत्व सहित अवक्तव्य,छठा कथंचित असत्व सहित अवक्तव्यपना और 7 वाँ है क्रम से योजित उथय से विषिश्ट अवक्तव्यपना। यो धर्म 7 प्रकार के होते है अतः संषय 7 प्रकार से ही सम्भव है और जितने प्रकार से संषय सम्भव है उतनी जिज्ञासा होती है। जैसे किसी को संषय हुआ िकवह सीप है या चांदी है ? तो इस संषय मे दो कोटि है। इस संषय करने वाले पुरुश के चित्त मे दोनो जिज्ञासाये बन रही है— सीप हो तो सीप की बात समझ मे आ जाये, चांदी हो तो चांदी की बात समझ मे आ जाये ।तो जितनी कोटि के संषय होते है उतनी कोटि की जिज्ञासा हुई। इन जिज्ञासाओ के समाधान मे जो 7 वाक्य कहे गये उनके समुदाय का नाम सप्तभंगी है। इस तरह धर्म जो 7 वाक्य बताये गये उनके विशय उत्पन्न होने वाले संषय 7 ही है।

**प्रथम भंग की नि□पत्ति का आधार भूत प्रथम संशय** —उन 7 संषयो का विवरण करते है— जिन संषयो पर जिज्ञासा आधारित है और जिन जिज्ञासाओ पर सप्तभंग का विधान आधारित है उनमे प्रथम संषय है कि घट कथंवित है ही अथवा नही, याने या सर्वथा है। यहाँ संषय मे दो कोटियाँ बताई गयी है। किसी प्रकार के संषय मे कोटियाँ कम से कम दो होती है। यहाँ दो कोटि का संषय उपन्न हुआ है कि घट कथंचित है अथवा

घट कथंचित नही है याने क्या सर्वथा है ? इसके समाधान मे पहिला भंग बना कि घट कथंचित है। तो घटकथंचित है इस भंग की निश्पत्ति का कारण बना संषयज्ञान और वह संषयज्ञान इस रूप मे हुआ कि घट कथंचित है अथवा सर्वथा है। क्या बात है ? उसके समाधान मे प्रथम भंग बना कि घट कथंचित् है।

**प्रथम संशय के सम्बन्ध मे एक विचारधारा और उस पर शंका** – कोई संत कहते है कि यह प्रथम संषय घटविशयक अस्तित्व तथा घटविशयक नास्तित्व को विशयकरने वाला है। तब यहाँ संषय यह हुआ कि घट कथंचित् है अथवा घट कथंचित् नही है। उसके समाधान मे यह प्रथम भंग बना। इस प्रथम संषय की निश्पत्ति सुनकर इस संषय निश्पत्ति पर षंकाकार कहता है कि कथंचित् सत्व के अभाव का ही नाम कथंचित् असत्व है। तब यहाँ दो कोटियाँ तो नहीं हुई। इस कारण संषय का विशय यहाँ सम्भव नही है। इस संषय मे दो कोटियाँ बताई जा रही है – कथंचित सत्व और कथंचित असत्व। क्या है इनमे से ? यो संषय का रूप बनाया गया है। लेकिन संषय का रूप यो बन नही सकता। कारण यह है कि यहा तो दोनो ही धर्म रहे आते है। कथंचित सत्व है और कथंचित असत्व है। कथंचित सत्व के साथ कथंचित असत्व का कोई विरोध नही है। संषयज्ञान जो बनता है वह एक पदार्थ मे विरुद्ध नाना धर्मो का ज्ञान करने मे बनता है। पर, एक धर्मी मे नाना धर्म का ज्ञानमात्र होने से संषय नही बनता। जितने धर्म एक वस्तु मे एक साथ रह सकते है उनमे संषय की क्या बात ? जो दो बाते एक धर्मी मे विरुद्ध है उनका ज्ञान अथवा उनकी जिज्ञासा हो तो वहाँ संषय बनता है। घट मे यह घट कथंचित है, कथंचित नही है,घट आदिक अनेक पदार्थो के स्वरूप से नही है, यो अस्तित्व और नास्तित्व दोनो ही एक पदार्थ मे जब सम्भव है तब उसमे संषय की क्या बात ? यदि एक ही पदार्थ मे एक ही वाक्य मे प्रयोग और व्यवहार मे आने वाले वचन मे षब्द अनेक होने से संषय ज्ञान मान लिया जाये तो जब कोई यह कहे कि यह घट द्रव्य है तो लो, इस वाक्य मे यह षब्द कहकर उसमे घटपना और द्रव्यपना इन नाना धर्मो का ज्ञान बताया गया है। तो नाना धर्मो का ज्ञान करना मात्र यदि संषय ज्ञान करना तात्र यदि संषय बन जाय तो इस ज्ञान को भी कि यह घट द्रव्य है संषय बन जाना चाहिये। लेकिन ऐसा माना तो नही गया। तब फिर एक घट के सम्बन्ध मे यह कथंचित घट है अथवा कथंचित घट नही है इस ज्ञान को संषय ज्ञान कैसे कहा जा सकता है? इसका और खुलासा यो समझिये कि जैसे कोई बर्तन धूप मे रखा है, कब से रखा है, किसने रखा है, यह तो जानकारी नही है, मगर धूप मे रखा है। अब उसे उठाने का प्रयोजन है उस समय मे यह संषय होता है कि यह बर्तन गर्म है, या ठंडा ? तो गर्म और ठंडा होना ये दोनो परस्पर विरोधी धर्म है। इसलिये यहाँ संषय बन सकता है। मगर जो विरोधी धर्म नही है उन धर्मो का बयान करे कि यह घट पीला है,मजबूत है, इस कथन मे संषय की क्या बात है ? पीला होना,मजबूत होना दोनो धर्म एक मे सम्भव है। तो ऐसे ही कथंचित अस्तित्व और संषय की बात क्या हुई ? तो जब कथंचित है अथवा कथंचित घट नही है, यह संषय बन न सकेगा, तो प्रथम भंग की ही उत्पत्ति न हो सकेगी, क्योकि भंगो की निश्पत्ति का कारण संषय ज्ञान बताया गया।

**प्रथम संशय की एक विचारधारा पर हुई एक शंका का समाधान** – षंकाकार की उक्त षंका के समाधान मे कहते है कि जो यहा प्रथम संषय दिखाया गया है वहाँ संषय यह बनता है कथंचित अस्तित्व है या सर्वथा अस्तित्व है ? जहां प्रथम भंग बताया गया है कि घट कथंचित है, यह समाधान इस संषय के होने पर ही तो दिया गया है कि कोई संषय करे कि घट कथंचित है या सर्वथा है ? उसका उत्तर है प्रथम भंग। तो

अब देख लीजिये ! कि इस एक घट पदार्थ मे कथंचित अस्तित्व और सर्वथा अस्तित्व इन दोनो विरोधी धर्मो के प्रकार की जिज्ञासा बन रही है, और ये दोनो धर्म परस्पर विरुद्ध है। कथंचित अस्तित्व होना और सर्वथा अस्तित्व होना ये दोनो परस्पर विरुद्ध है। यहाँ संक्षेप मे ये कोटिया नही ली जा रही है कि घट कथंचित अस्ति है या कथंचित नास्ति है ? किन्तु संषय यह बन रहा है कि घट सर्वथा है ? ऐसी जिज्ञासा होने पर उत्तर बन गया कि घट कथंचित है। घट कथंचित है याने अपने स्वरूप से है। घट सर्वथा है, ऐसा नही है अर्थात घट अपने स्वरूप से है और पट आदिक समस्त पदार्थो के स्वरूप से सब प्रकार से है, यह बात वहाँ नही है। तो बराबर यही संषय जिज्ञासा और प्रष्न हुआ। उसके उत्तर मे यह प्रथम भंग निश्पन्न होता है कि घट कथंचित है।

**प्रथम भंग के आधारभूत संशयज्ञान की उत्पत्ति होने की असम्भवता की चर्चा व उसका समाधान** – अब यहां षंकाकार कहता है कि देखिये ! संषय की कोटियाँ उन पदार्थो की उन धर्मो मे बनती है जो किसी तरह प्रसिद्ध तो हो। जैसे अधेंरे उजाले के समय मे प्रातः कोई नागरिक घूमने गया किसी नई गली मे। तो दूर से एक ऊंचे लम्बे ठूंठ को देखकर उसे यह संषय हो गया कि यह ठूठ है या पुरुश खडा है ? तो भाई ! ठूठ भी प्रसिद्ध है पुरुश भी प्रसिद्ध है। जब दोनो बाते कही प्रसिद्ध है तो उसका तो संषय बन गया, पर जो वीज कही प्रसिद्ध नही है उसका संषय कैसे बन सकता है ? प्रथम भंग के आधारभूत संषयज्ञान मे यदि यह बात कही जाय कि यहां संषय की कोटियाँ यो बनायी जाये कि घट का कथंचित सत्व है या सर्वथा सत्व है ? तो यहा कथंचित सत्व तो प्रसिद्ध है और सर्वथा अस्तित्व कही

भी प्रसिद्ध नही। फिर यहां सषंय की कोटि कैसे बन गयी ? इस षंका के उत्तर मे कहते है कि यह षंका करना यो युक्त नही है कि कभी अप्रसिद्ध भी हो कुछ, लेकिन उसकी प्रसिद्ध रूप में समझ बन रही हो तो वहाँ संषय का वि यपना सम्भव है ? यद्यपि सर्वथा अस्तित्व होना सर्वथा नास्तित्व होना वास्तविक नही है, क्योकि वह सिद्धान्त ही नही है लेकिन जानकारी मे या विवाद के प्रसंग मे यह बात प्रसिद्ध हो रही है कि वस्तु कथंचित ही अस्ति है या सर्वथा अस्ति है या सर्वथा अस्ति है ? तो अप्रसिद्ध भी जब प्रसिद्ध रूप से ज्ञात हो रहे हो तो दोनो ही प्रसिद्ध हो गये। यो कथंचित अस्तित्व और सर्वथा दोनो प्रसिद्ध होने पर यहॉ संषय बन जाता है। यहां दो कोटिया को पुनः समझिये ! घटपने सहित सत्व यह तो हुआ एक कोटि का ज्ञान और सब प्रकार से सहित सत्व यह हुई दूसरी कोटि की समझ। तो यहाँ वस्तु के सत्व मे सब प्रकार का सहित सत्व नही है याने घट अपने स्वरूप से है और पर के स्वरूप से नही है, यह बात तो मानी ही जा रही है। इसमे जो प्रथम भंग बना कि घट कथंचित अस्ति है। तो वहाँ यह संषय हुआ था घटपने से सहित सत्ता से युक्त है या सब पदार्थो की सत्ता ये युक्त है ? ऐसा संषय होने पर प्रथम भंग की उत्पत्ति हुई। तो यहा संक्षेप मे निश्कर्श यह समझिये कि घटपने करके सहित कथंचित सत्व को समझना एक कोटि है और सब प्रकार सहित सत्व को समझना दूसरी कोटि है। चीज चल रही है सत्ता के सम्बन्ध मे। घट है, है यह यहाँ मूल बात कही गई, उसका यह घटरूप से है या स्वरूप से है ? यह संषय बना। उस संषय बना। उस संषय के निवारणा करने मे जो प्रयत्न जगा, उसका फल है प्रथम भंग की उत्पत्ति।

**सप्तभंगी मे द्वितीय भंग की नि पत्ति का कथन** – अब अगले भंगो की बात सुनिये जैसे एस प्रथम भंग की निश्पत्ति मे यह संषय कारण है इसी प्रकार द्वितीय आदिक भ्संगो की उत्पत्ति मे भी उस उस प्रकार के संषय ज्ञान कारण है। जैसे कथंचित घट का अस्तित्व तथा सर्वथा घट का अस्तित्व इन दो कोटि के संषयो की संम्भावना है और इस

संषय को दूर करने के लिये प्रथम भंग बना है। ऐसे ही एक दूसरा संषय यह हो सकता है कि कथंचित घट का नास्तित्व है या सर्वथा घट का नास्तित्व है। घट के सम्बन्ध मे पहिले तो यह जाना गया था कि घट है और फिर जाना गया कि घट नही भी है अर्थात अन्य पदार्थो के स्वरूप से नही है तो इस द्वितीय भंग की उत्पत्ति मे महले यह संषय जगा था कि घट का असत्व जो कहा जा रहा है सो क्या यह कथंचित घट का असत्व है या सर्वथा घट का असत्व है ? इस विवरण को सुगमतया समझना है तो यो समझिये कि घट पर स्वरूप से नही है यह बात है या घट स्व और पर सबके रूप से नही है यह बात है ? उसके उत्तर मे कहा गया कि घट कथंचित नही है। अर्थात कपडा आदिक अन्य द्रव्यो के स्वरूप से नही है। तो इस द्वितीय संषय के निवारण करने के लिये यहाँ द्वितीय भंग की उत्पत्ति हुईहै। इस संषय ज्ञान मे कथंचित और सर्वथा उन दो विरोधी धर्मो से दो कोटियाँ बनती है संषयज्ञान होता है विरुद्ध धर्मो के सम्बन्ध मे। तो यहा विरुद्ध धर्म है कथंचित और सर्वथा। बस, कथंचित और सर्वथा का आश्रय लेकर जो दो कोटिया बन जाती है और उसमे संषयज्ञान बनता रहता है तो उस संषयज्ञान के निवारण करने के लिये सप्तभंगो के भंग नि पन्न होते जा रहे है। यो सप्तभंगो मे जो प्रथमभंग कहा है घट कथंचित है उसके आधारभूत संषय की बात भली प्रकार बतायी गई है और द्वितीयभंग मे जो यह कथंचित नही है उसके आधारभूत द्वितीय संषयज्ञान की भी बात कही गई हैं जितने संषयज्ञान होते है उनका निवारण करने से उतने ही अधिगम मे भंग हो जाया करते है।

**भंगो की सात संख्या से अधिक हो जाने की शंका** – सप्त संख्या के सम्बन्ध मे अन्य आचार्यो ने भी कहा है कि सत्वादिक भंग 7 होते है क्योकि वदार्थ के परिचय के सम्बन्ध मे भी 7 संषय हुआ करते है और उन 7 संषयो मे अन्तर्निहित 7 जिज्ञासाये होती है। जब यो प्रष्न 7 हुए तो उत्तर भी 7 होते है। अब यहा षंकाकार कहता है। कि यह सब व्याख्यान तभी सुयुक्त हो सकता है जब कि धर्मो के 7 ही भेद सिद्ध हो, परन्तु धर्म 7 ही है यह सम्भव नही है क्योकि प्रथम द्वितीय धर्म की तरह क्रम और अक्रम से योजित प्रथम तृतीय आदिक 7 धर्मो से भिन्न अन्य धर्म सिद्ध होते है इसलिये 7 ही प्रकार के धर्म है यह नियम नही हो सकता तात्पर्य इसका यह है कि जैसे ये तीन भंग किए है – स्यादअस्ति, स्यादनास्ति और स्यादअस्तिनास्ति। तो कहते है कि वहाँ पहला व दूसरा भंग मिलाकर तीसरा भंग बनाने की तरह पहला और तीसरा भंग मिलकर एक भंग और बना दो। जैसे अवक्तव्य के साथ पहला, दूसरा व तीसरा भंग जोडा गया है यो अस्ति के साथ भी अस्ति नास्ति और जोड दिया जाये तब यह धर्म एक अलग हो गया। तब 7 ही धर्म होते है यह बात तो सिद्ध नही होती। इसी तरह तृतीय आदिक धर्मो को क्रम से या अक्रम से लगाने पर अन्य भी भिन्न धर्म हो गया। ऐसे ही उन अन्य धर्मो को चतुर्थ के साथ जोड देने से भी अन्य धर्म सम्भव होते है। तब धर्म 7 ही है यह नियम संगत न रहा।

**सात से अधिक भंग हो जाने की शंका का समाधान** – अब उक्त षंका के समाधान मे कहते है कि यह षंका करना नही है क्योकि क्रम व अक्रम से योजित प्रथम और द्वितीय धर्मो को जो लगाया है सो इस तरह से कोई धर्म है ऐसा प्रतीतिरूप मे नही है। मायने जैसे स्यादअस्ति कहकर लोग समझते है कि यह कहा गया, स्याद् नास्ति कहकर लोग जानते है कि यह कहा गया, ऐसे ही स्याद अस्ति स्याद् अस्ति नास्ति, इस तरह जोडकर कोई धर्म बना यह लोगो को प्रतीत नही होता । स्याद अस्ति घटः इस प्रथम वाक्य मे क्या कहा गया ? घटपने से सहित घट कहा गया घ्सट मे घटत्व है, उस घटत्व से सहित घट कहा गया। अब घट मे दो सत्व सम्भव नही है। यदि कहो कि यह घट मृतिकामय है तो देखो घट घटपने से सहित है और घट मृतिकायपने से सहित है। तो

देखो ! घट मे दो धर्म आ गए। घटत्व से युक्त सत्व और मृतिकामयने से युक्त सत्व। तब धर्मान्तर की लोक से प्रतीति नही है, यह कहना तो युक्त नही है। इसके भी समाधान मे कहते है कि देखिये ! घटपने से सहित सत ऐसा जब कहा गया तब एक स्वतंत्र धर्म विदित हुआ। और जब कहा जाय कि मृतिकामयपने से सहित सत तो इसमे मृतिकामयत्व धर्म स्वतंत्र हुआ। अर्थात मृतिकामयपने से सहित के 7 भंग अलग लगेगे। जैसे घटः अस्तिः इसके 7 भंग बनाये ऐसे ही मृतिकामय है तो काठमय नही है। अवक्तव्य है, आदिक फिर 7 भंग मृतिकामय अलग बनेगे। सप्तभंगी से सम्बन्धित चीज 8 वी नही होती। यो तो जितने वदार्थो की बात कही जायेगी उतने के ही भंग लगेंगे। तो इस हेतु से अन्य सप्तभंगी तो सिद्व हो जायेगे, पर एक सप्तभंगी मे 7 धर्मो से अलग कोई धर्म बने यह सम्भव नही है।

**एक धर्म के वि□ाय मे दो नास्तिन्व की असंभवता होने से द्वितीय व तृतीय भंग संयोजना की अयुक्तता** – प्रथम और तृतीय धर्म की योजना से अन्य धर्म सिद्ध नही होता, अर्थात जैसे स्याद अस्ति स्याद अस्ति नास्ति यो मिलकर कोई धर्म नही होता। इसी तरह स्यादनास्ति स्याद अस्ति नास्ति यो मिलकर भी कोई धर्म अलग नही होता। एक धर्म के विशय मे मैसे दो सत्व असम्भव है इसी प्रकार एक पदार्थ के विशय मे दो नास्तित्व असम्भव है। जैसे एक धन्नी मे काश्ठमय घट के सत्व का अभाव हैवह मृत्तिकामय है,– काश्ठमय नही है तो उससे भिन्न मृत्तिकामय घट की सत्ता सम्भव है। दो नास्तित्व सम्भव नही, दो अस्तित्व सम्भव नही, किन्तु अपेक्षा से एक पदार्थ मे अस्तित्व और नास्तित्व सम्भव है, इसी कारण किसी भी एक मूल धर्म को लेकर उसके परिचय मे बढे तो दो बाते भिन्न सिद्ध होगी। एक ही पदार्थ मे अपेक्षा से 7 धर्म ही सिद्ध हो उकते है।

**प्रथम चतुर्थ, द्वितीय चतुर्थ तथा तृतीय चतृर्थ भंग की संयोजना पर शंका** –

अब यहां षंकाकार कहता है कि प्रथम चतुर्थ तथा द्वितीय चतुर्थ तथा तृतीय चतुर्थ इन धर्मो की एक साथ योजना से फिर धर्मान्तर की सिद्धि कैसे हुई ? इन 7 भंगो मे स्याद अस्ति स्यादनास्ति स्याद अस्तिनास्ति, स्याद अवक्तव्य जैसे ये चार पहिये भंग है तो इनमे पहिये और तीसरे मिलकर कोई भंग नही बनता। स्याद अस्ति, स्याद अस्तिनास्ति यो मिलकर भंग नही बनता और दूसरा मिलकर भी नही बनता। स्याद अस्ति, स्याद अस्तिनास्ति क्यो नही बनता कि एक पदार्थ मे दो सत्ता नही। स्यान्नास्ति स्यादस्ति नास्ति भंग क्यों नही बनता ? यो कि ण्क तत्व मे दो असत्ता नही। इस पर षंका यो की जा रही है कि ऐसे प्रथम और चतुर्थ मिलकर व द्वितीय चतुर्थ मिलकर भी भंग नही बने। जैसे बनाया गया स्यादस्ति अवक्तव्य, स्याद नास्ति अवक्तव्य तो जब पहिला तीसरा न मिल सका, दूसरा तीसरा न मिल सका तो पहला चौथा भी न मिले, दूसरा चौथा भी न मिले, तीसरा चौथा भी न मिले, वे भी कभी धर्मान्तर सिद्ध न हो, लेकिन तुमने तो धर्मान्तर ही सिद्ध किया है। स्याद अस्ति अवक्तव्य यो कहा है कि अवक्तव्यपने के साथ स्याद अस्ति की योजना की है और आगे स्याद अवक्तव्य के साथ स्यादनास्ति की योजना की है। तो इस प्रकार से जिस क्रम से याजित दो अस्तित्व मे दूसरे अस्तित्व मे दूसरा अस्तित्व का कुछ प्रयोजन नही है क्योकि एक पदार्थ मे दो सत्व को असम्भव कहा है तो इसी तरह एक साथ लगाये गये अस्तित्व नास्तित्व मे नास्तित्व मे नास्तितव भी नही रह सकता। क्योकि जहाँ एक धर्म विश यक एक नास्तित्व है वहाँ अन्य नास्तित्व भी सम्भव नही है। तब इस तरह प्रथम चतुर्थ मिलकर भी धर्मान्तर मत बनो।

**प्रथम चतुर्थ, द्वितीय चतुर्थ, तृतीय चतुर्थ भंग की संयोजना का समाधान** – उक्त षंका के उत्तर मे कहते है कि देखिये ? अवक्तव्यपने के साथ जो अस्तित्व नास्तित्व लगाया गया है वह उभयरूप से नही है, किन्तु ऐ साथ योजित अस्तित्व नास्तित्व इन दोनो धर्मो का सर्वथा कथन नही कर सकते थे इसलिये अवक्तव्यरूप भंग धर्मान्तर ही है। जैसे कहा गया कि पदार्थ स्वरूप से है पररूप से नही है इस बात को यदि एक साथ योजित किया जाय, प्रथम ओर द्वितीय धर्मको एक साथ बोला जाय तो नही बोला जा सकता, अतएव वह कहने के लिये अषक्य रूप एक धर्मान्तर है, किन्तु कोई दो सत्ता नही मिलायी गई। एक पदार्थ मे दो सत्ता नही मिलती। अगर किसी अपेक्षा से दो सत्ता समझ मे आये तो वे भिन्न–भिन्न धर्म हो गएं। वहाँ सप्तभंगी न्यारे– न्यारे लगेगे, पर सप्तभंगो मे कोइ एक भंग बढकर 8 भंग हो जाये सो सम्भव नही है, इसी तरह सत्व के साथ अवक्तव्यपना लगे यह भी धर्मान्तर है। तब यह छल नही कर सकते कि यदि प्रथम और तृतीय धर्म नही मिलते, द्वितीय और तृतीय नही मिलते तो प्रथम चतुर्थ भी न मिले, ऐसी षंका नही कर सकते। अवक्तव्यपना एक स्पतत्र धर्म हैं कितनी ही चीजे, द्रव्य और पर्याय छश्टि से जानी गई बात एक साथ कही नही जा सकती इसलिए अवक्तव्य है।

**सप्तभंगो मे विभिन्न पद्धति मे तत्व की झलक** – अब इन 7 भंगो मे जो कुछ झलक हुई है उसका ब्योरा सुनो ! प्रथम भंग कहा गया है– ' स्यादस्ति एव घटः' तो इसमे सत्व की प्रधनता से प्रतीति कराई गई है। दूसरे भंग मे कहा गया है–'स्यादनास्ति एव घटः' इसमे असत्व की प्रधानता से प्रतीति कराई गइ है तृतीय भंग मे क्रम से अस्ति नास्ति की योजना भी है तब क्रम से सत असत की प्रधानता से प्रतीति है, क्योकि किसी अपेक्षा घट का अस्तित्व और किसी अपेक्षा से घट का नास्तित्व अनुभव मे आ रहा है। अब यहाँ कोइ दोश न दिखाये कि भिन्न–भिन्न दो पदार्थो को भी क्रम से लगा दो, क्योकि दो सत्वो को, दो पदार्थो को क्रम से योज्ति करके सप्तभंगी मे, पर दो अस्तित्व अथवा दो नास्तित्व की योजना नही तभी तो यह एक धर्म नही बताया कि स्यादअस्ति, स्याद अस्ति नास्ति। अस्ति नास्ति कहने मे जब एक बार सत्तापना आ गया तो अब स्याद अस्तिपना उसमे नही जुड सकता। इसी तरह यो भी कोई नही जुडा सकेगा कि स्यादनास्ति, स्याद अस्तिनासित जब स्याद अस्ति नास्ति मे एक नास्ति आ गया तो उसके साथ दूसरा नास्तित्व नही लगा सकते। अव्यक्त न अस्तिरूप है, किन्तु असित और नास्तिको एक साथ कहना अषक्य है। इस अषक्यताको अवक्तव्यपना कहते है। इस कारण अवक्तव्यपनाअस्ति के साथ भी लगेगा, नास्ति के साथ भी लगेगा और अस्ति नास्ति के साथ भी लगेगा। यह बात बहेत ध्यान से समझना है कि 7 भंगो मे कोई सा भी भंग ऐसा नही है जिसमे कि दो अस्तित्व बताये हो या दो नास्तित्व बतायेहो। यो तीन भंगो की बात जानकर अब चौथे भंग मे देखो ! उसमे अवक्तव्यपने की प्रधानता है। स्याद अवक्तव्य याने अस्तित्व और नास्तित्वको एक साथ कहा नही जा सकता, उसे अवक्तत्व कहते है। तो अवक्तत्व मे किसकी प्रधनता हुई ? क्या अस्तित्वकी हुई ? नही ! क्या नास्तित्पकी हुई ? नही ! किन्तु अस्तित्व और नास्तित्व दोनो एक साथ कहे नही जा सकते। इसलिये अस्तित्वपने की प्रधानता है। पंचभंग मे सत्वसहित अवक्तव्यपने की प्रधानता है । भंग कहा गया है स्याद अस्ति अवक्तव्य तो इसमे सत्तास हित अवक्तव्यपना दिखाया गया है। छठे भंग मे कहा है– स्यादनास्ति अवक्तत्व इसमे नास्तित्व सहित अवक्तव्यपने की प्रधानता बताई गई है, और 7 वे भंग मे क्रम से लगाये गए सत्व और असत्व से सहित अवक्तव्यपने की प्रधानता है । यो खूब परख लो कि इन 7 भंगो मे किसी भी मे दो अस्तित्व नही जुडे और दो नास्तित्व नही जुडे । इस तरह 7 भंगो का विवेचन समझना चाहिये ।

**प्रत्येक भंग में स्वयं की प्रधानता व अन्य की गौणता** – प्रथम भंग से स्या बोध हुआ ? स्याद् अस्ति एव घटः । तो अब अन्य भंगो से जो असत्वादिकता का भान होता है सो वहाँ गौणता है न कि निशेध ! जैसे बोला गया कि घट अपने स्वरुप से है, ऐसा कहते ही यह बात जाहिर होती है कि घट पररुप से नही है । लेकिन जो कहा गया उसमे उसकी प्रधानता है, और जो नही कहा गया, उसका भान होने पर भी उसकी गौणता है । जैसे जब दूसरा भंग बोला गया– स्याद् नास्ति घटः घट पररुप से नही है, तो ऐसा कहने मे नास्तित्व की प्रधानता है और अस्तित्व की गौणता है, लेकिन निशेध अन्य का यहां नही है । 7 वाक्यो मे यह बात समझनी चाहिये कि जिस समय जो भंग कहा गया उस भंग मे उस तत्वकी प्रधानता है और अन्य भंगो के तत्व की अप्रधानता है । भान सबका है उसको, क्योकि नयो का प्रयोग वहाँ ही सत्य है जहाँ प्रमाण से पदार्थ को सर्वतोमुखी जान जान लिया गया । अर्थात् प्रमाण से जाने गए पदार्थ मे एक देषधर्म को ज्ञात करना नय कहलाता है । नय से जानी हुई चीज मे भी 7 भंग होते है । प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी दोनो ही पद्धतियो से सप्तभंगी का वर्णन किया जाता है ।

**वक्तव्यन मक अधिक भंग की अनावश्यकता** – यहा कोई यह भी सन्देह रख सकता है कि 7 भंगो मे अवक्तव्यपने को एक भंग कहा गया है तो एक वक्तव्य भी भंग बन जाय । जब वस्तु स्याद् अवक्तव्य है तो वस्तु स्याद् वक्तव्य भी है ! तो एक वक्तव्यपना क्यो नही बढा देते ? ऐसी षंका यो युक्त नही है कि वक्तव्य षब्द न कहकर जो भी कहा गया वह वक्तव्य ही तो रहा । स्याद् अस्ति क्या है ? वक्तव्य ! स्याद्नास्ति क्या है ? वक्तव्य ! लेकिन, वक्तव्य इस षब्द से अगर भंग किया जाय तो फिर वक्तव्य की सप्तभंगी अलग बन जायगी । स्याद् वक्तव्य, स्यादवक्तव्य इस तरह से उसके ऊपर 7 भंग और बन जायेगे । पर, वक्तव्य न म जुडकर 7 भंगो से अलग भंग बनाया गया, यह बात सम्भव नही है, क्योकि सामान्य से वक्तव्य पना कोई भिन्न धर्म नही ! स्याद् अस्ति आदिक कहकर जो कहा गया वह सब वक्तव्य ही हैं ऐसा वक्तव्यपना प्रथम भंग आदिक मे बराबर पाया जाता है । यदि वक्तव्य षब्द ही कहकर धर्म मनवाये तो उसकी सप्तभंगी अलग हो जायगी । जैसे सत्व और असत्व मे विधि प्रतिशेधकी कल्पना से सप्तभंगी बनी ऐसे ही वक्तव्य और अवक्तव्य मे विधि और प्रतिशेध की कल्पना से सप्तभंगी अलग ही बनेगी । उक्त समस्त कथनो से यह सिद्ध हुआ कि धर्मो मे 7 भेद है । उनकी जिज्ञासा भी 7 है, प्रष्न भी 7 हो सकते है । इस कारण उनके उत्तररुप जो वाक्य निकले वे सप्तभंगी मे 7 ही भंग हुए अधिक संख्या नही हो सकती ।

**सप्तभंगो में अधिकसंख्य व्यवच्छेद की तरह न्यून संख्याव्यवच्छेदकी भी सिद्धि** – षंकाकार कहता है कि उक्त प्रकार से सप्तभंगी मे अधिक संख्या कानिराकरण किया अर्थात भंग 7 से अधिक नही होते । तो इस तरह अधिक संख्या का निराकरण करने पर भी यह निराकरण तो न हुआ कि कम संख्या भी होती है । षंकाकार कह रहे है कि भंग 7 से कम ही होते हे, 7 नही हो सकते । कारण यह है कि जेसे कहा कि स्याद् घट है, ओर दूसरा भंग बताया है कि स्यात् घट नही है, तो इन दोनो का मतलब तो एक ही है । घट अपने स्वरुप से है यह तो प्रथम भंग का स्पश्टीकरण है । तो इसहीके मायने यह हो गया कि घट पर रुप से नही है । तो देखो ! यदि घटादिक के अस्तित्व वाले 7 धर्म प्रमाणीक हो तब तो सप्तभंगी बने, किन्तु 7 धर्म प्रमाणीक नही है वे तो पुनरुक्त है । प्रथम भंग मे कहा कि स्वरुप से है, उसी का अर्थ है कि पररुप से नही है । इसी तरह सत्व और असत्व मे भेद नही है । जो स्वरुप से सत्व है वही पररुप से असत्व है । घट तो वही है ना, उसी मे रुपी स्वरुप से सत्व दीखा और पररुप से असत्व दीखा । चीज तो

एक ही दीखी । इस तरह प्रथम और द्वितीय भंग घटित नही होते, क्योकि इनमे से कोई एक कह दिया जाय तो दूसरा अपने आप सिद्ध होता है । जब कहा कि घट अपने स्वरुप से है तो दूसरी बात स्वय सिद्ध है कि घट पररुप से नही है । कोई ऐसी प्रमुखता से कहे कि घट पररुप से नही है तो इसका अर्थ यह स्वयं सिद्ध हो गया कि घट स्वरुप से है । तो जब प्रथम और द्वितीय भंग ही न बने तो इसके आधार से जो षेश अन्य भंग बनाये जाते है वे भी न बनेगे, फिर सप्तभंगी न रही , बहुत ही अल्प भंग रह गये । इस षंका के समाधान मे कहते है कि देखिये ! पहिले भंग मे कहा गया है स्वरुप से सहित सत्व, और दूसरे भंग मे कहा गया है – पररुप से अविच्छिन्न, असत्व । तो इन दोनो मे भेद है ।स्वरुप से अविच्छिन्न सत्व और पररुप से अविच्छिन्न असत्व इन दोनो मे यदि भेद न हो तो स्वरुप से सत्वकहा तो पररुप से भी सत्व बन बैठगा । तो भेद तो न रहा । पररुप से असत्व कहा तो स्वरुप से भी असत्व बन बैठेगा, इस कारण अवच्छेदक भेद अवष्य है । और भी देखिये ! सत्व होता है किसी आधार मे । सत्व आधेय है और जिसमे सत्व बताया वह पदार्थ आधार है । जैसे कहते है किइस जमीनपर घट है तो इसमे जमीन पर है वृत्ति जिस की, जमीनपर है अस्तित्व जिसका, ऐसा घट समझाया गया है, और जब कहा कि जमीन पर घट नही है तब वहाँ जमीन मे रहने वाला जो घटका अभाव है उसका प्रतियोगी घट है, यह समझा गया तो इस तरह सत्व और असत्व मे स्वरुप से भेद है ही । देखिये ! जब कहा कि इस कमरे मे घडा है तो दिमाग और बना । भूतलनिश्ट घटका सत्व समझ मे आया, इस रुप का घट जाना गया । और जब कहा जाय कि कमरे मे घडा नही है तो कमरे के आधार मे घडे का अभाव है, उसका प्रतियोगी घट है इस तरह से समझ मे आया । तो स्वरुप से अविच्छिन्न सत्व और पररुप से अविच्छिन्न सत्व का अभाव इन दोनो मे स्वरुप भेद है ही इस कारण यहा पुनरुक्तपना नही आता । प्रथम भंग का वाच्य भिन्न है,द्वितीय भंग का वाच्य भिन्न है, किन्तु कथन है एक धर्मी पदार्थ में ।

**अन्य दार्शनिको द्वारा भी सत्व व असत्व मे भेद का समर्थन** –अस्तित्व नास्तित्व भंग के समर्थन मे और भी सुनो ! जैसे यौगत आदिक हेतु को त्रैरुप्य मानते है । अनुमान जब बनाते है तो अनुमान वह सही है इसकी जानकारी करने के लिए हेतुकी परख की जाती है । जिस हेतु मे पक्ष धर्मत्व, सपक्षसत्व और विपक्ष असत्व ये तीन बाते पाई जाये वह हेतु सही माना गया है । मायने हेतु का पक्ष मे रहना, हेतु का सपक्ष मे रहना हेतु का विपक्ष मे न रहना ये तीन गुण जब हेतु मे विदित हो जाये तो उस हेतु से साध्यकी सिद्धि मानी गई है । जैसे कि कहा गया है अनुमान कि इस पर्वत मे अग्नि है धुवाँ होने से । तो धुवाँ होने से यह हेतु पर्वत मे पाया जाता, इस कारण से हेतु मे पक्ष धर्मत्व है और उसका दृश्टानत सपक्ष है । रसोई घर याने जहाँ – जहाँ धुवाँ होता है वहाँ–वहाँ अग्नि होती है । इस अन्वय व्याप्तिका उदाहरण जो बताया जाय उसे इस हेतु का सपक्ष कहते है । तो रसोई घर मे भी धुवाँ है, यो सपक्ष सत्व बन गया और, विपक्ष मे न रहना सो विपक्ष सत्व है । जब इस ही अनुमान मे व्यतिरेक व्याप्ति बनाई जाती है कि जहाँ अग्नि नही होती, वहाँ धुवाँ भी नही होता । तो अग्नि के अभाव मे, साध्य के अभाव मे साधन का अभाव कहना यह व्यतिरेक व्याप्ति है । तो यहाँ विपक्ष का उदाहरण दिया गया है तालाब । तालाब मे न अग्नि है न धुवाँ । तो तालाब मे धुवे का अभाव है इस तरह हेतु के तीन गुण परखे जाते है – पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्व और विपक्षासत्व । तो इस तरह जो सौगत आदिक हेतु को त्रिरुप मानते है अथवा जो नैयायिक आदिक हेतु मे पंचरुपता मानते है– प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन । फिर इनके विस्तार मे व्याप्ति, सपक्ष, विपक्ष सभी उपयोगी प्रसंग आ जाते है । तो इन दोनो के यहाँ भी बुद्धादिकके यहाँ और नैयादिक

आदिक के यहाँ, तीन रुप और पंचरुप मानने वालो के यहाँ भी देखो सपक्ष सत्व भी अपेक्षा से विपक्षासत्व भिन्न ही माना गया है । नही तो कोई वहाँ यह कह सकता था कि सपक्ष मे हेतु का रहना इससे ही यह सिद्ध होता है कि विपक्ष मे हेतु का न रहना । जैसे कथंचित है इसका भाव यह बताकर कि कथंचित यह नही है, सत्व और असत्व मे अमेद कर डाला । यो ही सपक्षसत्व मे और विपक्षासत्व मे भी भेद कर डाला जाने से फिर उन लोगो का माना हुआ त्रिरुप और पंचरुप हेतु न रहेगा । तो देखो ! सत्व और असत्व मे भेद अन्य दार्षनिकोने भी माना है । इसी तरह सप्तभंगी मे प्रथम भंग मे कहे गये अस्तित्वका और द्वितीय भंग मे कहे गये नास्तित्वका भेद है । तब यह कहना ठीक नही है कि स्यादस्ति का अर्थ है स्याद् नास्ति । फिर यो 7 भंग नही रहते, बहुत कम भंग रह जाते है ।

**स्यादस्ति नास्तिकी योजना मे □ांका** – अब षंकाकार कहता है कि चलो प्रथम भंग मे और द्वितीय भंग मे तुमने भेद कर दिया सो ठीक है । मान लिया थोडी देर को, लेकिन तृतीय भंग मे तो अर्थात् कथंचित है, कथंचित नही है इस तीसरे भंग मे तो अस्तिनास्ति मे कथंचित सत्वरुप जो प्रथम भंग है उससे भेद क्या रहा ? पहिले दो बाते कही गई – स्यादस्ति, स्याद्नास्ति । अब तीसरे भंग मे यह कहना कि कम से स्यादस्ति स्याद्नास्ति का उभय क्या रहा ? देखिये ! प्रत्येक घट और यह पुस्तक रखी है तो यो कहना कि यह घडी है, यह पुस्तक है और कम से अर्पित ये दोनो है । तो कम से अर्पित दोनो मे और पुस्तक है, घडी है, ऐसी दो बात ग्रहण मे नही आई । स्यादस्ति कहा, अस्तिनास्ति कहा । दो भंग बोल दिये जायेगे । अब तीसरा भंग यो बोलते कि कम से अस्तिनास्ति तो यह तीसरी कौन सी बला हो गई ? है तो दो ही बाते – अस्तित्व और नास्तित्व । तो जैसे प्रत्येक घट पट की अपेक्षा से घट पट का उभय कोई दूसरी चीज नही है, इसी तरह प्रथम और द्वितीय भंग की अपेक्षा से कमषः लगाये गए प्रथम द्वितीय भंग भी कोई जुदी चीज नही है । लो अब तो सप्तभंगी न रही । मान लो प्रथम के दो भंग सही है, लेकिन तीसरा भंग कोई भिन्न न ठहरेगा ।

**कमशः अर्पित स्यादस्ति नास्तिकी योजना का समर्थन** – उक्त षंका के उत्तर मे कहते है कि भाई यह षंका करना युक्त नहीहै कि प्रथम और द्वितीय भंग की अपेक्षा से याने प्रत्येक की अपेक्षा से उभय कोई भिन्न चीज नही है । है भिन्न चीज । प्रत्येक की अपेक्षा से उनका समुदाय भिन्न है, ऐसा प्रतीतिमे सिद्ध है तभी तो देखो घ एक अक्षर है और ट एक अक्षर है, यो अलग–अलग दो अक्षरो का होना और कम से घ और ट दो अक्षरो का उभय मिलना यह भिन्न चीज है या नही ? सभी लोग मान जायेगे कि अलग–अलग घ और ट अक्षरका मूल्य, स्वरुप, स्थिति जुदा है और कम से घ और ट इन दो अक्षरो के बोलने मे जो घट पद बनता है उसकी स्थिति अलग है । वह उससे अतिरिक्त चीज है, अन्यथा याने अलग – अलग रहने वाले घ और ट मिलकर कम से योजित घट इनको यदि एक मान लिया जाय तो कभी कोई घ इतना ही बोले तो एससे घटका ज्ञान हो जाना चाहिए क्योकि अलग रहने वाले अक्षर और मिलकर बनाये गए अक्षर इन दोनो मे तुम भेद नही मानते । जब भेद नही मानते तो प्रत्येक घ आदिक की अपेक्षा से घट पद से अभिन्न मानने पर घ आदिक के उच्चारण से ही घट ज्ञान सम्भव हो जाय और जब ट बोला तो ट के बोलने से घट समझा जाय कि पट समझा जाय ये सब विडम्बनाये बन जाती है और फिर जब किसी एक अक्षर के बोलने से ही पूरा पदार्थ आ जाता है तब षेश अक्षरो के बोलने की बात व्यर्थ हो जायगी । और, भी सुनो –माला मे दाने अनेक पिराये गए । अब यह बतलाओ कि भिन्न – भिन्न जो एक दाने है उन दानो से माला मे कथंचित भेद है कि नही, या एक – एक दाना सो ही माला ? अगर एक – एक दाने का

ही नाम माला बन जाय तो कही बिखरे पडे हुये जो दाने है उनमे तो माला का अभेद हो गया, फिर उससे दूसरो का सम्मान करो अथवा उनसे जाप जपो । तो प्रत्येक दाने की अपेक्षा से माला मे कथंचित भेद है, यह बात सबके अनुभव मे सिद्ध है । इसी तरह स्याद् अस्ति यह एक भंग है । घट स्वरुप से है– स्याद्नास्तिघटः यह दूसरा भंग है, घट पररुप से नही है, ये दो भंग जुदे – जुदे है । इनमे जुदा है यह तीसरा भंग अर्थात क्रमसे योजित ये दोनो बाते जिनमे कि बुद्धि समझ कुछ भिन्न बनती है, यह तीसरा भंग जुदा है । इस तरह कथंचित सत्व की अपेक्षा से कथंचित असत्व की अपेक्षा से क्रम से लगाई गई ये दोनो चीजे जुदी हो गई अर्थात स्याद् अस्ति यह प्रथम भंग भी सिद्ध है, स्याद् नास्ति यह द्वितीय भंग सिद्ध है और स्याद् अस्तिनास्ति यह तृतीय भंग भी सिद्ध है, इसमे पुनरुक्तता नही आती ।

**क्रमार्पित उभय और सहार्पित उभय के स्वरुप मे भेद न होने की आरेका** – उक्त प्रकार से प्रथम दो भंगो से तृतीय भंगो की अतिरिक्तता सुनकर षंकाकार कहताहै कि भले ही प्रथम द्वितीय भंग से अतिरिक्त तृतीय भंग बन जाये मगर अवक्तव्य मे तुम यह कह रहे हो कि एक साथ योजित अस्तिनास्ति । अवक्तव्यका अर्थ यह है कि अस्तिनास्ति । इन दोनो को अगर एक साथ जोडा जाय तो कहा नही जा सकता उसी को कहते हो अवक्तव्य तो क्रम से जोडे गए अस्तिनास्ति मे और एक साथ जोडे गए अस्तिनास्ति मे किसी तरह भेद हो ही नही सकता । यह तो केवल षब्द मे रहने वाला भेद है कि षब्दो से कह दिया कि इसमे अस्तिनास्ति क्रम से लगाया है । इसमे अस्तिनास्ति एक साथ लगाया है । और, चाहे क्रम से बोले, चाहे एक साथ बोले, गाँठ मे बात तो उतनी ही है स्वरुप से अस्तित्व और पररुप से नास्तित्व, यहाँ तो कोई बात बढी नही, यह तो केवल षब्दो मे रहने वाला भेद है । पदार्थ मे रहने वाला भेद नही है । क्योकि क्रम से जोडा गया सत्व असत्व के उभय की अपेक्षा से एक साथ जोडे गए सत्व असत्व का उभय कोई भिन्न चीज नही है । जैसे कि एक जमीन पर घट और पट दोनो रखे है ।अब वहाँ यह कहा जाये कि क्रम से योजित घट पटका उभय है, यह एक अलग चीज है और एक साथ योजित घट पटका उभय अलग चीज है, ऐसा तो भेद कोई नही मान सकता । यहाँ घडी और पुस्तक रखी है तो क्रम से योजित घडी पुस्तक अलग चीज हुई और एक साथ योजित घडी पुस्तक अलग चीज हुई । और एक साथ योजित घडी पुस्तक अलग चीज हुई । इसका मतलब क्या है ? है तो दो ही चीजे । क्रम से और अक्रम से मतलब क्या ? तो आपके ये अन्य भेद नही बन सकते है ।

**क्रमार्पित उभय व सहार्पित उभय मे भेद न होने पर भी हानि न होने की एक प्रतिशंका** – षंकाकार कह रहा है कि यदि यह कहो कि क्रमसे योजित सत्व असत्वका उभय की अपेक्षा से एक साथ योजित सत्व असत्व के उभय का भेद भी कुछ न हो फिर भी कोई हानि नही है । हानि तो यह मानी जा रही थी कि 7 भंग से कम भंग से कम भंग से कम भंग लगाये जाये । सो तुम इसका उत्तर यह दे लोगे कि पुनरुक्ति दोशरहित 7 वाक्यो का समुदाय ही सप्तभंगी है । याने उसमे तो लगा दिया षब्द क्रम और इसमे षब्द लगा दिया 'एक साथ' तो अब इन भंगो मे फर्क हो गया । यो षब्द का विलास बताकर कह सकते हो कि पुनरुक्ति दोश नही है । यह भी कह सकते है, सत्व असत्व धर्म के विशयपने से 7 भेद से वचन की मार्ग प्रवृति हो सकती है न कि अधिक, क्योकि अधिक होने से पुनरुक्ति दोश आता है । एक वाक्य से उत्पन्न हुआ जो ज्ञान है उसी ज्ञान के समान ज्ञान को उत्पन्न करने वाला यदि उत्तर कालका वाक्य हो तो यही तो पुनरुक्त दोश कहलाता है । जो बात पहिले कही गई वही बात फिर तुरन्त कही जाय तो उसे

पुनरुक्त कहते है, और इस सप्तभंगी नयके प्रमाण मे तृतीय भंग याने स्याद् अस्ति नास्तिघटः और चतुर्थ भंग ाने स्याद् अवक्तव्य एव घटः । इन धर्मो मे पुनरुक्त दोश सम्भव नही है, क्योकि तीसरे भंग से उत्पन्न हुआ जो ज्ञान है उसमे तो अस्तित्व सहित नास्तित्व का ज्ञान कराया है । स्याद अस्तिनास्ति कह रहे तो अस्तित्व सहित नास्तित्वका बोध कराया और चतुर्थ जो अवक्तव्य भंग है उससे जो ज्ञान उतपन्न होता है उसमे अस्तित्व नास्तित्व दोनो रुप अवक्तव्य है । तो ऐसे अवक्तव्यपने के साथ रहकर जो प्रयोग बना उस प्रकार से ज्ञान आता है इस कारण तीसरे और चौथे भंग से उत्पन्न हुए ज्ञान मे समान आकार न रहा । अतएव पुनरुक्त दोश नही है । यो क्रम अथवा अक्रम वाले तृतीय चतुर्थ भंग मे भेद न होने पर भी कोई हानि नही ऐसी एक प्रतिषंका उपस्थित हुई ।

**प्रतिशंका का समाधान करते हुए न्यूनसंख्याव्यवच्छेद की असिद्धि की ांकाका समर्थन** — अब षंकाकार ही सताधानकारकी और से षंका उठाकर उसका निराकरण कर रहा है, समाधानकर्ताकी इस षंका के निराकरण मे षंकाकार कहता है कि इस तरह से भेद मान लेने पर 7 भंगो से अधिक भंगो की संख्या हो जाना अनिवार्य है । अर्थात यह सिद्धान्त जब रख दिया कि क्रम से योजित बात अन्य है, अक्रम से योजित बात अन्य है, यो भिन्नता बताकर सप्तभंगी बनाने मे तो बहुत से और अधिक भंग हो सकेगे । जैसे तृतीय चतुर्थ भंगो मे पुन/क्त दोश का टभाव उनके विलक्षण बोध उत्पन्नहोने से मान लिया हैतो ऐसे ही समझिये कि विपरीत क्रमसे याने नास्ति अस्ति ऐसे अन्य भंगकी भी बात कही जायगी । जैसे कहा कि स्याद अस्ति स्याद नास्ति और स्याद् अस्ति नास्ति तो एक और बढा दो । स्यादनास्तिअस्ति, क्योकि जरा सा भी अगर बोध मे भेद हो जाता उससे तुम पुनरुक्त दोश नही मानते तो यो तो अनेक भंग बनाये जा सकते है । कहा जा सकता है कि इसमे नास्तित्व सहित अस्तित्व बताया गया, और फिर इन दोनो को एक साथ कहा नी जा सेता । इस तरह से अवक्तव्यपना भी और ढंग का बनेगा । जैसे अभी चौथे भंग मे अस्ति और नास्तिका अवक्तव्य बनाया तो अब बना दीजिए नास्ति अस्तिका अवक्तव्य । और फिर इस तरह से संयोगी भंग भी बढ जायेगे । और ऐसा कहते हुए हम भी यह कह सकेगे कि जैसे तीसरे भंग मे अस्तित्व विषिश्ट नास्तित्व का बोध कराया तो हमारे इस नये भंग मे नास्तित्व विषिश्ट अस्तित्व का बोध कराया । अब हुआ क्या इसमे बात तो दोनो है लेकिन एक बन गया विषेशण और दूसरा बन जाता है विषेश्य । जैसे स्यादअस्ति नास्ति मे अस्ति विषेशण है नास्ति विषश्य है क्योकि वहाँ यह बताया जाता है कि अस्तित्व विषिश्ट नास्तित्व । तो हमारे यहाँ बताया जाता है कि नास्तित्व विषिश्ट अस्तित्व । तो लो समान आकार भी न रहा तब पुनरुक्ति दोश तो न रहा । ऐसे ही 7 वां भंग जो लो समान आकार भी न रहा तब पुनरुक्ति दोश तो न रहा । ऐसे ही 7 वां भंग जो बताया गया है– सयाद अस्तिनास्ति अवक्तव्य तो एक और बढा देगे स्यादनास्ति अवक्तव्य । और उसमे एक नया बोध बढा देगे कि नास्ति अस्तित्व इस उभय सहित अवक्तव्य को बताने वाला यह भंग है तब 9 भंगी, 10 भंगी 11 भंगी यो कितने ही भंग बन जायेगे । तो सप्तभंगी तो न रही । इस प्रकार षंकाकार की षंकाका यह मूल प्रस्ताव कि सप्तभंग से अधिक भंग नही हो सकते तो न हो पर कमती संख्या का निराकरण कैसे सिद्ध होगा ? कम संख्या बन जायगी, क्योकि स्वरुप से अस्ति, इसका ही अर्थ है पररुप से नास्ति । तब फिर वे दो भंग क्यो रहे ? एक ही रहा । और, यदि कुछ थोडा – थोडा भेद बताकर 7 भंगो की सम्हाल करोगे तो स्मरण रखना चाहिए कि फिर भेद 9, 10, 11 भी हो सकते है, फिर तो अधिक संख्या बन जायगी, इस कारण से सप्तभंगी का नियम सही नही बन सकता कि भंग ही होते है । अब षंकाकार की इस षंका का समाधान करते है ।

**सप्तभंगी मे न्यून संख्या न होने का विवरण** – उक्त षंका के समाधान मे कहते है कि ऐसी षंका करना ठीक नही है कि सप्त भंगी मे 7 से अधिक संख्या नही होती, 7 से कम संख्या तो हो ही सकती है, क्योकि एक भंग का दूसरे भंग मे ही अन्तर्भाव है । उनमे अभेद है । ऐसी षंका करना यो युक्त नही है कि 7 भंगो मे ही उपने – अपने पृथक विशय और दृश्टिकोण है । प्रथम और द्वितीय भंग मे तो भेद बताया ही गया था । प्रथम भंग मे तो स्वरुप से अविच्छिन्न सत्व का वर्णन है । अब आगे के भंगो की बात सुनो ! कि जिनको लेकर षंका की गई है । तृतीय भंग मे अस्तित्व और नास्तित्व इन दोनो की पधानता है तथा चतुर्थ भंग मे अवक्तव्यपनेरुप अन्य धर्म की प्रधानता है । तो तृतीय और चतुथ्र भंग के अभेद की षंका न करना चाहिए । जैसे कि षंका मे कहा गया था कि क्रम से अर्पित उभय का भंग और एक साथ अर्पित उभय का भंग इन दोनो मे क्या अन्तर है ? है । तो दोनो ही बाते – चाहे क्रम से अर्पित हो चाहे सह अर्पित हो । तो षंका यो न करना चाहिए कि तृतीय भंग है असितत्व नास्तित्व का उभय और उससे विलक्षण है यह अवक्तव्यरुप धर्म । जैसे पूर्व के धर्मो मे जैसे सत्व माना गया है, ऐसे ही वस्तु का स्वरुप नही है, क्योकि स्वरुपादिक से जैसे सत्व माना गया है ऐसे ही पररुपरदिक की अपेक्षा से असत्व भी माना जाता है । इस कारण वस्तु का स्वरुप केवल सत्व ही नही है । इसी तरह आगे भी देखिये ! वस्तु का स्वरुप केवल असत्व ही नही है, क्योकि जैसे पररुपादिक की अपेक्षा से असत्व की प्रतीति होती है उसी प्रकार स्वरुपादिक की अपेक्षा से सत्व की भी प्रतीति होती है । तब वे दोनो भंग भिन्न – भिन्न रुप से प्रतीति सिद्ध हुए ना ! अब आगे चलो, तीसरे और चौथे भंग के लिए ! तीसरे भंग मे बताया है कि अस्तित्व का और नास्तित्व का उभय वस्तु का स्वरुप है सो उसमे भी यही खोज करना कि अतित्व और नास्तित्व का उभय ही वस्तु का स्वरुप नही है, क्योकि इस खोज इस उभय से कवलक्षण कोई अन्य धर्मान्तर भी वस्तु मे अनुभूत होता है अर्थात् अवक्तव्यरुप धर्म भी प्रतीत होता है ।

**उदाहरणपूर्वक कमार्पित, सहार्पित व स्वतन्त्र भंगो का समर्थन** – जैसे दही गुड और अनेक मसाले मिलाकर एक पानक द्रव्य बनाया जाता है तो उस पानक द्रव्य मे भिन्न – भिन्न केवल दही, गुड आदिक की अपेक्षा से अब कोई भिन्न जात्यन्तर का स्वाद उसमे आता है । जैसे चार – पांच चीजे मिलाकर कोई एक पानक बनाया गया, पेय वस्तु मे स्वाद उनक`वल दही, गुड आदिक से विलक्षण है । और तब यह कह सकते है कि अब उस पादक का स्वरुप केवल दही गुड आदिक का चतुश्टय ही नही है, किन्तु उससे विलक्षण रूवाद है । और, फिर यह भी कहे सकते कि उनसे विलक्ष्ण स्वाद ही पानक का स्वरुप नही है, क्योकि उनके अन्दर दही गुड आदिक सबका स्वाद भी पाया जाता है । और, फिर यह भी कह सकते कि उनसे विलक्षण स्वाद ही पानक का स्वरुप नही है, क्योकि उनके अन्दर दही, गुड आदिक सबका स्वाद भी पाया जाता है । ऐसे ही समझना चाहिए कि तृतीय – चतुर्थ भंग का पार्थक्य तृतीय भंग मे कहा गया है कि स्याद् अस्ति और नास्ति, इनका उभय वस्तु कस स्वरुप है, सो ये दोनो एक साथ कहे नही जा सकते क्रमषः निरखेगे तो एक एक बात दिखेगी ऐसी स्थिति मे यह कहा जायेगा कि उन दोनो से विलक्षण अवक्तव्यपना वस्तु का स्वरुप है लेकिन फिर यह भी नही कह सकते कि अवक्तव्यपना ही वस्तु का स्वरुप है, क्योकि एस वस्तु मे अस्तित्व नास्तित्व धर्म भी प्रतीति हो रही है । तो न केवल अस्तित्व वस्तु का स्वरुप है, न नास्तित्व वस्तु का स्वरुप है और न केवल दोनो का उभय वस्तु का स्वरुप है, न केवल नास्तित्व वस्तु का स्वरुप है । न केवल अवक्तव्यपना वस्तु का स्वरुप है । सो और आगे भेगो मेब ढिये ! तब किसी एक

धर्म को लेकर अन्य धर्मो का अभेद करके सप्तभंगी की संख्या कम कर देना कैसे सम्भव है ? एक सत्व स्वरुप तो यो नही है कि उसमे कथंचित सत्व पाया जाता । केवल असत्व वस्तु का सत्रूप यो नही है कि एसमे कथंचित असत्व पाया जाता । केवल अलग – अलग ये रहे यह भी स्वरुप नही है, क्योकि वस्तु मे अस्तित्व और नास्तित्व दोनो पाये जाते है और अस्तित्व नास्तित्व का उभय भी वस्तु का स्वरुप नही है, क्योकि उनसे विलक्षण अवक्तव्यपना पाया जाता है और अवक्तव्यपना ही वस्तु का स्वरुप नही है, क्योकि वहाँ कथंचित सत्व और कथंचित असत्व की प्रतीति पाई जाती है । इसी प्रकार षेश के अंत के तीन धर्मो मे भी बात लगानी चाहिए तो दृश्टि भेद से धर्मभेद अनुभव मे आता है और इस प्रकार जब समस्त भंगो का स्वरुप अपेक्षा मे भिन्न – भिन्न नजर आता है तो अलग – अलग स्वभाव वाले 7 धर्मो की सिद्धि हो गई । जब वस्तु मे 7 प्रकार से धर्म प्रसिद्ध हुए तो धर्मविशय संषय भी 7 प्रकार से हुए और 7 प्रकार के संषयो मे जिज्ञासा भी 7 प्रकार की हुई । तो अब जिज्ञासा के समाधान मे 7 प्रकार के समाधान रुप वाक्य हुए । यो सप्तभंगी का स्वरुप 7 भंगो मे ही युक्तिसिद्ध है ।

**सप्तभंगी के प्रकारो की जिज्ञासा** – अब सप्तभंगी का स्वरुप बताकर उसके प्रकार बतलाते है । सप्तभंगी दो प्रकार से होती है – प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी । प्रमाण का लक्षण पहिले बताया गया था कि यह समस्त रुप से तत्वार्थ अधिगम है सो प्रमाणात्मक अधिगम है और एक देष रुप से तत्वार्थ का जो अधिगम है वह नयात्मक अधिगम है । जिसके मायने यह हुआ कि प्रमाण तो समस्त रुप के विज्ञान का नाम है और नय एक देष के विज्ञान का नाम है । यो सामान्य से व्यापक स्वरुप जानकर अब उसके सम्बन्ध मे विस्तारपूर्वक स्वरुप समझने के लिए चलो ! इस समय यह जिज्ञासा हो रही है कि सप्तभंगी दो प्रकार की कही गई है – प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी । और सप्तभंगी बनती है वाक्यो से । तो प्रमाण वाक्य किसे कहते है । और नय वाक्य किसे कहते है ? यहाँ प्रमाण रुप 7 वाक्य क्या है ? और नयरुप 7 वाक्य क्या है ? इस सम्बन्ध मे जो निश्कर्शरुप सिद्धान्त की बात है यह तो अन्त मे कहेगे । इससे पहिले उन सप्तभंगियो के सम्बन्ध मे किसका क्या अभिप्राय है ? पहिले उन अभिप्रायों का प्रसंग करते है । जिससे कि निर्णय करते – करते प्रमाण वाक्य और नय वाक्यो का सही सैद्धान्तिक स्वरुप सुगमता से समझ मे आयगा ।

**प्रमाणवाक्य और नय वाक्य के सम्बन्ध मे एक अभिमत पर विचार** – प्रमाण और नय वाक्यो के सम्बन्ध मे कोई संत ऐसा कहते है कि सकलादेष वाक्य तो प्रमाण वाक्य कहलाता है याने सम्पूर्ण रुप से पदार्थ का ज्ञान कराने वाले वाक्य तो प्रमाण वाक्य है और विकलादेष वाक्य नय वाक्य है । एक अंष मे पदार्थे का ज्ञान कराने वाले वाक्य नय वाक्य है वस्तु मे अभी सत्व असत्व आदिक अनेक धर्म बताये गए है । तो सत्व असत्व आदिक अनेक धर्म स्वरुप जो वस्तु है उस वस्तु के सम्बन्ध मे उस वस्तु का बोध उत्पन्न करने वाला अथवा वस्तु के अनेक धर्मो का ज्ञान कराने वाला वाक्य तो सकलादेया कहलाता और वह प्रमाण वाक्य है, किन्तु वस्तु के सत्व असत्व आदिक धर्मो मे से किसी एक धर्म का ज्ञान उत्पन्न कराने वाला वाक्य विकलादेष है और वह नय वाक्य कहलाता है । ऐसा कुछ संतो का सिद्धान्त है । अब उक्त सिद्धान्तो के सम्बन्ध मे विचार कीजिये ! जो लोग सकलादेष का प्रमाण वाक्य और विकलादेष को नयवाक्य मानते है उनके मत मे प्रमाण वाक्य मे भी 7 भेद बने और नय वाक्य मे भी 7 भेद बने, यह सिद्ध न हो सकेगा, क्योकि सकल का आदेया और विकल का आदेष इस दृश्टिकोण को रख कर जब अन भंगो मे से कुछ भंग विकलादेष लगेगे और कुछ सकलादेया लगेगे । जैसे – स्यादस्ति,

स्यादनास्ति, स्यादअवक्तव्य एव ये तीन भंग पहिला, दूसरा और चौथा ये इकहरी बात बतलाते है इसलिए ये विकलादेष कहलायेगे क्योकि न भंगो मे पहिले मे तो केवल सत्व का और दूसरे मे केवल असत्व का और चौथे भंग मे केवल अवक्तव्य स्वरुप का संकेत किया गया है । तो अब वस्तु के एक – एक धर्मविशयक बोधकराने वाला वाक्य होने से ये ही मात्र नय वाक्यहोगे, उसके अतिरिक्त जो चार वाक्य है । – तीसरा, पॉचवाँ, छठवाँ और सातवाँ – स्यादअस्ति नास्ति, स्यादअस्ति अवक्तव्य, स्यादनास्ति अवक्तव्य, स्यादअस्तिनास्ति अवक्तव्य, ये भंग एक को लिये हुए नही है इन पर क्रमषः दृश्टिदे तो स्याद् अस्ति नास्ति ये सत्व और असत्व दो धर्मो का वर्णन है । स्याद अस्ति अवक्तव्य मे अस्तित्व और अवक्तव्य इन दो का आदेष है । स्याद् अस्ति अवक्तव्य मे नास्तित्व और अवक्तव्य इन दो का वर्णन है और अस्ति नासित अवक्तव्य मे तीन का वर्णन है । तो एक – एक धर्म का आदेष इसमे नही है । अतः ये प्रमाण वाक्य कहलायेगे । तो सकलादेष प्रमाण वाक्य है, विकलादेष नय वाक्य है, ऐसा आग्रह करने मे न तो प्रमाण सप्तभंगी बनेगा और न नय सप्तभंगी बनेगा ।

**सप्तभंगों मे 3 नये वाक्य व 4 प्रमाण वाक्य मानने मे सिद्धान्त से विरोध** – यहाँ कोई यह षंका करता है कि सप्तभंगी दोनो मे नही बनती तो मत बनो । तीन नय वाक्य हो जायेगे और 4 प्रमाण वाक्य हो जायेगे । सो यह बात यो न कह सकेगे िकइस तरह कहने मे अर्थात् पहिले, दूसरे, चौथे भंगो को नय वाक्य कहने मे और 5 वे, 6 वे 7 वे भंग को प्रमाण वाक्य मानने से स्याद्वाद के सिद्धान्त का विरोध होगा क्योकि अपेक्षा यहाँ 7 है । पूर्ण बात तो वाक्यो मे कही नही जा सकती । अपेक्षा भेद से दृश्टिकोण मे एक वस्तु मे एक वस्तु पाये जाने वाले एक दो धर्मो का याने विकल धर्मो का वर्णन है इस कारण से स्यादवाद की सम्पन्नता न केवल तीन वाक्यो से बनेगी और न 4 वाक्यो से बनेगी । 7 भंग ही स्याद्वाद का रुप रखते है । तब प्रमाण सप्तभंगी और नयसप्त भंगी के सम्बन्ध मे कुछ और खोज करना चाहिए ।

**धर्म धर्मी वि�ाय के बोधक वाक्य से सकलादेश व विकलादेश के स्वरुप वर्णन की चर्चा** – कोई सतंजन कहते है कि धर्म को विशय न करने वाले और धर्मी वस्तु को विशयक करने वाले ज्ञान को उत्पन्न करने वाला वाक्य सकलादेष कहलाता है और धर्मो को विशय न करने वाले धर्म को विशय करने वाले बोध को उत्वन्न करने वाला वाक्य विकलादेष कहलाता है यह कथन भी धर्म युक्त नही है, क्योकि यदि किसी भी धर्म से विषेशित न हो धर्मी, तो उस धर्मी के सम्बनध मे षब्दज्ञान भी नही बन सकता है और धर्मी मे वृति पाये जाने रुप से विषेशित न हो धर्म, तो उसका भी षब्द बोध हो नही सकता इसका तात्पर्य यह है कि कभी किसी धर्ममात्र के षब्द से भी कथन किया जाय तो धर्म युक्त धर्मी ज्ञान मे होता ही है, तब जाकर धर्म का ज्ञान बनना है । इस प्रकार कभी धर्मी वाचक षब्दो का प्रयोग किया जाय तो उस प्रयोग से भी धर्म का परिज्ञान गर्भित ही है । धर्म से अविषेशित धर्मी का बोध मे विशय न बनेगा अथवा धर्मी मे रहने वाले रुप से अविषेशित यदि धर्म का ज्ञान किया जाय तो वह भी किसी भी ज्ञान का विशय नही बन सकता । अतः यह कहना सम्पन्न नही हो सकता कि धर्मी को विशय करने ज्ञान को उत्पन्न करे ऐसा वाक्य सेलादेष कहलाता है और धर्म का ही विशय करने वाले ज्ञान को उत्पन्न करे ऐसा वाक्य विकलादेष कहलाता है ।

**प्रसंगगत सकलादेश विकलादेश के उदाहरण पर विचार** – उक्त चर्चरणीय सकलादेष विकलादेष के सम्बन्ध मे यदि कोई यह कहे कि स्याद जीव एव कथंचित जीव

ही है, इस वाक्य से केवल जीव धर्मी मात्र का ज्ञान उत्पन्न हुआ है, और जब यह कहा कि स्यादअस्ति एव कथचित है ही इस वाक्य से केवल अरितत्व धर्म का ज्ञान उत्पन्न हुआ । यो सकलादेष और विकलादेष के लक्षण युक्ति संगत रहे । जो समस्त धर्मो का ज्ञान कराये वह सकलादेष, जो किसी धर्म मात्र का ज्ञान कराये वह विकलादेष । तो स्याद जीव एव इस वाक्य से सकलादेषपना स्यादअस्तिएवः इस वाक्य से विकलादेषपना, यह बात भी नही कह सकते, क्योकि जब भी जीव षब्द से बोला गया कि स्याद जीव एव तो इसमे भी जीवत्रुप धर्म से सहित ही जीव का कथन हुआ न कि धर्म षून्य पृथक किसी धर्मी मात्र का ज्ञान हुआ । जब भी जीव कहा कि स्याद् जीवः एव तो इस कथन मे जीवत्व धर्म सहित ही जीव परखा गया । धर्म से पृथक,धर्म से रहीत केवल धर्मी मात्र का परिग्रहण नही हुआ । इसी प्रकार जब स्याद अस्ति एव इस वाक्य से कहा गया तो इस षब्द से ऐसे अस्तित्व धर्म का कथन हुआ जो किसी धर्मी मे रहने रुप से विषेशित है अथवा किसी मे धर्मरुप मे रह रहा है वह अस्तित्व इस वृतिरुप सम्बन्ध से युक्त अस्तित्व धर्म का कथन हुआ । कही न तो धर्मी से रहित धर्मी मे वृतिरुप से षून्य केवल धर्ममात्र का भान होता है और न धर्म से रहित केवल किसी धर्मीमात्र का ज्ञान होता हे । और बतलावो कि धर्मी के सम्बन्ध बिना अन्वितपना बिना धर्म का अर्थ क्या ? जो विवेकी पुरुश है वे सब इस रहस्य को भली भाँति जानते है । कदाचित कोई यह कहे कि यदि धर्मी तथा धर्म का अलग – अलग भान नही होता, तो द्रव्यवाचक षब्द और भाववाचक षब्द इस विभाग की सिद्धि नही हो सकती याने धर्मी और धर्म ये जुदे जुदे है । धर्मी का भान पृथक है, धर्म का भान पृथक है तभी तो यह षब्द द्रव्यवाचक है यह षब्द भाववाचकहै, ये व्याकरणो मे भेद चलेगे मगर धर्मी और धर्म का पृथक भान न माना जाय तब फिर षब्दभेद भी क्या रहा कि यह द्रव्य का वाचक षब्द है और यह भाव षब्द का वाचक है, ये धर्मी के वाचक षब्द है और ये धर्म के, इस विभाग न बन सकेगा ।

**सकलादेश व विकलादेश के उक्त लक्षणारेकाका समाधान** – उक्त षंका के समाधान मे कहते है कि यह भी षंका नही डाली जा सकती, क्योकि प्रधानता से जो द्रव्य के वाचक है उनको कहते है द्रव्यषब्द और जो प्रधानता से भाव के या धर्म के वाचक है षब्द उनको कहते है भा षब्द । जैसे 'जीवः' यह कहा गया तो यहाँ जीव षब्द से जीव जो एक द्रव्य है उसकी प्रधानता से कथन हुआ, किन्तु जीवस्वरुप धर्म का गौणता से प्रतिपादन हो ही जाता है । इसी प्रकार जब कहा अस्ति तो इस षब्द की मुख्यता से अस्तित्व धर्म का वर्णन होता है लेकिन उसमे जीवादिक धर्मो का भी गौणता से प्रतिपादन है । अस्तित्व ऐसा कहने पर क्या पदार्थषून्य अस्तित्व बोला गया । क्या कही ऐसा भी अस्तित्व है । कि जो किसी पदार्थ से विषशित न हो, पदार्थ मे न रहता हो, केवल सत्ता ही सत्ता है ऐसा कोई पदार्थ नही है, ऐसी कोई सत्ता नही है । हाँ, सत्ता षब्द जब कहा तो प्रधानता से धर्म का वर्णन हुआ, पर धर्मी को छोडकर धर्म रहे और उस धर्म का वर्णन हो सत्ता आदिक षब्द से ऐसा नही हो सकता । तो यो प्रधानता से कथन होने के कारण द्रव्यवाचक और भाववाचक षब्दो का विभाग उत्पन्न होता है ।

**द्रव्यवाचक व भाववाचक ाब्द का निरुपण व उसका समाधान** – द्रव्यवाचक व भाववाचक षब्द के सम्बन्ध मे कोई यह कहते है कि जैसे कहा गया अय पाचकः यह रोटी पकाने वाला है । तो पाचक षब्द बोला वह द्रव्य पाचक षब्द है, एक पुरुश का बोधक है और जब कहा – अस्य पाचक त्व इसका पाचकपना तो इस षब्द मे भाववाचक आई । यो द्रव्यवाचक और भाववाचक षब्दो का विभाग बनता है । सो यह कथन भी युक्तिसंगत नही है, क्योकि जब भी पाचक ऐसा कहा गया, तो पाचक ऐसा कहने मे पाचकत्व

धर्मसहित ही पुरुश का कथन हुआ । यह बात सभी के अनुभव मे सिद्ध है कि जब भी पाचक बोला गया और समझा गया कि यह पाचक है । तो यह केवल द्रव्य का ग्राहक है इस कारण यह द्रव्यवाचक षब्द है, ऐसा कथन ठीक नही, किन्तु प्रधानता से द्रव्य का वाचक षब्द है यह कथन ठीक है । इसी तरह जब भी कहा गया कि इसका पाचकपना तो इस षब्द से केवल पाचकपना अलग से समझ हो सो नही, किन्तु पाचक उसके ज्ञान मे और उसमे रहने वाला पाचकपना उसका यहाँ प्रधानता से कथन हुआ । तो द्रव्‍ का प्रधानता से कथन जो करे उसका नाम है द्रव्यापाचक षब्द और भाव का प्रधानता से कथन जो करे उसका नाम है भाववाचक षब्द । परन्तु कोई यह कहे कि कभी केवल धर्मी का ही ज्ञान किया जाता है, धर्म का भान जरा भी नही होता, तो बात न बनेगी । अथवा धर्म का ही भान होता है जिस धर्मी मे वह धर्म है, उस धर्मी का भान होता ही नही है, सो भी बात न बनेगी । इस तरह जब धर्मी और धर्म बिल्कुल अलग – अलग सिद्ध नही होते तब यह कथन करना कि जो धर्म का विशय करने वाले ज्ञान को उत्पन्न करवह तो है विकलादेष और जो धर्मी को विशय करने वाले बोध को उत्पन्न करे ऐसा वाक्य है सकलादेष । यो सकलादेष को प्रमाणवाक्य कहना और ऐसे ही लक्षण वाले विकलादेष को नयवाक्य कहना सो युक्तिसंगत नही है ।

**प्रमाणसप्तभंगी व नयसप्तभंगी के आधारभूत विवाद का उपसंहार** – सकलादेष व विकलादेष के लक्षण मे विवाद जानकर जिज्ञासा होती है कि फिर प्रमाण वाक्य है और नयवाक्य क्या है ? इसका कथन आगे होगा । उस कथन को समझने के लिए अन्य – अन्य प्रकार से जो प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी का कथन किया जाता याने प्रमाणवाक्य और नयवाक्य का जो लक्षण किया जाता उसमे यह निरखना है कि इसमे क्या त्रुटि रह गई ? जिससे अब तक सकलादेष या विकलादेष का सही लक्षण नही बना । तो अब तक दो बाते रखी गई है – पहिला मत तो यह रखा गया था कि धर्मस्वरुप वस्तु के बोध को उत्पन्न करने वाला वाक्य सकलादेष है और सत्व असत्व आदिक धर्मो मे से किसी एक धर्म का ज्ञान उत्पन्न कराने वाला वाक्य विकलादेष है । यह पहिली बात निराकृत कर दी गई थी । अब दूसरी बात कही जा रही है यह कि जो धर्मी का विशय न करके धर्म का विशय करे, ऐसे वाक्य का नाम है विकलादेष और जो धर्म को विशय न करके केवल धर्मी का विशय करे उसका नाम है सकलादेष । सो ये दोनो ही प्रकार के अभिमत यहाँ युक्तिसंगत नही उतरते और न सकलादेष और विकलादेष के लक्षण से प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी बनती है । अब इसके सम्बन्ध मे अन्य विद्वान लोग क्या कहते है ? इसका वर्णन करेगे ।

**प्रत्येक पृथक वाक्यो को विकलादेश व समुदित वाक्य को सकलादेश मानने की चर्चा पर विचार** – कुछ लोग ऐसा कहते है कि स्याद अस्ति आदिक वाक्य सातो ही प्रकार के प्रतिपादन तो अलग – अलग विकलादेष कहलाते है और वे समस्त समुदिक होकर सकलादेया कहलाते है । उनसे पूछा जाय कि यह बतलाओ कि किस कारण से स्याद अस्ति आदिक 7 प्रकार का वाक्य एक – एक करके अलग – अलग विकलादेष है ? तो वे ऐसा कहते है कि एक – एक अलग – अलग वाक्य समस्त अर्थो का प्रतिपाद करने वाला नही है, इस कारण विकलादेष है । जैसे 7 भंगो मे एक स्याद अस्ति एव कहा, तो उसमे बाकी 6 भंगो के जो वाक्य है उनका तो बोध नही कराया । इसी प्रकार हर भंग मे यही बात है किवे अपने ही वाक्य धर्म का बोध करायेगे अन्य 6 भंगो का नही इस कारण वह विकलादेष है । वे ऐसा भी नही कह सकते क्योकि इस तरह मानने से तो सातो वाक्य भी विकलादेष हो जायेगे याने स्यादअस्तिः स्यादनास्ति आदिक

ातो वाक्य मिलकर भी सम्पूर्ण अर्थो के प्रतिपादक नही हो सकते क्योकि समस्त श्रुतज्ञान ही समस्त अर्थो का प्रतिपादक होता है । और, इसी तरह जैसे कि विकलादेष के निराकरण मे बात कही गई है सकलादेष के निराकरण मे भी समझना कि सम्पूर्ण अर्थ के प्रतिपादक तो मिलकर भी सप्तभंगी का वाक्य नही है, जो अभी अन्तिम षंका मे यह बात कही गई थी कि सातो ही प्रकार का वाक्य अलग – अलग होकर तो विकलादेष और समुदिक हो करके सकलादेष है सो यह स्वरुप नही बनता । समुदित होकर भी समस्त अर्थो का प्रतिपादक हो जाये वह सप्तभंगी वाक्य, ऐसा निष्चयनही है, क्योकि सत्व असत्व आदिक के सम्बन्ध के जो 7 वाक्य कहे गए है । उन सातो वाक्यो से एक अनेक आदिक 7 वाक्यो द्वारा प्रतिपाद्य धर्मो का वर्णन नही हो पाता । कोई एक धर्म जैसे कथंचित सत् है,कथंचित असत् है, आदिक 7 धर्मो मे विस्तृत है इसी तरह वे कथंचित एक है, कथंचित् अनेक है, कथंचित नित्य है कथचित अनित्य है । तो सभी बाते एक सप्तभंगी के समुदाय से ज्ञात नही होता । इससे सकलादेष का यह अर्थ युक्त नही हो पाता कि समस्त अर्थो का प्रतिपादक होने से समुदिक होकर सप्तभंगी वाक्यो का समुदाय सकलादेष कहलाता है । इस प्रकार प्रमाण सप्तभंगी, नय सप्तभंगी, प्रमाण वाक्य व नयवाक्य के सम्बन्ध मे भिन्न – भिन्न सन्तजनों के भिन्न – भिन्न विचार है । उन सब विचारो का कुछ विचार करने बाद अब सिद्धान्त की बात पर आयें ।

**सकलादेश का स्वरुप** – सिद्धान्त के जानकर लोग ऐसा कहते है कि एक धर्म के बोघन के द्वार से अर्थात वस्तु मे एक धर्म को समझाया जा रहा है इस माध्य से उस धर्म को आदि लेकर समस्त जो धर्म है उन सब धर्मस्वरुप जो वस्तु है सो उस समस्त वस्तु के बोध को उत्पन्न करने वाला जो वाक्य है उसे सकलादेष कहते है । याने वर्णन तो होगा एक धर्म के कथन द्वारा, पर एक धर्म के कथन के माध्यम से जो उसका भी और अन्य सब धर्मो का जो बोध करा देता है ऐसा जो वाक्य है उसका नाम सकलादेष है । अन्य आचार्यजन भी असी के सम्बन्ध मे अपने कुछ षब्दो द्वारा वर्णन करते है कि वस्तु के एक धर्म के द्वारा बाकी सब वस्तुवो के स्वरुप का संग्रह करने से सकलादेष कहलाता है । इस मंतव्य का विषेश अर्थ यह है कि जब अभिन्न वस्तु एक गुणरुप से कहा जाता है तब अन्य षेश धर्मो के बिना वस्तु का विषेश ज्ञान असंभव है । याने एक गुण रुप के कहे बिना अन्य धर्मो का ज्ञान होना असम्भव है । वह एक धर्मद्वारा ही कहा जायगा । लेकिन उस एक धर्म द्वारा उस समग्र वस्तु का कथन हो तो वह सकलादेष कहलाता है । इसका कारण यह है कि कोई एक वदार्थ अस्तित्व आदिक सब धर्मो मे एक धर्म स्वरुप से या अभेद वृति से अथवा अभेद के विचार से वे सब निरंष है । इस कारण समस्त रुप से ही कथन किया जाना अभीश्ट है । कोई चाहे कि हम वस्तु को पूरा जान जाये तो उसको उस समस्त वस्तु की जानकारी कराने के लिए जो कुछ भी कहा जायगा वह वचन किसी एक विषेशता का वाचक है । संसार मे कोई षब्द ऐसा है ही नही किसी एक वस्तु के सम्बन्ध मे कहने वाला कि उसकी एक विषेशता का सूचक न होकर समस्त वस्तु का सूचक हो । जैसे कहा घडा तो घडा षब्द यह बतलाता है कि जो घडा जाय उसे घडा कहते है । तो उस घडा वस्तु मे केवल एक यही विषेशता तो नही है कि  वह घडा जाता है । उसमे अन्य भी तो धर्म है, लेकिन लोग घडा, ऐसा षब्द बोलकर उस समस्त वस्तु का ग्रहण करते है तो जानकारी मे यह पद्धति बनी हुई है कि एक धर्म के माध्यम से तो वर्णन किया जायगा और वहा समस्त वस्तु का ग्रहण हो जायगा । तो यो एक धर्म के कथन के माध्यम से उस धर्म सहित अन्य समस्त धर्मात्मक वस्तु विशयक बोधको जो उत्पन्न करे ऐसे वाक्य को सकलादेष कहते है । एक भंग के द्वारा जो तत्व अथवा धर्म कहा गया है उससे यह

विभाग बन गया कि इसके सिवाय जो अन्य धर्म है वे इसके प्रतियोगी धर्म है । मुकाबले मे भिन्न – भिन्न धर्म है । तो जब कभी एक भंग के द्वारा एक धर्म का कथन किया जाता है तो वहा उसका प्रतियागी अन्य धर्म अविवक्षित है याने उस समय कहने को इश्ट नही है और बोध हो जाता है सबका । तो यो अभेदवृति से अथवा अभेद उपचार से एक धर्म के कथन द्वारा उस धर्म सहित समस्त धर्मात्मक वस्तु का बोध हो जाता है और इस तरह का ज्ञान जो उत्पन्न कराये ऐसे वाक्य का नाम है सकलादेष ।

**द्रव्यार्थिकनय की प्रधानता मे अभेदवृति व अभेदोपचार का स्प�टीकरण** – यदि इस प्रसंग मे यह जिज्ञासा हो कि कैसे अभेद सम्बन्ध से अभेदवुति से किसी अभिन्न धर्मी को जानते है और यहा अभेद का उपचार किस ढंग से किया गया है सो सुनो ! जब द्रव्यार्थिकनयका आश्रय करके कुछ कथन किया जाता है तो वहा दुव्यत्वरुप से अभेद होने के कारण अर्थात द्रव्य तो अभेदरुप है, तो वहा अभेद सम्बन्ध से द्रव्यत्व की वृति है क्योकि द्रव्य के नाते से द्रव्यत्व धर्म से सब ध्र्मो का अभेद है । तो जब द्रव्यार्थिकनयका आश्रय करके कथन किया जाता है तो वहा अभेदवृति स्वय आ जाती है, क्योकि वह दृश्टि ही द्रव्यार्थिकनयकी है । द्रव्यार्थिकनय की दृश्टि सामान्य होती है और वह दूसरो का पृथक्करण नही करती, किन्तु सबका समग्ररुप एक अभेद मे रहता है । तो यो तो हुई अभेद सम्बन्ध से अभेदपृति । अब अभेद के उपचार की बात सुनो ! जब पर्यायार्थिकतत्वो का जैसे कि घटपना, कपालपना याने मिटटी के घट खपरिया आदिक, उन अनेक पर्यायो मे जितनी पर्यायें है उन पर्यायो मे अथवा जीव द्रव्य को समझना चाहे तो जीव मे देवपना, मनुश्यपना, इस तरह से इन व्यंजन पर्यायो मे अथवा मिथ्यात्व हुआ, सम्यक्त्व हुआ आदिक धर्मो का आश्रय करने से अर्थात् इन पर्यायो का परिज्ञान करने की स्थिति मे इनमे परस्पर भेद है तो भी द्रव्यत्वरुप एकत्व के मानने से अभेदका भी उपचार हो जाता है । हुई है एक जीव मे मिथ्यात्व सम्यक्त्व आदिक अनेक पर्याये लेकिन उन सबका आधार स्रोत तो एक यह जीव द्रव्य है । तो पर्यायार्थिकनयकी दृश्टि मे इस पर्यायात्मक रुप का भेद होने पर भी अभेद का उपचार बनता है ।

**परिज्ञानाशय के आधार पर सकलादेश व विकलादेश का विभाग** – अभेदवृति और अभेद उपवार की पद्धति से द्रव्यार्थिकनय की प्रधानता रखकर जो इन भंगो द्वारा किसी एक धर्म के कथन द्वारासमस्त धर्मात्मक वस्तु का ग्रहण किया जाता है उसको सकलादेष कहते है । तथा अभेदवृति एव अभेद उपचार इन दोनो का आश्रय न करके एक धर्मात्मक वस्तु के विशय मे ज्ञान को उत्पन्न करने वाले जो वाक्व है उनको विकलादेष मे भीतर की दृश्टि का फर्क  है अभेद पद्धति से उस एक धर्म के कथन द्वारा समस्त धर्मात्मक वस्तु का ग्रहण करना सकलादेष है और अभेद पद्धति से एक धर्म के कथन द्वारा एक धर्म विशयक ही ज्ञान को बताना सो विकलादेष है । तो यह ही सप्तभंगी अभेद पद्धति से सकलादेष को सूचित करती है और भेद पद्धति से विकलादेष को सूचित करती है ।

**प्रथम व द्वितीय भंग की उपपत्ति** – अब उन 7 भंग मे प्रत्येक भंग की विधि बतलाते है । 7 भंगो मे से अन्य धर्मो का निशेध न करके विधि विशय बोध उत्पन्न कराने वाला वाक्य प्रथम भंग है, जैसे प्रकृत मे कहा गया है स्याद अस्ति एव घटः । यहाँ विधि की जाती है घटकी । घट का अस्तित्व कहा गया है । और इससे सम्बन्धित 6 भंग और है जिनका विशय है नास्तित्व अवक्तव्य उभय आदिक, उनका निशेध नही किया । तो अन्य धर्मो का निशेध न करके विधि को बताने वाला यह प्रथम भंग है । इस भंग मे खास ध्यान देने योग्य दो बाते है – स्याद् और एव । स्यात् का अर्थ है अपेक्षा से और एव का अर्थ है अवधारण । घट है ही अपेक्षा से तो अपेक्षा लगाकर ही का बोलना बहुत रहस्य को प्रकट

करता है । सप्तभंग मे संषय का स्थान नही है । संशय का विरोधी है एवं शब्द। जहाँ एव हो, अवधारण हो वहाँ संशय का अवकाश नही है। तो एव लगाकर संशयवाद का निराकरण किया गया तथा स्यात् जो शब्द पहिले से लगाया गया उससे हठवादक निराकरण किया गया। अब द्वितीय भंग की बात सुनो! द्वितीय भंग में जो कुछ तत्व बताया है उसके अतिरिक्त जो अन्य 6 भंग है उनका निषेध न करते हुए प्रतिषेध के विषय का ज्ञान उत्पन्न करने वाला वाक्य है दूसरा भंग स्याद्नास्ति एव घटः

**प्रथम भंग में प्रयुक्त द्रव्यवाचक व गुणवाचक भाब्द का निरूपण**— अब प्रथम भंग के सम्बन्ध में एक नवीन बात पर और ध्यान दीजिए! प्रथम वाक्य में जो घट कहा है वह तो है द्रव्यवाचक और अस्ति कहा हे वह है गुणावाचक । द्रव्य है विशेष्य और अस्ति है विशेषणं। यहाँ शंकाकार शंका करता है कि ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलेंगे कि जहां गुण तो विशेष्य बन जाता है और द्रव्य विशेषण हो जाता है और द्रव्य भी विशेष्य रूप से प्रयुक्त होता है। तब यह कहना यहां कि घट विशेष्य रूप हे और अस्ति विशेषण रूप है, यह बात कैसे सम्भव हुई? उत्तर में कहते है कि कुछ हद तक आपकी बात यद्यपि सत्य है तो भी जो वाक्य समानधिकरण रूप है उन में तो यह नियम बन जाता ही है कि जो द्रव्यवाचक शब्द हो वह तो विशेष्य है और जो गुणवाचक हो वह विशेषण है। शंकाकार के कथन का यह प्रयोजन था कि जैसे अनेक उदाहरण पाये जाते है। घट का रूप फल की मधुरता, फूल की गंध, जल का ठंडापन, वायु का स्पर्श आदिक बातो में देखो! शंकाकार बता रहा था कि यहा गुण भी विशेषरूप से देखा गया है। जो प्रधानरूप से कहा जाता हो वह विशेष्य होता है जैसे कहा गया जलं का ठंडापन तो मुख्यता किस पर गई, ठंडेपन पर और ठंडापन है गुण, तो देखो यह विशेष्य बन गया। और कही—कही द्रव्य भी विशेषण बन जाता है। इसके समाधान में थोड़ा इस बात पर ध्यान देना चाहिऐ कि समान अधिकरण वाले वाक्य में तो द्रव्य वाचक को ही विशेष कहा जाता है और गुणवाचक को ही विशेषण कहा जाता है। समानाधिकरण वाक्य का अर्थ यह है कि अवच्छेदक धर्म और वस्तु का गुण दोनों एक अधिकरण में हे ऐसे बोध का जनक वाक्य जैसे कहा नील कमल। तो अब यहाँ अवच्छेदक धर्म है नील, नील कमल न कि अन्य पीला आदिक। तो जो शब्द अन्य का निराकरण करे उसे कहते है अवच्छेदक। व्यवहार के प्रयोग में भी शब्द अवच्छेदक बहुत बोले जाते है। जैसे किसी एक का नाम लेकर बोलना, तो इसमें अवच्छेदक बहुत बोले जाते है। जैसे किसी एक का नाम लेकर बोलना, तो इसमें अवच्छेदकता स्पष्ट है कि यह ही आया, अन्य कोई नही। तो अन्य के निराकरण की बात स्पष्ट न कहने पर भी शब्द में यह सामर्थ्य है कि वह अन्य का अवच्छेदक बन जाय। तो जैसे कहा गया नीलकमल, तो नील हुआ अवच्छेदक और कमल हुआ द्रव्य। तो द्रव्य वाचक कमल शब्द में तो है विशेष्यपन और नील इस शब्द में है ।

**प्रथम भंग में अवच्छेदकता व अवधारण का प्रकाश** – अब परखिये! प्रथम भंग में अवच्छेदकता की बात। जैसे स्वकीय स्वरूप से अस्तित्व का भंग किया गया है, कही इसी प्रकार स्वकीय रूप से नास्तित्व का भी भान मत हो जाय, इस प्रयोजन के लिए अनिष्ट अर्थ के निराकरण के लिए एव शब्द लगाया गया है। स्याद् अस्ति एव घट, अपने स्वरूप से है ही। ही के लगाये बिना कहीं यह बात न बन जाय कि पदार्थ अपने स्वरूप से है और परके स्वरूप से है ही। ही के लगाये बिना कही यह बात न बन जाय कि पदार्थ अपने स्वरूप से है और परके स्वरूप से भी है। तो प्रतियोगी का व्यवच्छेद करने के लिए इसमें एव शब्द दिया गया है। तब प्रथम भंग में स्याद् अस्ति एव, इस शब्द

के कहने से यह अर्थ ध्वनित होता है कि निज स्वरूप से घट का अस्तित्व ही है न कि नास्तित्व। अर्थात अपने स्वरूप से है ही है, उसके निजरूप का आसक्त नही है। इसी सम्बन्ध में अन्य आचार्य जनो ने भी कहा है कि वाक्य में जो अवधारण शब्द दिया गया है वह अनिष्ट अर्थ की निवृत्ति के लिए दिया गया है। यदि अवघारण करने वाला शब्द न दिया जाय तो न कहे हुए के समान कदाचित कही उसके प्रतियोगी की प्रतीति हो जायेगी। अर्थात् एव शब्द के न कहने पर स्वरूप से नास्ति तत्व का भी बोध हो जायगा। अतः भंग में वाक्य के अवधारण रूप एवं शब्द का प्रयोग करना उचित है।

**शंकाकार द्वारा एव शब्द की व्यर्थता का निरूपण –** शंकाकार कहता है कि देखिये! नाना पदार्थ वाचक शब्दो में दीख जाते है कि कहीं एव शब्द लगाने पर भी अनिष्ट अर्थ की निवृत्ति नही होती। और कही एव एव शब्द न लगाने पर भी अनिष्ट अर्थ की निवृत्ति हो जाती है। जैसे कहा – गौः एव, केवल गौ। यहाँ निश्चयवाचक एव शब्द साथ में जुड़ा हुआ है फिर भी अनिष्ट अर्थ की निवृत्ति नही हो रही। सो कैसे? उसे यों देखिये कि गौ शब्द के अनेक अर्थ है। गौ शब्द– इंद्रिय, किरण, सूर्य आदि अनेक अर्थो का वाचक है। तो गौ एव यहां एव अवधारण वाचक शब्द रहने पर ही गौ शब्द द्वारा वाक्य जितने अर्थ है सभी अर्थो की उपस्थिति हो जायगी। और प्रयोजन था यहां गाय पशु से लेकिन शब्द में तो अर्थ भरे है अनेक, तो गौ ही यों यहां ही लगाकर केवल गाय पशु आया, ऐसा नही कहा जा सकता, क्योकि गौ शब्द के अनेक अर्थ है। किरण, सूर्य आदिक भी अर्थ लिए जा सकते है। तो देख लीजिए कि अवधारण वाला एव शब्द लगा है इसमें, लेकिन गौ, एव कहने से केवल गाय पशु का ही अवधारण बने सो बात नही। तो यहां यह देख लिया ना कि अवधारण वाचक एव शब्द लगाने पर भी यहां पर अनिष्ट अर्थ की निवृत्ति नही हो सकती। अब दूसरा स्थल सुनो। यहां एव शब्द का प्रयोग भी न हो फिर भी अनिष्ट अर्थ की निवृत्ति हो जाती है। जैसे कहा गया ''गा आ नय'' गाय को लावो, तो यहां एव शब्द कुछ नही लगाया गया, फिर भी प्रकरण वश केवल गाय का ही बोध हुआ। गायको ही लायेगा सुनने वाला, अनिष्ट अर्थ को न लावेगा। तो अब यह निश्चय न रहा कि जहां एव शब्द लगा हो वहाँ अवधारण रहता है। गां आनय ऐसा कहने पर चूंकि वहाँ दूध लाने का प्रयोजन था उसके लिए पशु बोलने की बात कही जा रही है। तो उस समय गौ लावो इस शब्द से पशु का ही अवधारण हुआ, अन्य का नही। इससे सिद्व है कि अवधारण शब्द के प्रंयोग से अन्य की निवृत्ति न हो और 'एव' न भी लगा हो फिर भी अनिष्ट अर्थ की निवृत्ति हो जाय। इस हेतू से, अन्वयव्यतिरेक सही न रहने से निश्चयवाचक एव शब्द में अन्य की निवृत्ति। निवृत्ति में कारणपना नही आया अर्थात् एवं लगाने से अन्य बातो का निराकरण हो जाय यह बात नही आ सकती है। और भी देखिये! एव शब्द लगाने में दोष, अन्य की निवृत्ति करता हुआ जो एव शब्द है वह शब्द है वह एव शब्द अन्य एव शब्द भी अपेक्षा रखता है या नही? अर्थात् एव शब्द का जो अर्थ है उसका भी अवधारण बन जाय और अन्य की निवृत्ति हो जाए इसीलिए अन्य एव शब्द की अपेक्षा होती है क्या? यदि कहो कि हाँ अन्य एव शब्द की अपेक्षा होती है तब तो अनवस्थादोष आयगा। जैसे अस्तित्व को पुष्ट करने के लिए एव शब्द लगाया गया है तो एव शब्द के अर्थ को पुष्ट करने के लिए और एव लगाना चाहिए। यों अनवस्था दोष होगा और यदि कहो कि एव शब्द दूसरे एव की अपेक्षा नही रखता है, तो जैसे एव'' के अर्थ का ज्ञान कराने में जैसे अन्य एव के प्रयोग बिना भी एव का अवधारण हो जाता है इसी तरह एव के प्रयोग बिना ही पदार्थ का अवधारण हो जाना चाहिए। तो यों सब शब्दों के प्रयोग में भी एव के कहे बिना ही प्रकरण आदिक से अन्य की निवृत्ति बराबर बन जायगी। तब

स्याद अस्ति एव इस प्रकार के प्रथम भंग में एव शब्द को जोड़ना बिल्कुल व्यर्थ है। शंकाकार इस समय प्रथम भंग स्याद अस्ति एव इसमें स्याद अस्ति, इन दो पर अपत्ति न देकर यहां एव शब्द पर आपत्ति दे रहे है कि एव कहने की जरूरत नही है। क्योंकि इससे अवधारण का अन्वय व्यतिरेक नही है। याने एव कहने पर भी अन्य की निवृत्ति निश्चित नही है और एव न कहने पर भी अन्य की निवृत्ति है। साथ ही एव अगर दूसरे ''एव'' को चाहेगा तो अनवस्था बनेगी। और न चाहेगा तो पहिले ही एव की कोई आवश्यकता नही है। इस प्रकार प्रथम भंग में एव  शब्द का देना व्यर्थ है। यों शंकाकार ने शंका की।

**''एव'' शब्द की अव्यर्थता व आवश्यकता का निरूपण** — एव शब्द से अवधारण सिद्व नही होता है ऐसी आशंका के समाधान में कहते है कि ऐसी शंका नही कर सकते, क्योकि फिर तो शब्द शास्त्र की परिपाटी विरूद्व पड़ जायेगी। शब्द शास्त्र में यह बताया गया है कि जो शब्द अपने अर्थ मात्र में जो कि अनवधारित हुए है शब्द याने निश्चय रूप से कहा गया नही है ऐसे अपने अर्थमात्र में जो शब्द संकेतित हुए है याने जो शब्द कहे गए है वे शब्द अपने स्वरूप के अवधारण की विवक्षा में अर्थात् ये ऐसे ही है यों निश्चय की विवक्षा में एव  शब्द की अपेक्षा रखते है जैसे कि शब्दों के समुच्चय आदिक की विवक्षा वे च शब्द नही बोलते तो यह अर्थ रहता कि घटको लावो। एक सामान्य कथन था। सम्भव है कि घट के ही समान और कोई पदार्थ थोड़ा सा उस प्रकृत प्रयोजन को बनाता होता तो उसको भी ला सकता था। जैसे कहा कि एक कटोरा लावो और न मिले कटोरा उस समय तो गिलास को भी ला सकता है। क्योंकि जो प्रयोजन कटौरा से बनता है थोड़ा थोड़ा कार्य गिलास से चल जायेगा लेकिन जब यह कहा जायें कि एक कटौरा ही लाओ तो गिलास वगैरह कुछ नही लाये जायेंगे। तो ही शब्द एक अवधारण को सिद्व करता है। जैसे कि 'च' शब्द समुच्चय को जताता है। जैसे किसी ने कहा — कटोरा लावो और गिलास लावो तो जो और शब्द लग गया जो कि 'च' का अर्थ है तो उससे समुच्चय अर्थ आ गया। तो यह एव शब्द अवधारण को सूचित करता ही है। तो जो शब्द अवधारण का अर्थ नही रखता, अपने ही वाक्य अर्थ को रखते है उन शब्दो के आगे निश्चय की विवक्षा होने पर एव शब्द लगाया जाता है। लेकिन एव शब्द तो खुद अवधारणा के रूप में रखा गया। एव का अर्थ ही निश्चय होता है। तो अब उससे और निश्चय के लिये अन्य एव शब्द की अपेक्षा न रहेगी। जैसे च का समुच्चय समझने के लिये दूसरे च की अपेक्षा न रहती । जैसे बोला कि कटोरा लावो! और और गिलास लावो! तो ऐसे अनेक और बोलने का प्रयोजन है? एक और से ही समुच्चय का अर्थ ध्वनित होता है। अब उसके समुच्चय बनाने की आवश्यकता नही है। इसी तरह कटोरा ही लावो। कटोरा अर्थ के अवधारण के लिए एक बार 'ही' बोल दिया अब और ही' के अवधारण की आवश्यकता है जिससे और 'ही' लगाने की जरूरत पड़े। यों भंगों में जो एव शब्द लगा हुआ है— स्याद् अस्ति आस्ति एव स्याद नास्ति एवं वह शब्द सार्थक है और उसके अवधारण के लिए और शब्द की आवश्यकता  नही रहती।

**एव शब्द की व्यर्थता की शंका व  उसका समाधान**— अब यहाँ कोई संदेह रख रहा है कि भाई! जो निपात शब्द होता है वह तो द्योतक ही होता है । अर्थात् निपात शब्द का जिस शब्द के साथ जुड़ाव रहता है वह निपात शब्द जिसमें जुड़ा है उस शब्द के अर्थ को ही प्रकाशित करता है। उसी के मायने है द्योतक होना। तो विपात द्योतक होता है, इस कारण उसमें एव शब्द की वाचकता सम्भव नही है अर्थात एव शब्द द्योतक है वाचक नही है। इस कारण एव शब्द का प्रयोग व्यर्थ ही है, वह तो किसी अर्थ का वाचक ही नही है। उत्तर में कहते है कि ऐसा नही कह सकते, क्योकि निपात शब्द

द्योतक भी होता और वाचक भी, ऐसा शब्द शास्त्र में बताया ही गया है कि द्योतकाश्च भवन्ति निपाताः निपात द्योतक भी होते है तो वहां जो 'च' शब्द का प्रयोग किया है और कहा है कि और द्योतक भी होते है निपात' तो इस च शब्द से निपातों की वाचकता भी बताई गई है। निपात शब्द वाचक भी होते है, यह अर्थ अपने आप ध्वनित हो जाता है।

**द्योतक शब्द के लिए अन्य द्योतक शब्द की अनपेक्षा का कथन—** कुछ संतजन तो स्पष्ट ऐसा कहते है कि जो निपात शब्द होते है, वे द्योतक हुआ करते है और द्योतक होने के नाते से द्योतक शब्द के लिए अन्य द्योतक शब्द की अपेक्षा नही रहती। इस कारण अवधारण का द्योतन करने के लिये अन्य एकाकार की अपेक्षा न रहेगी। तो एक शब्द के निश्चय के लिए अन्य एव शब्द की अपेक्षा नही रहती। निपात शब्द वह कहलाता है कि जिसका कुछ वाच्य नही, किंतु किसी शब्द के अर्थ को ही ध्वनित करने के लिये शब्द बनाया गया है। जैसे हिन्दी में और ही भी इन शब्दो को निजी अर्थ कुछ नही है। और ये शब्द कभी स्वतंत्र प्रयोग में आते नही किन्ही शब्दो के साथ ही इन निपात शब्दो का प्रयोग होता है उनके वाच्य में कुछ विशेषता जताते है ये निपात, इनका भिन्न अर्थ कुछ नही है। तो उन्ही निपात शब्दो में एव शब्द है। जैसे हिन्दी में 'ही' होता है, यह अवधारण के लिए आता है। तो चूंकि यह एव अथवा ही शब्द स्वंय अवधारण द्योतक है, इस कारण इनका और अवधारण करने के लिए अन्य एव शब्द की अपेक्षा नही। जैसे कि दीपक द्योतक पदार्थ है प्रकाश करने वाली वस्तु है। अब दीपक के निश्चय करने के लिये अन्य दीपक की अपेक्षा नही रहती। तो जैसे घट पट आदिक पदार्थो को ढूँढने के लिये दीपक की अपेक्षा की जाती है इस तरह दीपक को ढूँढने के लिये अन्य दीपक की अपेक्षा नही रहती। तो जैसे घट आदिक पद वाच्य शब्द है तो इन वाचक शब्दों के अवधारण करने के लिए एव शब्द की अपेक्षा हुई घट ही है। यहां तो ही लग गया, पर ही के और निश्चय करने के लिये अन्य ही की अपेक्षा न होगी।

**द्योतक शब्द में भी अन्य द्योतक शब्द जुड़ने की एक शंका व उसका समाधान —** निपातों से केवल द्योतक कहकर प्रकृत समाधान में सहयोग देने के प्रयत्न करने वाले इस चर्चाकार के प्रति कोई शंकाकार कहता है कि भाई देखिये! द्योतक भी शब्द हो तो भी उसको अन्य द्योतक शब्द की अपेक्षा देखा जाता है। जैसे एक प्रयोग किया गया— ऐसा ही है। अब यहां देखिये! ऐसा यह शब्द भी द्योतक है निपात है और उस द्योतक शब्द के अवधारण के लिए इसमे ही फिट बैठाया गया है। ऐसा ही है। यह अयुक्त प्रयोग तो नही है, और है दोनो द्योतक शब्द। ''ऐसा'' यह शब्द भी द्योतक है और ''ही'' भी द्योतक। तो द्योतक शब्द के लिए भी अन्य द्योतक शब्द की अपेक्षा देखी जाती है। जैसे कि एवं एव, इसमें एवं के साथ एवकार की अपेक्षा हुई, इसी प्रकार समस्त द्योतक शब्द द्योत्य अर्थ में, जिस अर्थ का प्रकाश करना है उस अर्थ में अन्य द्योतक की अपेक्षा रहेगी। और, इसी तरह फिर तो अनवस्था हो जायगी। वह किसी प्रकार हटायी न जा सकेगी। इस शंकाकारके प्रति चर्चाकार समाधान करता है कि यह कथन करना युक्त नही है। क्योकि यहां जो उदाहरण दिया है एवं एव' ऐसा ही है, इस उदाहरण में जो एवं शब्द है उसका खुद का निजी अर्थ है, वह स्वार्थ वाचक होने के कारण स्व अर्थ से अतिरिक्त अन्य अर्थ की निवृत्ति के लिए द्योतक एव शब्द की अपेक्षा हुई। निपात शब्द वाचक भी हुआ करता है, यह बात शास्त्र सम्मत है तात्पर्य यह है कि जिन शब्दो का अपना अर्थ होता है उनके अवधारण के लिए एवं एव शब्द का प्रयोग होता है लेकिन एव के अवधारण की न कोई अपेक्षा रहती है और न अन्य एव शब्द की वहां आवश्यकता होती

है। निपात शब्द कई निपात शब्द केवल द्योतक होते है। यहां एव अर्थात् ऐसा, यह शब्द वाचक भी है द्योतक भी है। निपात शब्द वाचक भी होता है, इसमें संदेह न करना चाहिए। देखिये! समास जो हुआ करते है वे वाचक शब्दो में ही हुआ करते है। निपात के साथ ही अगर कही समास होता है तो समझना चाहिए कि यह वाचक है और इस अर्थ को ध्यान में रखकर यहां समास किया गया है। जैसे उपकुम्भम्–यह समास वाला शब्द है, इसका अर्थ है– कुम्भ के समीप। तो यहां उपशब्द है इसका अर्थ है कुम्भ के समीप। तो यहाँ उपशब्द है तो निपात शब्द, लेकिन इसका अपना अर्थ है। यहां समीप अर्थ में उप का प्रयोग है तभी उप शब्द के साथ कुम्भ शब्द का समास संगत हुआ है अन्यथा अर्थात् यदि इस निपात शब्द का स्व अर्थ न होता, केवल द्योतक ही कहलाता। तो इस शब्द के साथ समास न हो सकता था, क्योंकि द्योतक शब्द के साथ समास नही किया जाता। जो शब्द अपने खुद का अर्थ रखते है उन शब्दो के साथ ही समास किया जाता है। तो चर्चाकार के प्रति शंकाकार की शंका अयुक्त है। निपात शब्दो में जो शब्द वाचक भी है उनके साथ अन्य द्योतक शब्द लगा दिये जाते है, किन्तु जो शब्द केवल द्योतक ही है, जिनका अपना कुछ अलग अर्थ नही है उनके साथ अन्य द्योतक शब्द की अपेक्षा नही रहती।

**अन्यव्यावृत्तिवाद में 'एव' शब्द की व्यर्थता की आशंका व उसका समाधान** — यहां पर क्षणिकवादी सौगत कहते है कि जितने भी शब्द है वे सभी शब्द अन्य व्यावृत्ति के वाचक है। जैसे कि घट कहा तो घट का अर्थ सीधा विधिरूप घड़ा नही है, किन्तु घट को छोड़कर बाकी अन्य पदार्थ नही है, यह घटका अर्थ होता है। तो सभी शब्द जब अन्य व्यावृत्ति के वाचक है और इसी कारण घट आदिक पदार्थो से भी अन्य की व्यावृत्ति का बोध होता है। तब यहां अनिष्टरूप अर्थ की निवृत्ति के लिए अवधारण वाचक एव शब्द देना युक्त नही हे। शंकाकार का यहां यह अभिप्राय है कि जब कोई शब्द अपना निजी अर्थ नही रखता, किन्तु उसका अर्थ अन्य व्यावृत्ति  है तब फिर अवधारण वाचक एव शब्द देने की बात युक्त नही है। इसके समाधान में कहते है कि सौगत का यह सिद्वान्त युक्तिपूर्वक नही है। क्योंकि घट आदिक शब्दो से दोनो ही बोध हुआ करते है। अन्य की निवृत्ति भी ज्ञात होती है और विधि रूप से घट अर्थ भी ज्ञान में आता है ऐसा सभी को अनुभव सिद्व है जैसे किसी ने कहा घड़ा तो इस शब्द से दोनो ही बातें बोध में आती है कि यह घडा है और घड़े के अतिरिक्त अन्य पदार्थ यह नही है। यदि ऐसा न मानोगें कि घट आदिक शब्दों से विधिरूप अर्थ का बोध हुआ करता है तो अन्य व्यावृति शब्द विधि रूप से अन्य की निवृत्ति रूप अर्थ का ज्ञान कैसे करा सकता है? जैसे पूछा जाय कि अन्य व्यावृत्तिका मतलब क्या है? तो उसकी भी तो विधि बतानी पड़ेगी और विधि तुम अर्थ में मानते नही तो विधि अर्थ माने बिना अन्य व्यावृत्ति शब्द का भी अर्थ नही बन सकता। यदि सुगत ऐसा कहें कि अन्य व्यावृत्ति शब्द भी अन्य व्यावृत्ति से भिन्न अन्य की व्यावृत्ति रूप से अन्य व्यावृत्ति रूप अर्थ का बोध कराता है जैसे कि घट कहने से अघटव्याबृत्ति रूप से अन्य व्यावृत्ति समझ में आती है इसी प्रकार अन्य व्यावृत्ति शब्द से इससे भिन्न जो अन्य है उनकी व्यावृत्ति का अर्थ बन जायगा। तो यह कहना संगत नही है क्योकि यदि उस व्यावृत्ति से भिन्न अन्य व्याबृत्ति रूप से बोध कराये तो फिर वह तीसरी अन्य व्याबृत्ति से अन्य व्यावृत्ति का बोध होगा। और तीसरी अन्य व्यावृत्ति का बोध चौथी अन्य व्यावृत्ति से होगा। तो यों इसमें अनवस्था दोष आयगा, क्योंकि विधि न मानने से अन्य की व्याबृत्ति की धारा कभी समाप्त ही न होगी। इससे यह सिद्व हो गया कि वाक्य में अनिष्ट की निवृत्ति धारा कभी समाप्त ही न होगी। इससे यह सिद्व हो गया कि वाक्य में अनिष्ट की निवृत्ति के लिये अवधारणसूचक एवं शब्द कहना युक्त ही है। तब

स्याद्अस्तिएव घटः इसका निश्चयात्मक अर्थ यह हुआ कि घट अपने स्वरूप से है ही। स्याद्नास्ति घटः इसका अवधारणपरक अर्थ यह हुआ कि घट पररूप से नही है ही, इस तरह प्रत्येक भंगो में एव शब्द अपनी अपेक्षा को लेकर अवधारण ही कराता है।

**एव शब्द की अयोग्यवच्छेद बोधकता**– अब एवकार के अर्थ और प्रकार के विषय में सुनो! एव शब्द तीन प्रकार का होता है। एव शब्द से निश्चय ही तो किया जाता है। उसमें तीन कलायें होती है। और उस पद्वतिं से एव तीन प्रकार का होता है– एक अयोगव्यवछेद बोधक दूसरा अन्य योग– व्यवच्छेद बोधक तीसरा अत्येता योगव्यवच्छेद बोधक। इसका सामान्यतया अर्थ यह है कि जिसका योग जुड़ाव सम्बन्ध नही है उसका निराकरण कर देता है ही' शब्द। जैसे किसी ने कहा कि शंख सफेद ही, होता है तो इससे 'ही' लगा है सफेद के साथ। सफेंद है विशेषण और शंख है विशेष्य। तो उस शंख में यह निश्चय किया गया है कि सफेद ही है। तो इस 'ही' ने अन्य किन बातो को हटा दिया? काला, पीला, नीला आदिक अन्य विशेषणो का व्यवच्छेद कर दिया। तो जो विशेषण में लगा हुआ एवकार हो वह अयोग का व्यवच्छेद करता है। जैसे कोई कहे कि यह पुरूष मोटा ही है तो अर्थ हुआ कि पतला आदिक नही है। तो जिन विशेषणो का योग नही हो सकता उस विशेष्य में उन सब विशेषणो को हटा दें उसे अयोग व्यवच्छेदक कहते है। तो एव शब्द में अयोग व्यवच्छेदकपने की कला पड़ी हुई है। अयोगव्यवच्छेद में होता क्या है? कि जिस उद्देश्य से सहित अधिकरण है उसमें जिसका अभाव बताना है उस अभाव की अप्रतियोगिता को अयोगव्यवच्छेद कहते है। जिस वस्तु का अभाव कहा जाता है यह वस्तु उस अभाव का प्रतियोगी है। प्रतियोगी का अर्थ समझिये शत्रु। जैसे घटका अभाव कहा तो घट के अभाव का प्रतियोगी है घट। घट है तो उसका अभाव नही। अभाव है तो वहां घट नही। जिस वस्तु का अभाव बताना है उस अभाव का प्रतियोगी वह वस्तु होती है। यहां जो उदाहरण दिया गया है वहां वस्तु बतायी जा रही है शंख। उसमें धर्म है शंखपना। तो शंखपना धर्म से सहित जो शंख है उसके साथ ही साथ सफेदी रूप धर्म की विधि बतायी जा रही है। तो शंखपने का अधिकरण है शंख। और इसी शंख में समान अधिकरण रूप से रह रहा है सफेदीपर। तो उसमें नीलपीत आदिक पन का अभाव है। इस अभाव का प्रतियोगी शंख हुआ। और सफेदी का अभाव है नही तो सफेदी के अभाव का शंख अप्रतियोगी हुआ। मायने सफेदीपन और शंख को तो सम्बन्घ है, शत्रुता नही है और जिन – जिन धर्मो का अभाव बतलाया जा रहा है उन–उन धर्मो की शत्रुता है। इस रीति से शंखपन जैसे शंख में रह रहा है ऐसे ही सफेदपन भी शंख में ही रह रहा है कोई कहे कि शंख सफेद ही है तो उसका अर्थ हुआ कि शंख में जिन – जिन धर्मो का योग नही है, जिन–जिन धर्मो का अभाव है उन धर्मो का व्यवच्छेद करता है 'ही' शब्द। शंख़ सफेद ही है, काला, पीला, नीला आदिक नही। वह अन्य समस्त विशेषणो का परिहार कर देता है तो देखो यहां एव शब्द लगाने से अयोग व्यवच्छेद हुआ तो अयोग व्यवच्छेद बोधक एवकार वह कहलाता है जो विशेषण के साथ लगा हुआ हो।

**एव' शब्द की अन्ययोगव्यवच्छेदबोधकता** – अब दूसरे प्रकार के 'एव' की बात सुनो! एक एवकार अर्थात् 'ही' शब्द अन्ययोग व्यवच्छेदबोधक होता है जो एवकार विशेष्य में लगा हुआ होता है वह है अन्य योग के व्यवच्छेदक बोध कराने वाला। जैसे कि कहा– अर्जुन ही धनुर्धारी है तो यहाँ ही शब्द विशेष्य के साथ लगा है। अर्जुन ही धनुर्धारी है अन्य लोग धनुर्धारी नही है, तो इसमें अन्य विशेष्यों का व्यवच्छेद किया गया है। अन्य योगव्यवच्छेद नाम है उसका जो विशेष्य से भिन्न पदार्थो का तादात्म्य हटा दे। तो

यहां पर जो अर्जुन के साथ ही शब्द लगा है वह अर्जुन को छोड़कर अन्य पुरूषो में धनुर्धारिता के तादात्म्य का अभाव बताता है कि धनुर्धारी तो अर्जुन ही है। अब यहाँ एक विशेष बात यह भी जान लेनी चाहिये कि जैसे अर्जुन को छोड़कर अन्य पुरूषो में धनुर्धारीपने का तादात्म्य नही है, तो अर्जुन में धनुर्धारीपने को तादात्म्य है। तो जो ही शब्द विशेष्य के साथ लगा हुआ हो वहअन्य योगव्यवच्देदक होता है।

**'एव' शब्द की अत्यन्तायोगव्यवच्छेद बोधकता** – अब तीसरा एव शब्द है अत्यन्तायोगव्यवच्छेद का बोधक। इसका लक्षण यों समझिये कि क्रिया में लगा हुआ जो एव शब्द हो वह है अत्यन्तायोगव्यच्छेद बोधक। जैसे कि कहा नील सरोज होता ही है, कमल नील होता ही है। यहाँ ही शब्द क्रिया के साथ लगा है। यहाँ पर कमल को अन्य पदार्थो से पृथक करने वाला धर्म है कमलपना, क्योकि कमलपने से सहित कमल का ही उद्देश्य करके कि इसमें कुछ बताना है, नीलपने का विधान किया गया है। सो कमलपने के रूप धर्म से सहित कमल में नील से भेदरूप धातु के अर्थ का विधान करना यह इष्ट है, तो यहाँ नील में अभावता बताते है और अन्य में यह क्रिया नही है, सत्ता नही है यह भी बतातें है। भावार्थ यह है कि जहाँ अभेद रहेगा वहाँ अभेद का अभाव नही रह सकता। जैसे कमलपने में व्यापक जिनका अत्यन्ताभाव है, उन अत्यन्ताभावो का अप्रतियोगी है नील से अभिन्न कमल। सीधी बात यो जानना चाहिए कि जिस एव शब्द का सम्ब्न्ध क्रिया से है वह है अत्यन्तायोग व्यवच्छेदबोधक एवकार।

**स्यादस्तयेव घटः इस प्रथम भंग में प्रयुक्त एव की अत्यन्तायोगव्यवच्छेदबोधकता होने से अनिष्ट निवृत्ति के अभाव की शंका** — एवकार के तीन प्रकार सुनकर कि जिसमें विशेषण संगत एवकार हो वह तो है अयोगव्यवच्छेद बोधक और विशेष्य में लगा हुआ एवकार हो तो वह है अन्ययोगव्यवच्छेदबोधक तथा क्रिया में लगा हुआ एवकार हो तो वह है अत्यन्तायोगव्यवच्छेद बोधक। यों एवकार के तीन भेद सुनकर शंकाकार कहता है कि इस रीति से तो स्याद् अस्ति एव घटः यह जो प्रथम भंग कहा है इसमें एवकार अत्यंतायोग व्यवछेदक बोधक होना चाहिये क्योकि इसमें 'एव' क्रिया से लगा हुआ है। अस्ति एव (है ही), इस प्रकार 'एव' के क्रिया से लगे रहने के कारण अत्यन्तायोगव्यवच्छेद बोधक एवकार होगा और ऐसा एवकार मान लेने पर फिर जो आपका इष्ट अर्थ है उसकी सिद्दि न होगी। आपका इष्ट अर्थ था अयोगव्यवच्छेद में अर्थात् घट है ही, घट पररूप से नही है, तो पररूप से अस्तित्व का अवच्छेद करने के लिये एव शब्द माना था लेकिन अब तो एव शब्द क्रिया में लगा होने के कारण अयोगव्यवच्छेद न होगा। इससे तो अत्यन्तायोगव्यवच्छेद बना। जैसे कि किसी कमल में नीलपने के अभाव मं भी नीलकमल होता ही है ऐसा प्रयोग किया जाता है।

**प्रथम भंग मे प्रयुक्त 'एव' भाब्द की अयोगव्यवच्छेद बोधकता का समाधान** – उक्त शंका के समाधान में कहते है कि यह बात युक्त नही है। इस प्रथम भंग में जो एवकार लगा है वह अयोगव्यवच्छेदबोधक ही स्वीकार किया गया है। रही यह बात कि एव तो लगा है क्रिया में सो सुनो! क्रिया में लगे हुए एवकार का भी कही — कही अयोगव्यवच्छेद अर्थ होता है। भले ही एव क्रिया में लगा हो मगर उसकी धुन, उद्देश्य, प्रकरण, दृष्टि आदि निरखकर समझ लिया जाता है कि इस एव का अर्थ अयोगव्यवच्छेद है तो स्यात् अस्ति एव घटः इस वाक्य में घट है ही तो 'ही' भले ही क्रिया में लगा है पर अघट नही है इस तरह अयोगव्यवच्छेद ही अर्थ है। जैसे कि एक प्रयोग होता है — ज्ञान अर्थ को ग्रहण करता ही है। इस प्रयोग में ज्ञानत्व का अधिकरण है ज्ञान और उस ही

समानाधिकरण में जो अत्यन्ताभाव जाहिर किया है किसका? न ग्रहण करने का, उसकी अप्रतियोगिता का अर्थ ग्राहकत्व रूप धात्वर्थ में परिचय है, उसका अप्रतियोगी है ज्ञान, तो वह अर्थ का ग्रहण कर रहा है। इस अर्थ में उसका बोध हो ही रहा है। वहां पर भी जब अत्यन्तायोगव्यवच्छेद के बोध में वचन बोला जायगा कि ज्ञान अर्थ का ग्रहण करता ही है तो इस तरह की पद्वति में यह भी बोला जायगा कि ज्ञान अर्थ का ग्रहण करता ही है तो इस तरह की पद्वति में यह भी बोला जा सकेगा कि ज्ञान चांदी का ग्रहण करता ही है। लेकिन यह प्रयोग युक्त तो न होगा, क्योकि समस्त ज्ञानों में चांदी को ग्रहण करता ही है। लेकिन यह प्रयोग युक्त तो न होगा, क्योकि समस्त ज्ञानो में चांदी को ग्रहण करने का अभाव है। ही अर्थात सारे ज्ञान चांदी का ही तो ग्रहण नही करते, तो सारे ज्ञानों में रजत ग्राहकता का अभाव होने पर भी जो कुछ ज्ञान में रजत ग्राहकता के सत्व से ही ज्ञान रजत को ग्रहण करता ही है यह एवकार का प्रयोग अत्यन्तायोग व्यवच्देद में निर्वाध बन जायगा। तो इसी तरह यहां भी समझ लेना चाहिए कि प्रथम भंग में यद्यपि एव शब्द का प्रयोग क्रिया के साथ लगा हुआ है तो भी यह अयोग व्यवच्छेदबोधक ही है।

**अस्ति के साथ एव शब्द के योजित रहने पर भी उसके अयोगव्यवच्छेदरूप अर्थ का वर्णन** – स्यादअस्तिएव घटः आदिक वाक्यो में अयोगव्यवच्छेदबोधकता की बात घटा लीजिए! घटत्व का अधिकरण है घट, घटके समानाधिकरण में अत्यन्ताभाव का प्रतियोगीपन जो एवकार का अर्थ है वह अस धातु के अस्तित्वरूप अर्थ में याने अस्तित्व में अन्वित है सो वहां घटत्व का समानाधिकरण रूप अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी अस्तित्ववान घट है यह परिचय हुआ। याने अत्यन्ताभाव का व्यवच्छेद भी अर्थ लिया जाय तो उससे भी अयोगव्यवच्छेद का अर्थ होता है। है ही अर्थात् घट में स्वरूप के अभाव का अभाव है इससे भी सिद्व हुआ कि प्रथम भंग मे स्वरूप का अस्तित्व बताया गया है। घटत्व का समानाधिकरण रूप जो अत्यन्ताभाव है। जिस किसी का भी, अघट का अत्यन्ताभाव है तो अघट का ही तो अत्यन्ताभाव है किन्तु अस्तित्व का तो अत्यन्ताभाव न रहा तो अत्यन्ताभाव का व्यवच्छेद भी घटित हो जाता हे और निष्कर्ष रूप में अयोगव्यवच्छेद अर्थ होता है। घट अपने स्वरूप से है परस्वरूप से अत्यन्ताभाव है। तो इस प्रकार चाहे क्रियासंगत एव की पद्वति से लगावो चाहे विशेषण संगत एवकार की पद्वति से लगाओ, अर्थ यह होगा कि यह अपने स्वरूप से है और परस्वरूप से नही है। पररूप का व्यवच्छेद कर देने वाला यह प्रथम भंग है।

**एवकार का अन्यनिवृत्तरूप उद्देश्य** – यहां शंकाकार कहता है कि क्रियासंगत एवकार का अर्थ प्रयोग व्वच्छेद रूप जो बताया गया है अर्थात् यह बताया गया है कि घट में जो कि घटत्व का अधिकरण है उसमें ही अत्यन्ताभाव है सो उस अत्यन्ताभाव का व्यवच्छेद का सूचक एवकार का अर्थ अयोगव्यवच्छेद लगाया है सो इससे अस्तित्व का अत्यन्ताभाव भी तो बन सकता है, क्योकि अस्तित्व के अत्यन्ताभाव रूप नास्तित्व का घट में सत्व है। जैसे कि घट में अस्तित्व है इसी प्रकार घट में नास्तित्व भी है और ऐसे अभाव का अस्तित्व अप्रतियोगी रहे इसमें बाधा आ जाती हे। तो यों जैसे कि उस वाक्यका अर्थ लगाया हे। क्रिया संगत एवकार का भी जो अयोगव्यवच्छेदरूप अर्थ लगाया है सो उससे तो नास्तित्व का घट में निषेध प्राप्त होता है। इस शंका के उत्तर में कहते है कि देखिये– यहां एवकार का जो अर्थ है वह प्रतियोगी के व्यधिकरण के अभाव का अप्रतियोगी होना माना गया है। अर्थात् जैसे अधिकरण में प्रतियोगी हे उसी में उसका अभाव भी हो ऐसा नही, किन्तु प्रतियोगी के अधिकरण में न रहने वाला जो अभाव हे उस अभाव का अप्रतियोगी है याने घट में पट का अभाव ही सिद्व हो सकेगा। घट में घट का नास्तित्व

कैसे कहा जा सकता है? जैसे कि प्रयोग किया गया कि शंख सफेद ही होता है तो इसमें शंखत्व का समानाधिकरण है शंख। शंख में पाण्डुत्व के होने से अब उस एवकार का अर्थ अयोगव्यवच्छेदरूप बना। ऐसे ही स्यादअस्ति एव घट में एवकार का अर्थ घट के अस्तित्व का समर्थन करता ही है। इसमे यह शंका नही कर सकते कि घट के अत्यन्ताभाव को ही सिद्व कर दे एवकार। स्यादअस्ति एव घटः ऐसा कहने से सीधा यह अर्थ होता है कि स्वरूप से घट है ही। अब इस 'ही' के साथ लगा दिया जाय, स्वरूप से घट ही है, अथवा उस एवका अर्थ स्यात् के साथ लगा दिया जाय, घट स्वरूप से ही है अथवा उस एवको क्रिया में लगा दिया जाय घट स्वरूप से है ही। सबका मतलब यही निकलता है कि घट अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नही है। तो जैसे शंख सफेद ही है। यहां पर अन्य का प्रवेश नही हुआ। इसी प्रकार घट है ही, इस अस्तित्व के प्रसंग से अन्य का नास्तित्व सिद्व होता है तो वह तो युक्त है मगर सर्व प्रकार का अस्तित्व या नास्तित्व आये यह बात इष्ट नही है। घट अपने स्वरूप से ही है, पर स्वरूप से नही है, इसमें जो स्यात शब्द लगा है उस स्यात शब्द के आधीन एवकार का अर्थ है उससे भी यह सिद्व है कि घट अपने स्वरूप से ही है।

**स्यात शब्द की अनेकान्त अर्थ में वृत्ति** — इन भंगो में जो स्यात् शब्द लगाया गया हे वह अनेकान्त विधि विचार आदि अनेक अर्थो में सम्भव हे। लेकिन वक्ता की विशेष इच्छा होने से स्यात् शब्द का अर्थ अनेकान्त अर्थ में ही लगता है। अनेकान्त शब्द का अर्थ क्या है? अनेक अन्तरूप। अंत मायने धर्म के है। अनेक धर्मरूप। तो अनेकान्त में जो अन्त शब्द है उसका घटादिक शब्द में अभेद सम्बन्ध से अन्वय होता है। तो अनेक धर्मात्मक घट यों कहो या अनेक धर्मस्वरूप अस्तित्ववान घट यह कहो, प्रंथम भंग का अर्थ होता है। स्यात् शब्द लगते ही यह ध्वनित हो जाता है कि जिस धर्म से अन्वित इस समय कहा जा रहा है उस धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मस्वरूप भी यह है। स्यात् शब्द से ही जब अनेक धर्मस्वरूप घट ऐसा बोध हो गया तब अस्तित्वादिक का कहना व्यर्थ है, ऐसी शंका नही कर सकते। कोई यह सोचे कि एक स्यात् शब्द में ही ऐसी सामर्थ्य है कि वहअनेक धर्म स्वरूप घट का बोध करा दे तब स्यात् शब्द का ही प्रयोग करके रह जाय, अस्ति तत्व आदिक का कथन करना व्यर्थ हे, सो ऐसानही कहा जा सकता। क्योंकि स्यात् शब्द से तो सामान्यरूप से ही अनेकान्तपने का बोध हुआ। जहां स्यात् शब्द लगा दिया वहां यह अर्थ तो ध्वनित हो गया कि अनेक धर्मस्वरूप है मगर कैसे कैसे धर्मस्वरूप है उसकी दिशा का बोध नही हो पाया। तो स्यात् शब्द बोलकर अनेकान्त का सामान्य से ज्ञान हो गया तो भी विशेष रूप से ज्ञान कराने के लिए अस्तित्व आदि शब्दो का प्रयोग करना आवश्यक है। अन्य आचार्यो ने भी ऐसा ही काह है कि स्यात् शब्द से सामान्य अनेकांत का बोध हो गया, पर इतने मात्र से उस वस्तु के सम्बन्ध में कोई दिशा ज्ञात नही हुई। किस तरह का अनेकान्त स्वरूप है यह ज्ञान न हो सका तब इन भंगो में अन्य शब्दो का जो प्रयोग किया है। वह विशेष ज्ञान के लिए किया जाता है स्यात् इतने ही मात्र से काम नही चलता। क्या है ? ऐसा बताने के लिए कुछ विशेष  शब्दो का प्रयोग करना अत्यन्त आवश्यक है। तब सामान्यतया अनेकान्त का बोध और विशेषतया अनेकान्त का दिग्दर्शन कराने के लिए भंगो में प्रथम भंग स्याद अस्ति एव घटः यह पूर्णतया उपयुक्त होता है, जैसे यह कहा कि वृक्ष बट है तो इस उदाहरण में वृक्षपना इस तरह सामान्य रूप से कहने पर बट का बोध भी हो सकता है तो भी वह इस विशेष रूप से जो कहा गया है वह बट का बोध कराने के लिए कहा गया है। और, स्यात शब्द के द्योतकपने में अस्ति

आदिक शब्द का करना, बोलना वाक्य में न्याय से प्राप्त है क्योकि अस्ति आदि शब्दो से कहा गया अनेकान्तरूप अर्थ स्यात् शब्द से द्योषित होता है।

**भंगो में स्यात् शब्द की उपयोगिता** — देखिये! वाचकपना व द्योतकपना दोनो पक्ष अव्यय निपातों में शास्त्रसम्मत है। यहाँ इस बात का स्पष्ट किया गया है कि इन भंगो के प्रयोग में कुछ एक शब्द बोलने पर ही पूरी बात ध्वनित हो जाती है तथापि जितना समझना है, जो जो दृष्टियां है उन सबका ग्रहण करने के लिये सभी शब्दो का प्रयोग करना आवश्यक है। निपात शब्द द्योतक और वाचक दोनो होते है। कोई निपात शब्द केवल द्योतक होते है — जैसे च एव ये शब्द द्योतक ही है और एवं स्यात् आदिक शब्द द्योतक भी है और वाचक भी। जो केवल द्योतक है उससे मतलब तो यह है कि उन शब्दो ने अपना अर्थ कुछ नही कहा केवल किसी दूसरे अर्थ का समर्थन किया है शब्द वाचक हुआ इसका यह है कि वह शब्द अपना अर्थ भी रखता है यहाँ स्यात् शब्द का यदि प्रयोग न किया जाय तो अनेकान्त रूप अर्थ्ज्ञ का ज्ञान एकान्त पक्ष की ब्याबृत्ति पूर्वक ही होती है। यदि एकान्त पक्ष हटा दिया जाय तभी तो अनेकान्तरूप का अर्थ का ज्ञान होगा। एकान्त पक्ष हटाने का सूचक है स्यात शब्द। स्यात् अस्ति एव, इसमें यदि स्यात् का प्रयोग न हो तो अनेकान्त रूप अर्थ का ज्ञान नही हो सकता जैसे कि एव शब्द का प्रयोग न हो तो विवक्षित अर्थ का निश्चय रूप ज्ञान नही हो सकता है। यों प्रथम भंग में जितने शब्द बोले गए हे सभी शब्द उपयोगी है। स्यात अस्ति एव घटः यहां चार शब्दो का प्रयोग है। घटः कहने से तो मूल आधार मालूम हुआ कि किस पदार्थ के सम्बन्ध में बात की जा रही है। अस्ति कहने से धर्म का बोध हुआ कि किस धर्म को प्रधान बनाकर यहाँ अनेकान्त कहा जा रहा है? स्यात् कहने से अपेक्षा दृष्टि लग गई है कि यह बात किसी अपेक्षा से है, सर्वथा नही बनता। अस्ति। उसकी निवृत्ति एक स्यात शब्द से है और एवं शब्द अवधारण के लिए है, कि इस अपेक्षा से ऐसा ही है।

**स्यात शब्द की स्याद्वाद न्याय में आवश्यकता** — अब यहां शंकाकार कहता है कि देखिये! सब स्थानो में एव का शब्द के प्रयोग बिना भी जैसे अवधारण अर्थ का बोध हो जाता है उसको बोध करान वाले एव शब्द का बोध शब्द की शक्ति में हो जाता है। मतलब यह है कि जैसे एव में निश्चय करने केलिए अन्य एव की जरूरत नही रहती है और शब्द की शक्ति से ही अवधारणरूप अर्थ निकल आता है ऐसे ही यदि इस वाक्य में स्यात् शब्द का प्रयोग न किया जाय तो भी वस्तु अनेकान्तरूप है ऐसे अर्थ का ज्ञान कराने की शक्ति होने से अनेकान्तरूप अर्थका बोध स्वयं हो जायगा। याने इस तरह के पूरे सजे हुए वाक्यो में प्रयोग न किया जाय अथवा एक किसी भी शब्द का संकेत करके कहा जाय तो सर्व अनेकान्त अर्थ का बोध हो ही जायेगा। इसलिए यह शब्द आवश्यक उपयुक्त नही है। इसके समाधान में कहते है कि यद्यपि किसी हद तक ऐसा भी कुछ कहना ठीक हो सकता है किन्ही ऊँचे ज्ञानी पुरूषो के प्रति कि वे किसी भी एक शब्दको सुनकर सब अर्थो का बोध कर लें यो तो श्रुतज्ञान में बड़े—बड़े ऋद्विधारी योगी ऐसे होते है कि किसी भी प्रकरण का कोई भी शब्द सुनकर पूर्वापर सभी प्रसंगो का ज्ञान कर लेते है, लेकिन स्याद्वाद न्याय में शिष्यो की प्रवीणता न हो तो केवल वस्तु के सामर्थ्य मात्र से अनेकान्त रूप अर्थ का भान न होगा। यों तो कोई पुरूष शब्द जरा भी न बोलें, अर्थ ही निहारे तो पदार्थ को देखते ही अनेकान्त का बोध कर लेंगे पर जहां समझाने की बात है और स्याद्वाद न्याय से समझाया जाने का प्रकरण है वहाँ तो पूरी सजावट पूर्वापर उपयोगी शब्द के संयोजन मे ही बोला जायगा। उन अकुशल शिष्यो को अनेकान्त रूप अर्थ का बोध

कराने के लिये वाक्य में स्यात् शब्द कहना अत्याआवश्यक है। और शिष्यो की यदि स्याद्वाद में कुशलता पूर्णतया है तो स्यात् शब्द का प्रयोग करना इष्ट ही है। जब प्रमाणदिक से समस्त वस्तु अनेकान्तमय सिद्व हो जाती है तब स्याद्वाद में जो प्रवीण हो गये हे ऐसे मनुष्यो को अस्ति घटः `ऐसा प्रयोग किया जाय तो वे भी इतने मात्र से यह बोध कर लेंगे कि कथंचित घट है क्योकि उन्हे पता है। जिन्हे वस्तुस्वरूप का पूरा परिचय है वे तो वस्तुबोधक वचनोमें कोई भी वचन सुन लें तो समग्र वस्तु का ज्ञान कर लेंगे, किन्तु जो स्याद्वाद में कुशल नही है ऐसे पुरूषो को तो पूरे शब्दो का प्रयोग करने से ही समझाया जा सकेगा। अतएव स्याद अस्ति एव घटः इतने शब्दो का प्रथम भंग में प्रयोग करना आवश्यक है। अन्य तंत्रो में भी ऐसा कहा है कि यदि स्याद शब्छ न भी बोला जाये तो भी अनेकान्त के मर्म को जानने वाला पुरूष अर्थ से ही, सामर्थ्य से ही अनेकान्तरूप अर्थ जान लेते है। जैसे एव शब्द अयोग आदिक के निराकरण के लिये कहा गया है, अन्य की निवृत्ति करने के लिये एव शब्द का प्रयोग है, लेकिन कुशलजन एव शब्द के बिना भी अवधारण कर लेते है। तो एक साधारण पद्वति में प्रयोग इस प्रकार का ही किया जाना चाहिऐ कि कुशल अकुशल सभी पुरूषो के लिये उपयोगी हो।

**स्यात् शब्द के प्रयोग की व्यर्थता की शंका** – अब यहां शंकाकार कहता है कि देखिये ! जो घट आदिक पदार्थ है वे सब अपने आधीन द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव के ही है न कि अन्य पदार्थ के आधीन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है। क्योकि अन्य द्रव्य, क्षेत्र काल आदिक को तो प्रसंग ही नही इसलिए अन्य का अभाव तो स्वंय सिद्व है। तब इस स्थिति में स्यात् शब्द का प्रयोग करना व्यर्थ है। इस शंका का अभिप्राय यह है कि जैसे यहां गया अस्तिघटः तो इतना ही सुनने मात्र से यह समझ में आ गया कि घट, घट में रहने वाले द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है। यह घड़ा अपने ही द्रव्य से है। जो उसमें मौजूद है, जिसमें वजन है। जिसमें रूपादिक है। उस अपने स्वरूप से है। घडा अपने प्रदेश से है, अपने परिणमन से है, अपनी भाव शक्ति से है। तो अस्ति घटः इतना कहने मात्र से ही बोध हो गया कि घट अपेन स्वरूप से है। बस यही जानना था। अब घट पट आदिक के रूप में नही है। ऐसा कहने का प्रसंग ही क्या? जो बात वहां पायी गयी उसको समझ लिया अथवा उसे समझातें ही वह अपने आप सिद्व हो गया कि घड़ा कपड़ा आदिक कें द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव से नही है। तो अस्तिघटः इतना कहने मात्र से समस्त अनेकान्त का बोध हो जाता है। फिर स्यात शब्द कहने की आवश्यकता ही क्या है? अथवा शंका का दूसरा पक्ष है कि जिनते द्योतक शब्द होते है। वे किसी शब्द से प्रतिपादित अर्थ के सम्बन्ध में ही कुंछ कहते है। तो यहां स्यात् शब्द जब द्योतक है तो वह चीज बताओ जो चीज कह चुके हो और फिर उसके सम्बन्ध में कुछ समर्थन सा किया जा रहा हो। तो यहां यह बताना होगा कि यह स्यात शब्द किस शब्द से प्रतिपादित अर्थ को प्रकाशित करता है?

**स्यात् भाब्द की अव्यर्थताका व स्यात् भाब्द से द्योतित अर्थ का वर्णन**– उक्त शंका के समाधान में कहते हे। कि अस्ति एव घटः अपने द्रव्य क्षेत्र आदिक की विवक्षा से घट है ही आदिक वाक्य से द्रव्यत्व अर्थ के आश्रय से अभेद वृत्ति से और पर्याय अर्थ के आश्रय से अभेद के उपचार से जो अनेकान्त स्वरूप अर्थ प्रतिपादित हआ है वही स्यात शब्द में प्रकाशित हुआ है। प्रथम भंग में अभेद उपचार से कथन किया गया है। द्रव्यरूप से घटकी सब दिशाओ मं अभेद वृत्ति है। यद्यपि परस्पर में अनेक घटो में भेद है लेकिन घटत्व की अपेक्षा से एकत्व है, अतएव सर्वप्रकार के घटो में अभेद का उपचार है। तो अस्तिएव घटः यह है प्रधान शब्द। जो अपने अर्थ का निरूपण करता है,

इस वाक्य से ही अनेकान्त अर्थ कथित हो जाता है। उसी अर्थ को स्यात शब्द से प्रकाशित किया है। चूंकि स्यात शब्द निपात है अतएव वह प्रधान अर्थ बताना ही होता है जिसके बारे में स्यित निपात शब्द कुछ विशेषता कर देता है। सकलादेश अर्थात् प्रमाणरूप सप्तभंगी अनेकक दृष्टियों से प्रतिपादित अर्थ को अभेदरूप दृष्टि करके बताता है और पर्यायरूप अर्थ से अभेद का उपचार करता है, क्योंकि एक ही समय में पदार्थ में प्रसंग प्राप्त घट में सत्व असत्वादिक समस्त धर्म स्वरूप है। उनका प्रतिपादन हो रहा है, इसीलिए सकलादेश प्रमाणरूप है। तो जो अभेद की प्रधानता से वर्णन करे उसे कहते है सकलादेश। वही कहलाता है प्रमाण सप्तभंगी। और जो भेद की प्रधानता से वर्णन करे वह कहलाता है विकलादेश। वह है नय रूप सप्तभंगी। नयरूप सप्तभंगी क्रम से भेद की प्रधानता का प्रतिपादन करता है अथवा भेद के उपचार का प्रतिपादन करता है। यों विकलादेश नयरूप है। जहां कथन में अभेद की और झुकाव है वहां प्रमाणरूपता है। जहां भेद की और दृष्टि है वहां नयरूपता है।

**नयसप्तभंगी व प्रमाणसप्तभंगी के प्रयोजनभूत क्रम व यौगपद्य का स्वरूप** – इस समय प्रमाण सप्तभंगी और नयसप्तभंगी के रहस्य को समझने के लिये अब यह जानना आवश्यक हो गया कि वह तत्व कौन है जिसका क्रम से प्रतिपादन होने से नयसप्तभंगी होती है। और, जिसका अक्रम से अभेद का ज्ञान करने पर प्रमाण सप्तभंगी बनता है? इस विषय को समझने के लिये पहिले यह ही जान लेना चाहिए कि क्रम मायने क्या है और यौगपद्य मायने क्या है? तो इसका लक्षण सुनो! जब अस्तित्व नास्तित्व आदिक धर्मो के देशकाल आदिक के भेद से कथन करने की इच्छा होती है तब अस्तित्व आदिक रूप एक ही शब्द के नास्तित्व आदिक रूप अनेक धर्मो के परिचय कराने में शक्ति नही होती। तब नियत जो भाव है, पूर्वापर कहने योग्य जो तत्व है उसका अनुक्रम से निरूपण होता है उसका नाम क्रम है और जब अस्तित्व आदिक धर्मो का काल आदिक में अभेद किया जाता है तब किसी एक भंग का अस्तित्व आदिक शब्द से उपलक्षण से अनेक धर्मो का भी बोध हो जाता है इसलिए प्रमाण में, सकलादेश में नाना धर्म एक समय में सम्भंव है। इस ढंग से जो वस्तु का निरूपण है ? उसे यौगपद्य कहते है।

**काल के द्वारा नाना गुणों की अभेदवृत्ति** – वे काल आदिक क्या है सो सुनो। जिसके अभेद का प्रतिपादन करने में प्रमाण सप्तभंगी होता है और जिसके भेद का प्रतिपादन करने में नय सप्तभंगी होता है। वे काल आदिक शब्द ये है। काल – इसमें रूप, अर्थ, सम्बन्ध उपकार, गुण, दोष, संसर्ग और शब्द। जैसे काल से अभेदवृत्ति बताना है तो उसका तात्पर्या यह हे कि जब प्रथम भंग बोला गया स्याद अस्ति एव घटः अर्थात् घट इस अपेक्षा से है ही। तो यहां जिस – जिस काल से सहित होकर घट में अस्तित्व बताया जा रहा है उस ही काल से सहित होकर शेष अनन्त धर्म भी घट में है जब घट स्वरूप से है उस ही काल में तो घट पररूप से नही है। तो स्वरूप से अस्तित्व जिस काल में है उस ही काल में परस्वरूप से अस्तित्व का अभाव है अथवा पररूप से नास्तित्व है। तो विरूद्व लक्षण वाले धर्मो में भी एक ही काल में एक ही वस्तु में वर्तना यह तो पदार्थ में देखा ही जा रहा है। धर्मो का स्वरूप है विलक्षण, एक दूसरे से विसदृश लेकिन एक धर्मी में वे दोनो रह सकते है। यही अनेकान्तात्मकता का रहस्य है। घटरूप से है यह स्वरूपस्तित्व धर्म घट में है और उस ही काल में घट अघटरूप से नही है, तो अघट का नास्तित्व भी उसी समय मौजूद है यो एक काल में समस्त धर्मो का अभेद करके कथन करने का नाम है काल की अभेद वृत्ति से भंग का प्रतिपादन करना। यह प्रमाण सप्तभंगी

में कला है कि एक ही साथ एक भंग बोलने पर भी सब भंगो का सब धर्मो का रहस्य बोध में रहता है और यह सब कृपा है स्याद शब्द की। स्याद शब्द की उपकारिता कितनी विशाल है, कैसी एक करेन्ट है कि स्यात शब्द दृष्टि में आते ही प्रतिपादित धर्म और उसके सिवाय अशेष समस्त धर्म भी एक अधिकरण में देख लिए जाते है। यही कहलाता है काल से अभेदवृत्ति।

यों अभेद वृत्ति की पद्धति से जब अस्ति घटः निरखा जा रहा है तो यह प्रमाण सप्तभंगी का प्रथम भंग होता है। तो काल आदिक 8 विभागो का यह वर्णन चलता जा रहा है। जिसके भेद से नयसप्तभंगी बनती है। और जिसकी अभेद करके प्रतिपादन करने से प्रमाण सप्तभंगी बनता है उसमें काल से अभेद वृत्ति रूप प्रमाण सप्तभंगी के एक अंग का वर्णन किया। अब इसमें आत्मरूप का अभेद बतायेंगे।

**आत्मरूप से नाना गुणो की अभेदवृत्ति** – अनन्त गुणो की आत्मरूप से अभेद वृत्ति कैसे है? इसका अब वर्णन करते है। देखिये ! एक घट का उदाहरण लेकर कि अस्तित्व का जो ही घ्ज्ञट गुणपना स्वरूप है वह ही याने घट गुणपना ही अन्य संगत अनन्त गुणो का स्वरूप है। इस प्रसार से एक स्वरूप ही तो हुआ। घट के जिस किसी भी गुण का घटगुणत्व स्वरूप है जीव के जिस किसी भी गुणका जीवगुणत्व स्वरूप है। यों सभी गुणो का एक स्वरूप है। यों आत्म रूप के द्वारा नाना गुणो में अभेदवृत्ति सिद्व होती है। द्रव्यार्थिकनय की प्रधानता से निरखने पर प्रयोजनवश विदित कराये गये अनेक गुणो का एक स्वरूप में अभेद है। यों नाना गुणो की आत्मरूप से अभेदवृत्ति प्रसिद्व हुई जिससे सकलादेश बना और इसी से प्रमाणसप्तभंगी प्रसिद्व हुई।

**अर्थ के द्वार से नाना गुणो की अभेद वृत्ति** – अभी तक कालसे व आत्मरूपसे अभेदवृतिका कथन किया गया कि जिस काल में अस्तित्व धर्म हे उसी काल में शेष अनन्त धर्म भी घट में है और एक गुण जिस आत्मरूपसे हे उसी आत्मरूप से सब गुण है। इस तरह के परिचय को प्रमाण सप्तभंगी का रूप दिया है। अब अर्थसे अभेदवृत्ति कैसे होती है इस प्रश्न का उत्तर दिया जा रहा। जहां यह पूछा था कि अभेदोपचार और अभेदवृत्ति कहते किसे है जिसके कारण सकलादेश बनता है और प्रमाण सप्तभंगी निष्पन्न होता है? अर्थ के द्वारा अभेद वृत्तिका मतलब है एक आधार में धर्मीका रहना जैसे कि अस्तित्व का आधार जो ही घटद्रव्यरूप पदार्थ है वही घटद्रव्यरूप पदार्थ घटके अन्य धर्मो का भी आधार है। जैसे स्वरूप से अस्तित्व घट में रहता है तो पररूप से नास्तित्व भी घट में है। जैसे स्वरूप से अस्तित्व घट में रहता है। तो पररूप से नास्तित्व भी घट में है। अथवा अन्य–अन्य प्रकार के धर्म भी घट में मौजूद है। यों एक आधार में समस्त धर्मो के रहने को अर्थ से अभेद वृत्ति कहते है।

**सम्बन्ध के द्वार से नाना गुणो की अभेदवृत्ति**– अब सम्बन्ध से अभेद वृत्तिका अर्थ क्या है? जैसे जो भी अप्रथकरूप कथंचित तादात्मयरूप अस्तित्वका सम्बन्ध है– जैसे घटः अस्ति तो घट में अस्तित्वका सम्बन्ध कथंचित तादात्मयरूप से ही तो है उसे भिन्न नही किया जा सकता कि घट अस्तित्व शून्य हो और अस्तित्व घटसे परे हो। तो जो ही अस्तित्व का संबंध है वही संबंध अनंतधर्मों का भी है। तो एक सम्बन्ध के सहयोगी होना, एक प्रकार के सम्बन्ध वाले होना इनका नाम है सम्बन्ध से अभेदवृत्तिका होना । तो चूंकि सम्बन्ध से अभेद वृत्ति पायी जाती है, स्यात अस्तिएवघटः तो इस अभेद वृत्तिकी पद्वति से इन भंगो का प्रयोग करना सकलादेश है।

**उपकार से नाना गुणो की अभेदवृत्ति** — अब उपकार की अपेक्षा से अभेद वृत्ति किस तरह है ? तो वस्तु में जो धर्म पाये जाते, देखे जाते, कहे जाते है तो इन धर्मो का उपकार क्या है ? उनका उपकार सीधा यह है कि एक तो आने आधार का स्वरूप बनाये रहना। दूसरी बात— अपने आधार को जाहिर कर देना। जैसे कि घटः अस्ति, ऐसा कहने पर घट में जो अस्तित्व धर्म है उसका उपकार क्या है कि अपनेसे अनुरक्तपना कर देना अर्थात् अपने पदार्थ में कुछ विशिष्टताका सम्पादन कर देना। घट है तो है, इस धर्मने यह बता दिया कि घट सत्ता सहित है। घट वर्तमान में मौजूद है, तो धर्म अपने विशेष्यको प्रकाशित करता है, यही धर्म का उपकार है। तो जैसे नील, लाल आदिक गुणो का उपकार क्या है ? कोई पदार्थ नील है तो उस नीलत्वका उपकार क्या है कि पदार्थ को नीलरूप से उपरक्त कर देना और जाहिर कर देना— मैं नीलत्व हूं और यह पदार्थ नील है तो नीलपना, रक्तपना आदिक गुणो से सहित बना देना यही नील रक्तादिक गुणो का उपकार है। अस्तित्वका उपकार क्या है? पदार्थ को अपने में से अनुरक्त कर देना अर्थात् अस्तित्व के उपकार से घट विशेष का ज्ञान उत्पन्न कर देना। घट है तो है ने क्या उपकार किया कि घट की बात बना दी। घट का अस्तित्व सिद्ध कर दिया। तो यह अस्तित्व धर्म का उपकार है। तो जैसे अस्तित्व धर्म का धटके प्रति कुछ उपकार हे ऐसे ही उपकार नास्तित्व आदिक धर्मो का भी है। घट—घट है, घटका प्रकाश जैसे अस्तित्व धर्मने कर दिया ऐसे ही घटका अस्तित्व प्रकाशित हुआ। इसी तरह अन्य अशेष धर्मो के द्वारा भी घटका उपकार किया गया है। यों उपकार के द्वारा अभेदवृत्ति होती है जिस कारण जिस पद्वति से इन 7 भंगो का प्रयोग, प्रमाण सप्तभंगी रूप में बनता है।

**गुणीदेश से नाना गुणो की अभेदवृत्ति** — अब गुणी देश की अपेक्षा से अभेदवृत्ति किस प्रकार है? इसका स्वरूप सुनो! जिस देश करके सहित रूप से घट आदिक पदार्थ में अस्तित्व है उस ही देश में सहित रूप से घट में नास्तित्व आदिक धर्म है। जैसे— स्यादस्ति घटः घट स्वरूप से है तो घटके अणु—अणु घटके वर्तमान देश अपने स्वरूप से है ना, और घट में नास्तित्व आदिक धर्म भी घटके पूरे देश में है। कही ऐसा नही है कि घटमें अस्तित्व धर्म अर्थात कही ऊपर मुख आदिकपर पाया जाता हो और नास्तित्व धर्म नीचे या अन्य और पाया जाता हो। गुणी के जिस देशमें एक धर्म है उस ही देश में गुणी के अन्य धर्म भी है। जैसे ज्ञानगुण आत्मा के प्रदेश में है तो जिन प्रदेशो में याने आत्मा के समस्त प्रदेशो में ज्ञानगुण है तो उन्ही समस्त प्रदेशो में दर्शन, चारित्र, आनन्द आदिक गुण भी है। कही ऐसा नहीहै कि आत्मा में कुछ हिस्से तक ज्ञानगुण हो, उसके बाद कुछ हिस्से तक आनन्द गुण हो, ऐसी बात स्वरूप में नही है। तो गुणो के जिस देश में तन्मय होकर अस्तित्व रह रहा है उसी देश में तन्मय होकर नास्तित्व आदिक धर्म भी है अर्थात देशभेद उनके नही है कि कण्ठ के प्रदेश में अस्तित्व हो और पीठ के प्रदेश में नास्तित्व हो यही है एक देश में रह रहकर अपना अस्तित्व रखना अथवा एक देश से सहित रूप रहना, यह है गुणी देश की अपेक्षा अभेदवृत्ति। जब कहा— स्याद अस्ति घटः तो ऐसा कहते ही जैसे यह ज्ञान हुआ कि नास्तित्व मायने पर रूप से नास्तित्व घटके सब प्रदेशो में हे। अन्य गुण भी घटके सब देशो में है। यों अभेदवृत्ति से जब इन भंगो को बताया गया है तब वह सकलादेश कहलाता है और उससे प्रमाण सप्तभंगी होती है।

**संसर्ग की अपेक्षा नाना गुणो की अभेदवृत्ति** — अब संसर्ग की अपेक्षा से अभेद वृत्ति किस तरह होती है? जो ही एक वस्त्वात्मक रूप से अस्तित्वका संसर्ग है, मायने एक घट है एक वस्तुरूप से अस्तित्वका संसर्ग है तो वही संसर्ग अन्य धर्मो

का भी है। इस तरह एक संसर्ग की प्रतियोगिता होना, एक संसग्र होना समस्त धर्मो का यही संसर्ग से अभेद वृत्ति कहलाती है। यहां एक जिज्ञासा हो सकती है कि सम्बन्ध और संसर्ग में अन्तर क्या है? सो सुनो! कथंचित् तादाम्य लक्षण वाले सम्बन्ध मे तो अभेद प्रधान है औद भेद गौण है अर्थात् जहां सम्बन्ध शब्द से कहा जाया वहां कथंचित् तादात्म्य दृष्टि से आता है और जंहा संसर्ग कहा जाय वहां अभेद गौण है और भेद प्रधान है याने भिन्न बात की दृष्टि रख करके सम्बन्ध बताया जाय तो उसे संसर्ग शब्द से कहना चाहिए। वहां कथंचित तादात्म्य अर्थ यह है कि कथंचित भेदरूप है, कथंचित अभेदरूप है। कथंचित उभयरूप हे तो उसे कहना चाहिए कि जहां भेद विशिष्ट अभेद सम्बन्ध हो उसे कथंचित तादात्म्य कहते है। अब यहां अभेद की प्रधानता हो गयी ओर भेद गौण हो गया। भेद सहित अभेद कहा ना, तो जिसको सहित में लिया है वह तो हो गया गौण और जिसका मुख्यता नाम लिया है वह हो गया प्रधान। जैसे कोई कहे कि देवदत्त बच्चो सहित आये, तो इसमें प्रधानता किसकी रही ? देवदत्त की ? और जहां सहित लगाया गया तो उसकी प्रधानता न रही। तो सम्बन्ध में भेद विशिष्ट अभेद रहता है ओर संसर्ग में अभेद विशिष्ट भेद रहता है। अर्थात संसर्ग में प्रधानता भेदकी हे। और वह अभेद से विशिष्ट रहता है। उसी अभेद वृत्ति के कथन में अब तक काल, आत्मा, रूप अर्थ, सम्बन्ध, उपकार गुणी, दोष और संसर्ग की अपेक्षा से वर्णन किया।

**शब्दकी अपेक्षा नाना गुणो की अभेदवृत्ति** – अब शब्द की अपेक्षा से अभेदवृत्ति किस तरह होती है इसका कथन करते है। जैसे अस्ति शब्द अस्तित्व धर्म स्वरूप घट आदिक वस्तुका प्रतिपादक है वैसे ही सब शब्द वाच्यपने रूप से उन सब धर्मो से अवच्छिन्न घटादिके वाचक है। सो शब्दो की घट आदिक पदार्थो में अभेद वृत्ति सूचित होती है। जैसे अस्ति कहा तो अस्ति शब्द से वस्तु ही तो कहा गया। इसी प्रकार अन्य धर्म भी उसमें बोले जायेंगे। तो उन शब्दो से वही पदार्थ ही तो कहा गया। एक शब्दकी दृष्टि से अभेद वृत्ति कह रहे है। घट में अस्तित्व नास्तित्व आदिक अनेक धर्म है। उन सब धर्मो का घट में अभेद वृत्ति किस स्वरूप से है ? तो अन्य चीजें बताकर अन्त में यह बता रहे है कि शब्द के माध्यम से भी अभेद वृत्ति है अन्य धर्मो के प्रयुक्त धर्म के साथ। सकलादेश में यह बताया जा रहा है कि हम कोई एक बात तो बोल रहे है पर हमारे अभिप्राय में अन्य धर्मो का भी परिचय बना हुआ है। इस पद्वति से इन भंगो के बोलने को सकलादेश कहते है। तो घटः अस्ति, यहां अस्ति शब्द कह करके कौन सूचित हुआ ? घट ! क्या कहा गया ? घट तो अन्य – अन्य धर्मो की भी बात यदि कही जाय तो उन शब्दो से भी क्या कहा जायगा ? घट ! तो यो शब्द की दृष्टि से घट में अभेद वृत्ति है।

**द्रव्यायिकनयकी प्रधानता में कालादिककी अपेक्षा से गुणो की अभेदवृत्ति के वर्णन का उपसंहार** – कालादिक प्रकारो से यह सिद्व कर दिया गया कि जब पर्यायार्थिकनयको गौण कर देते है ओर द्रव्यार्थिकनयको प्रधान करते है तो काल, आत्मा, स्वरूप आदिक 8 प्रकार से घट में सब धर्मो के अभेद से स्थिति रहती है जिस धर्म को बताया जा रहा हो जैसे उस धर्म की अभेदरूप से वृत्ति हे उस पदार्थ में, उसी प्रकार से अन्य समस्त धर्मो की भी अभेद रूप से वृत्ति है और वह अभेद वृत्ति 8 प्रकार से समझाई गई है। तो यों अभेद वृत्ति होने से अथवा अभेद उपचार होने से सकलादेश का स्वरूप बनता है। यदि द्रव्यार्थिकनयको गौण कर दिया जाय और पर्यायार्थिकनयको प्रधान कर दिया जाय तो गुणो की अभेदवृत्ति सम्भव नही हो सकती। एक ही पदार्थ में अन्य अशेष धर्म भी अभेद रूप में रहते है, यह जब दृष्टि में है तो

सकलादेश्ज्ञ बनता है और यह बात तभी सम्भव है जब द्रव्यार्थिकनय तो प्रधान बने और पर्यापार्थिकनय गौण बने। क्योकि पर्यायार्थिकनय तो देखता है भेद को। एक–एक पर्यायको विषय करता है पर्यायार्थिकनाय। अब उन पर्यायोको भेदरूप से देखा जाय तो अभेद वृत्ति कहा से बनी ? उन सब पर्यायो का आधारभूत सामान्यतत्व एक है यह बात दृष्टि में आये तब अभेद वृत्ति बनती है। सो इसी दृष्टि को समझने के लिये काल आदिक 8 प्रकारो से गुणो की अभेद वृत्ति बतायी गई है। यहां यह प्रकरण चल रहा है कि प्रमाण सप्तभंगी और नय सप्तभंगी का स्वरूप क्या है ? यह बात भंग के प्रयोग से नही समझी जा सकती। क्योंकि भंगो का प्रयोग दोनो सप्तभंगियो में एक समन है। यह अन्तर तो वक्ता श्रोता के अभिप्राय से बनता है। एक धर्म को कहकर सुनकर भी अन्य समस्त धर्मो का परिचय लिए रहना यह आशय जब रहता है तब तो वहां प्रमाण सप्तभंगी बनता है और जब जिस धर्म को कहा गया उस ही धर्म का परिचय हो रहा ह। यद्यपि विरोध नही है अन्य धर्मो का मगर अभेद पद्वति का लगाब नही बन रहो, तब वहाँ नय सप्तंभगी बनता है। पर्यायार्थिकनयकी प्रधानता में उन आठो ही प्रकारो में अभेद वृत्ति सम्भव नही है। फिर भी स्यात् शब्द के प्रताप से उन का अभेदोपचार हो जाता है।

**पर्यायार्थिकनयकी प्रधानता में कालापेक्षया नाना गुणो में परस्पर भेद** – अब यह बताते है कि कालादिकी अपेक्षा से नाना गुणो की वृत्ति कैसे असम्भ है? कालकी अपेक्षा से एक ही काल में नाना गुण परस्पर जो कि विरूद्व है उनका रहना असम्भव है। इस पर्यायार्थिक नयकी दृष्टि की और प्रत्येक गुण से उन–उनके पृथक–पृथक स्वरूप में देखो तो वे सारे गुण तो परस्पर विरूद्व है। पर्यायार्थिकनयाकी दृष्टि है नही, इसलिए उनका एक जगह रहना देखने का कोई उपाय नही। तब परस्पर विरूद्व उन गुणो को एक जगह होना असम्भव है। अतएव पर्यायार्थिकनयकी दृष्टि में उतने कालकी अपेक्षा अभेद नही हो सकता और यदि कालकी अपेक्षा परस्पर विरूद्व नाना गुणो का भी पर्यायार्थिकनयकी दृष्टि में अभेद मान लिया जाय तो जितने गुण है उतने ही आश्रय में भेद पड़ जायेंगे, क्योकि पर्यायार्थिकनय भेदको निरखता है और भेद वाले गुणो का जो आश्रय हो वह भी भेदरूप ही होगा। यों कालकी अपेक्षा से उन नाना गुणो में अभेद वृत्ति सम्भव नही हो सकती।

**पर्यायार्थिकनयकी प्रधानता में आत्मरूपापेक्षया व अर्थापेक्षया गुणो में भेद**– अब पर्यायार्थिकनय की प्रधानता में आत्मरूप से भी उन नाना रूपो की अभेदवृत्ति नही बन सकती। यह बतलाओ कि चूंकि वे समस्त अपने–अपने भिन्न स्वयप को रख रहे है। जैसे आत्मा में ज्ञानगुण, दर्शनगुण, आनन्दगुण आदिक जितने भी गुण है उन सब गुणो का स्वरूप अपना–अपना जुदा–जुदा है। अब प्रधानता की पर्यायार्थिक नय की तो उसमें भिन्न–भिन्न स्वरूप वाले भी नाना गुण ही दीखे। ऐसे भिन्न स्वरूप वाले नाना गुणो की एक रूप से अभेदवृत्ति नही बन सकती। और, अगर ऐसे भिन्न–भिन्न स्वरूप रखने वाले नाना गुणो को भी स्वरूप से अभेद कर दिया जाय तब फिर उन गुणो में परस्पर भेद न रहा। फिर तो पर्यायार्थिकनयकी दृष्टि ही न रही। यो स्वरूप की अपेक्षा से भी उन परस्पर भिन्न स्वरूप रखने वाले नाना गुणो के स्वरूप से अभेद वृत्ति नही बनती। अब अर्थ की दृष्टि से भी अभेदवृत्ति नही बनती इसे समझिये, जब हम उन नाना गुणो के स्वरूप सर्वस्वको निरखते है तो वे गुण किसमें है ? ऐसा कहने पर यही समझ आयेगा कि वे गुण अपने– अपने स्वरूप में है। तो यों उन गुणो का आश्रयभूत जो अर्थ है वह भी नाना बन गया अर्थात् उन नाना गुणो की अर्थ से यदि अभेदवृत्ति कर दी जाय, अर्थको एक मान

लिया जाय तो यह स्पष्ट विरोध आता है। नाना गुणो का आश्रय हो और फिर वह एक हो, यह पर्यायार्थिकनयकी दृष्टि में नही बन सकता। द्रव्यार्थिक नयकी प्रधानता में नाना गुणो का आश्रयभूत एक द्रव्य है, ऐसी अभेद वृत्ति बनती है। सो वह द्रव्यार्थिकनय के प्रकरण में बता ही दिया गया है। अब यहाँ पर्यायार्थिकनयसे तो बात कर रहे है जो कि भिन्न–भिन्न स्वरूप से निरखते है और फिर उस दृष्टि में यह कहा जाय कि इन नाना गुणो का आश्रय भूत कोई एक पदार्थ है यह सम्भव नही है।

**पर्यायार्थिकनय ही प्रधानता में सम्बन्ध व उपकार की अपेक्षा से गुणों में परस्पर भेद** – अब सम्बन्ध की अपेक्षा से भी उन नाना गुणो में अभेद वृत्ति नही हे यह सकते है। सम्बन्ध भी सम्बन्धी के भेद से भिन्न–भिन्न रूप समझना चाहिए। जैसे डंडा और देवदत्त का सम्बन्ध यह एक बात। छाता ओर देवदत्त का सम्बन्ध यह एक बात। यदि डंडा और देवदत्त का सम्बन्ध और छाता देवदत्त का सम्बन्ध अभेद हो जाय तब तो जो छाता से काम निकलता है पानी बरसने में छाता काम देता है क्या वह काम डंडा भी दे देगा ? क्योंकि तुमने सम्बन्ध एक मान लिया ना, किन्तु ऐसा तो नही हे। पर्यायार्थिकनयकी प्रधानता में जितने सम्बन्धोके भेद है उतने ही सम्बन्ध के भेद है। तो जब सम्बन्ध दृष्टि से पर्यायार्थिकनय के भेद ही रहे तो उन नाना गुणो की अभेदवृत्ति नही बन सकती है। अब उपकार की दृष्टि से इन नाना गुणो में अभेद सम्भव नही है। बात कह रहे है पर्यायार्थिकनयकी दृष्टि से। यहां नाना गुण निरखे जा रहे है। जब प्रत्येक गुणो के द्वारा किया गया उपकार अपना – अपना स्वरू‍ लिए हुए है तब अनेक गुणो के द्वारा किया गया जो उपकार है वह जब अपने –अपने प्रतिनियतस्वरूप रख रहे है तो वे उपकार भी अनेक हो गए, और अनेक उपकारियो के द्वारा किया गया उपकार कभी हो ही नही सकता। भेद दृष्टि में निरखा जा रहा है। तो जैसे आत्मा में ज्ञान गुण का उपकार क्या है? उपकार के मायने कार्य! तो जो ज्ञान का कार्य  है वह भिन्न है और जो आनंद का कार्य है वह भिन्न है, अन्यथा ये नाना गुण न रहेंगे। तो नाना गुणो के द्वारा जो उपकार बना है वह उपकार एक नही हो सकता। द्रव्यार्थिकनय की प्रधानता में उपकार एक माना गया था ओर उस उपकार का स्वरूप यह था कि प्रत्येक गुण अपने आधार का प्रकाश किया करता है। तो अपने आधारभूत पदार्थ का प्रकाश करना इतने मात्र से सबका उपकार एक ही है लेकिन यहाँ पर्यायार्थिकनय की प्रधानता में भेद रूप से सब देखा जा रहा है। तो गुण अनेक है और उनके कार्य अनेक है। तो अनेक उपकारी गुणो के द्वारा किया गया उपकार एक नही होता तब उपकार से भी अभेद वृत्ति न बनी।

**गुणीदेश व संसर्ग की अपेक्षा से भी पर्यायार्थिकनय से नाना गुणों में परस्पर भेद** – अब गुणी देश की अपेक्षा से अभेद सम्भव नही है इस पर विचार कीजिए। दृष्टि में सब कुछ पृथक – पृथक निरखा जाता है। तो जब प्रत्येक गुण में भेद हे तो उन भिन्न गुणो को निरखेन पर गुणो के देश में भी भेद प्रतीत होगा। यह एक दृष्टि की बात ही पर्यायार्थिकनयका विषय है उस दृष्टि में गुणे के भेद से गुणी देश का भेद होता है अन्यथा पर्यायार्थिकनय में गुण भेद होने पर भी गुणी देश को अभेद मान लिया जाय तो भिन्न–भिन्न पदार्थ के जो अनेक गुण है उन सब गुणो का गुणी देश भी एक बन बैठेगा, इस कारण पर्यायार्थिकनय की दृष्टि में गुणी के भेद से भी भेद गुणी देश में मानना होगा। अब संसर्ग की अपेक्षा से भी अभेद नही बन सकता। क्योंकि पर्यायार्थिकनयकी दृष्टि में संसर्ग के भेद से संसर्ग में भी भेद माना जायगा। जो बात सम्बन्ध के विषय में कहा था वही बात संसर्ग के विषय में है। केवल संसर्ग और सम्बन्ध के स्वरूप में अन्तर है। सम्बन्ध

कथंचित तादात्म्य को लिए हुए है, संसग्र व्यतिरेकियो का सम्बन्ध है। तो जितने संसर्गी है, जिन–जिनमें संसर्ग करने की बात कही जा रही है उन संसर्गियो के भेद से संसर्ग में भी भेद पड़ जाता है। अन्यथा संसर्गी का भेद होने पर भी संसर्ग में अभेद माना जाय तो जहाँ संसर्ग एक है। वहाँ संसर्गी का भेद कैसे सम्भव है ? उसके विरूद्व होगा। अतएव पर्यायार्थिकनय की दृष्टि में संसर्ग की अपेक्षा से भी अभेद वृत्ति नही कही जा सकती।

**पर्यायार्थिकनय की प्रधानता में भाब्द की अपेक्षा से गुणो में परस्पर भेद व अभेदोपचार के कथन का उपसंहार** – शब्द की दृष्टि से भी उन नाना गुणो में अीेद वृत्ति नही बनती। पर्यायार्थिकनय की दृष्टि में शब्द अर्थ से भिन्न – भिन्न है। जो शब्द जिस अर्थ का वाचक है वह शब्द अन्य है, भिन्न अर्थ का वाचक शब्द अन्य है तो जितने गुण है वे सब भिन्न – भिन्न शब्दो के द्वारा कहे जा हरे है। तब उनमें एक शब्द द्वारा वाच्यपना हो ही नही सकता। वे गुण नाना है तो उनके वाचक शब्द भी नाना है। तो शब्द की दृष्टि से उनमें अभेद नही बन सकता। यदि नाना गुणो को शब्द के द्वारा वाच्य बन जायें ओर कदाचित ऐसा कोई मान ले कि होने दो ऐसे समस्त पदार्थ, एक शब्द द्वारा वाच्य हो जायेगें तब तो अन्य शब्दोकी रचना ही विफल है। शब्द ही अनेक क्यो बन गए ? कोई एक शब्द हो, वह शब्द का वाचक बन बैठेगा। यो पदार्थ को अगर देखा जाय तो पर्यायार्थिकनयकी दृष्टि में अभेद वृत्ति सम्भव नही है। लेकिन पर्यायार्थिकनय में निरखे गए इन भिन्न – भिन्न नाना गुणो से जो कि काल आदिक गुणो की अपेक्षा से भिन्न – भिन्न है उनका जब पर्यायार्थिकनयकी प्रधानता लेकर निरीक्षण करते है तो उनमें अभेद का उपचार किया जाता है। यों द्रव्यार्थिकनयकी प्रधानता मे ंअभेद वृत्ति का अभेद उपचार है जिसके कारण यहां सकलादेश का स्वरूप बनता है जिससे कि प्रमाण सप्तभंगीकी निष्पत्ति होती हे। द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा से नाना गुणो में भेद है उनका अभेदोपचार किया जा रहा है। इस तरह अभेदवृत्ति और अभेदोपचार के द्वारा किसी एक भंग से किसी एक शब्द से कहे गए जो समस्त धर्मो का समुदाय है तन्मात्र वस्तु हे, बस उस ही अनेकान्तस्वरूप का द्योतक है स्यात् शब्द। यों इन भंगो में स्यात् शब्द कहने की सार्थकता है। यहाँ तक पदार्थ अनेकान्तात्मक है और इन भंगो से उस अनेकात्मक पदार्थ की ही प्रसिद्वि की गई है, यह वर्णन किया गया है।

**स्यादस्येव घटः स्यात्रास्त्येव घटः इन दो वाक्यो के अर्थ का विवरण** – अब वाक्यार्थ का निरूपण करते है। इसमें वाक्य बोला गया है– स्यात अस्ति एव घटः स्यात नास्ति एव घटः। इन दो भंगो के वाक्यो के सम्बन्ध में विचार कर रहे है कि वाक्य का अर्थ यह है कि घट में जो कम्बुग्रीवाकार रूप से जो घटपना है अर्थात् घट में जो एक सामान्य आकार पाया जाता है उससे सहित जो अस्तित्व धर्म है उसका आधार हुआ घट, यह बात कही गई` पहले वाक्य में अर्थात् घटपन से सहित जो अस्तित्व धर्म है उसका आधार घट है, यह अर्थ हुआ। स्यात्रास्ति एव घटः इस वाक्य से घटत्व आदिक पररूप से सहित नास्तित्व का आधार है घट, यह अर्थ कहा गया, घट है ऐसे वाक्य से उस स्वरूप का भान हुआ, जिस प्रकार से कम्बुग्रीव आकार वाले स्वरूप का भान हुआ। कम्बुग्रीव कहते है शंख के आकार जैसे गला से सहित, याने शंखका जो एक द्वार है, छिद्र है, जहाँ से शंख बजाया जाता है उस जगह शंख का जैसा गला आदिक का रूप है उस तरह का जहाँ आकार बनाया जाता है उसे कहते है कम्बुग्रीवाकार। घट में चाहे छोटा बड़ा कैसा ही घट बनाया जाय वहाँ कम्बुग्रीवाकार घड़ना ही पड़ता है। तो यह आकार रूप धर्म से सहित जो अस्तित्व है ऐसा यह घट है, यह बात पहिले वाक्य से कही गई है। अब जैसे

घट का अस्तित्व समझा गया ऐसे ही यह पट आदिक वस्तु नही है। यह भी तो समझा गया है। तो इस तरह से अन्य का निषेध भी यहाँ भान में आ रहा है। तब अन्य पदार्थ के रूपादिक से नास्तित्व का आश्रय भी घट है। घट में अस्तित्व भी है नास्तित्व भी है। स्वरूप से अस्तित्व है, पररूप से नास्तित्व है। स्वरूपास्तितत्वका भी आश्रयभूत है घट और पररूप नास्तित्वका भी आश्रयभूत है घट। तो ये दोनो बातें किसी भी कुशल पुरूष को भान में आती है। धट आदिक समस्त वस्तु स्वरूप में अपने रूप से सत्व होना और अन्य रूपादिक से असत्व होना, यह अवश्य मानना होगा। यदि ऐसा न माना जायगा तो वस्तु का स्वरूप ही न बनेगा। अपने स्वरूप से सत्व नही है तो फिर बात ही क्या रही? पररूपसे असत्व नही है तो उसका सत्व न रहा। वस्तु का ग्रहण होता है वह वस्तुस्वरूप के ग्रहण से और पर के स्वरूप के त्याग से बनता है।

**घटपटवाच्य स्वरूप से अस्तित्व व पररूप से नास्तित्व** – अब वस्तु के अपने स्वरूपकी और पररूप की बात का विस्तार करते है। स्वरूप से अस्तित्वका होना, पररूप से नास्तित्व का होना, इसके बिना वस्तु की व्यवस्था ही नही बनती। तब यह जानना आवश्यक हो गया कि स्वरूप कहते किसे है ? और पररूप कहते किसे है ? तो अब सुनो। घट ऐसा बोलकर घट इस बुद्वि में घटका प्रयोग से भासमान और घटपट की शक्ति से जो कहा गया है उसमें जो घटत्व धर्म रह रहा है वह घट का स्वरूप है। घट सुनकर कहकर जो कुछ भी भासा है वह घटका स्वरूप है और उसके अतिरिक्त पटत्व आदिक ये घट के पररूप हे। तो घट स्वरूप से जैसे घटका सत्व है ऐसे ही पटत्वादिक रूप से भी यदि सत्व माना जायगा तो घट पटरूप है और उसके अतिरिक्त पटत्व आदिक ये घट के पररूप है। तो घट स्वरूप से जैसे घटका सत्व है ऐसे ही पटत्वादिक रूप से भी यदि सत्व माना जायगा तो घट पटरूप हो गया, वह स्वंय घट न रहा। क्योकि जैसे उस घट को घट स्वरूप से माना ऐसे ही उस घटको पटस्वरूप से भी मान लिया। तब घट न रहा और घट से अन्य पट आदिक स्वरूप से जैसे असत्व माना है यदि स्वरूप से ही असत्व मान लिया तो वहाँ कुछ न रहा। तो घट इस बुद्वि में जो कुछ घटत्व धर्म से सहित पदार्थ बुद्वि मे आया है वह तो है उसका स्वरूप और उसके अतिरिक्त पट आदिक समस्त पदार्थ हे पररूप। तो ये स्वरूप से सत है पररूप से असत् है, यह बात सर्वत्र आवश्यक ही है। कोई कहे अथवा न कहे, पदार्थ तब ही अपना अस्तित्व रख पाता है जब कि वह अपने स्वरूप से है और पररूप से नही है। है ही ऐसे समस्त। वस्तु समुदाय के प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूप से है पररूप से नही है तभी तो उनका सत्व है, यह अनादिसिद्व समस्त पदार्थो में है।

**नाम स्थापना द्रव्य भाव में विवक्षित स्वरूप से अस्तित्व व अनयरूप से नास्तित्व** – अब स्वरूप से जो कुद पहिले समझा गया घट के बारे मे उसी में और सूक्ष्म बुद्वि करके स्वरूप पररूप का विभाग करते है कि देखिये। जितने पदार्थो के सम्बन्ध में व्यवहार होते है वे चार निक्षेपों के द्वारा होते है– नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। तब घट भी 4 प्रकार से समझा गया। नाम घट, स्थापनाघट, द्रव्यघट, भावघट। अब इनमें से जिस घटकी विवक्षा है वह तो हुआ घटका स्वरूप और जिस घट की विवक्षा नही है और भी अन्य चीजें वे सब है पररूप। तब यहाँ यह कहा जायगा कि विवक्षित घट रूप से तो यह है और अविवक्षितरूप से यह नही है। नामघट स्थापनाघट, द्रव्यघट और भावघट। इनमें से जिस प्रकार के घट को कहने की इच्छा और अन्य है या जिस भी घट को कहने का हम यत्न कर रहे हे वह तो है स्वरूप और अन्य है पररूप। यदि विवक्षित

रूप से भी घट नही है तब तो असत्व हो जायगा, जिसको हम देख रहे, भान में आ रहे, विवक्षा हो रही उस रूप से भी घट नही है तो क्या है? कुछ भी नही। खरगोश के सीगं की तरह असत्व हो जायगा और यदि अविवक्षितरूप से घट मान लिया जाता है तब तो नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव इनमें परस्पर कोई भेद न रहेगा। फिश्र दूसरे निक्षेप ही क्यों कहे गए ? चार निक्षेपो में चार प्रकार की बुद्दि क्यो बन रही? इससे सिद्व है कि इन चार निक्षेपों की दृष्टि में चार प्रकार के घट जाने जाते है उनमें से जो विवक्षित स्वरूप हो उसकी अपेक्षा से घट है और जो अविवक्षित स्वरूप है उसकी अपेक्षा से घट नही है। उनका तात्पर्य यह है कि घट के गुण आदिक की अपेक्षा निरख कर केवल एक लोक व्यवहार के लिए जो एक नाम बना दिया है उसका नाम है नाम घट। जैसे नाममात्र का घट। उसके बारे में हम और कुछ भी नही जानना चाहते, किन्तु एक नाम भर आ गया है – वह हो गया नामघट। अब जो घट जाना जा रहा है जिसमें हम स्थापना कर रहे है बुद्दि का संकल्प कर रहे है समझ रहे है कि यह है घट इस प्रकार की दृष्टि से जो कुछ घट का भान होता है वह कहलाता है स्थापनाघट। द्रव्यघट जो घट बना था जो घट बनेगा ऐसी पर्यायो में भी उस घट शब्द का प्रयोग होता है उसमे जो समझाा गया है वह है द्रव्यघट और घट पर्याय में जो वर्तमान हे उस पिण्ड दशा में जो घट पाया जा रहा है वह है भावघटं। इन चार प्रकार के घटो में से जो घट विवक्षित है उस स्वरूप से घट है और जो अविवक्षित है उस स्वरूप से घट नही है। इसी बात को भंगो द्वारा समझााया गया और तर्क द्वारा बताया गया कि विव़क्षित स्वरूप से भी घट हो जाय, अविवक्षित का नास्तित्व न हो तब तो इन चार प्रकारो मे ंकोई परस्पर भेद भी न रहेगा।

**परिगृहीत घटनिष्ठ स्थौत्यादि धर्म स्वरूप से घटका अस्तित्व व इतरघटादि धर्मरूप पररूप से नास्तित्व** – अब उससे भी और सूक्ष्म बात में चलिए। स्वरूप और पररूप का प्रतिपादन घटत्व से सहित घट देखे गए थे, अब उनमें से भी जिस प्रकार का घट ग्रहण में आ रहा उसमें रहने वाला जो मोटापन, रंगादिक है ये धर्म स्वरूप हुए और उस मोटाई आदिक धर्म से भिन्न धर्म वाले अन्य घटादिक व्यक्ति अन्य घट उनमें पाये जाने वाले जो कुछ आकार प्रकार आदिक है वे है पररूप। तब यहाँ अस्ति नास्तिकी बात घटित की कि उस सवरूप से जो है वह तो है प्रथम भंग और पररूप से नही है यह है द्वितीय भंग। जैसे घट इतना ग्रहण में आये हुए आकार का, जितना मोटाई का बस उस धर्म सहित घट है और उसके अतिरिक्त अन्य मोटाई आदिक की अपेक्षा से नही है। यदि स्वरूप से भी घट न रहे तो तो असत्व हो जायगा। औश्र यदि पररूप से भी वह घट बन गया। अन्य घट की अपेक्षा से भी यह घट बन गया तो सारे घट एक हो जायेगें, फिर व्यवहार का लोप हो जायेगा। बड़े–बड़े घट भी होते है– जैसे मटका। छोटे घट होते है और बिल्कुल छोटे भी घट होते है जिन्हे डबला कहते है। अब उनमें से जिस समय जिस आकार को बुद्दि में लेकर घट कहा जा रहा है बस घट तो उस आकार वाला ही है अन्य आकार वाले घटका नास्तित्व है। यह बात यदि न हो तो व्यवहार ही नही बन सकता है। फिर सभी घट एक हो गए। यदि कुछ थोड़ा सा पानी खीचंना है, ऐसे घट को कोई मंगाये और वह लांदे बड़ा मटका तो उससे काम तो न चला। हर एक व्यक्ति की बुद्दि में यह बात है कि जिस प्रकार के आकार को लिए हुए घटकी बात समझ में आ रही है उस समय में उसी प्रकार के आकार आदिक धर्मो से सहित ही घट है, अन्य सब पररूप है। अब इस तरह से सूक्ष्म से सूक्ष्म की और चलते हुए सूक्ष्म स्वरूप की और आ रहे है। उसी प्रसंग में अब उस ही घट विशेष में जिस आकार को लिए हुए घट विशेष देखा गया हे उसमें अब स्वरूप और पररूप की बात कह रहे है।

**पूर्वोत्तरान्तरात्मवर्ति घट पर्यायस्वरूप से अस्तित्व पूर्वोत्तराय पर्याय से नास्तित्व** – उस ही घट विशेष भिन्न–भिन्न कालो में रहने वाले जो पूर्वोत्तर परणिमन है। जैसे वह पहिले कुसूल था, एक छोटी सी लम्बी पिण्डीरूप था फिर घटरूप हुआ फिर कपाल रूप होगा। यो जितनी भी अवस्थाये है उन सब अवस्थाओ में जो पूर्वोत्तर अवस्थाये है तो है पररूप और पूर्व और उत्तर अवस्थाओ के बीच में जो घट पर्याय हे वह है स्वरूप। तो घटस्वरूप से है, इसाक अर्थ यह है कि घटकी इस समय की जो वर्तमान पर्याय हे उस पर्याय के रूप से है और पहिले जो पर्याय थी, अब जो पर्याय होगी उस रूप से नही है। यहां तर्क की कसौटी पर कसें तो देखिये– यदि कुसूल कपाल आदिक रूप से भी घट है याने घट से पहिले होने वाली पर्याय से और घ्ज्ञट सत् है तो घट अवस्थ्ज्ञा में घट पर्याय की तरह कुसूल आदिक पर्याय की भी उपलब्धिका प्रसंग आ जायगा। और कुसूल आदिक की अवस्था में भी यदि घट का सत्व माना जाय याने पररूप से है यह स्वीकार कर लिया जाय तब घट पर्यायकी उत्पत्ति और विनाश के लिए महान प्रयत्न करना विफल है। जैसे घट के पहिले से जो परिणति थी वह कुसूल रूप है, इसी प्रकार कपाल, (खपरियो) के रूप से भी घट है तो जब कभी घटको फोड़ने की आवश्यकता जची तो यह मनुष्य फोड़ता है तो फोड़ने की क्या जरूरत है ? कपाल रूपसे भी तो घट मान लिया गया। इसी प्रकार यदि अन्तराल में रहने वाली जो घट पर्याय है उस पर्याय से भी घट नही है, जिसको प्रथम भंग में कहा है कि स्वरूप से है ? यदि अपने घट पर्याय स्वरूप से भी नही है तो फिर उस समय में जल भ्रने, जल खीचंने आदि कार्य नही बन सकते है, क्योकि वह तो घट पर्याय से भी नही है। यों घट अपनी पर्याय से है और पूर्वोत्तरवर्ती पर्याय की अपेक्षा से नही है।

**वर्तमान क्षणवर्ति घट पर्यायस्वरूप से अस्तित्व व अतीतअनागत घट, पर्याय पररूप से नास्तित्व** – अब उस ही में और सूक्ष्मता से निरीक्षण करे। घट में प्रतिक्षण सजातीय परिणमन हो रहा हे यह तो सिद्वान्त की बात है। सभी पदार्थो में सर्वत्र परिणमन होता रहता है। जैसे कोई घडा 10 दिन तक वैसा का ही वैसा है। 10 दिन की क्या बात, 5 मिनट भी ज्योंका त्यो समझ में आ रहा है। लेकिन परिणमन निरनतर हो रहा है। वहां एक समान परिणमन होते रहने से यह विदित नही हो पाता कि यह परिणम रहा हे। जब घट फूट जाय, या बिल्कुल रूप बदल जाय तब पहिचान होती है कि लो अब यह घटकी दशा बदल गई लेकिन बदलता है प्रति समय। तो घट आदिक पदार्थो में प्रति समय सजातीय परिणमन होता रहता है। तो ऋजूसूत्रनयकी अपेक्षा से वर्तमान क्षण में रहने वाली जो घट पर्याय है वह तो है घट का स्वरूप और अतीतकाल में अनागत काल में जो घट पर्याय है वह है पर्यारूप। जैसे यही एक घड़ा मीने भर तक रहेगा। लेकिन जिस समय में जिस पर्यायरूप से घट को देखा जा रहा है। बस उसी क्षण की घट पर्यायरूप से वह घट है और पूर्वोतर अन्य क्षणो में घट पर्याय रूप से भी घट नही है। अब यहां तर्कपर इसे कसककर देखे कि यदि उस समय के रहने वाले स्वभाव से जिसे कि सत माना है यदि अन्य क्षणो में रहने वाले घट भाव से भी उसका अस्तित्व हो जाय तो सब कुछ एक क्षण में ही हो जाना चाएिह ऋजुसूत्रदनय की अपेक्षा से वर्तमान एक क्षण में जिसे निरखा जा रहा है और है, और है, उसी स्वरू॰ से वह है। औश्र पूर्वोत्तर क्षणो में रहेने निरखा जा रहा है औश्र है, उसी स्वरूप से वह है। और पूर्वोत्तर क्षणो में रहने वाली उस सजातीय पर्याय रूप से वह हो जाय तो सब कुछ एक क्षण में रहने वाला हो जाय। इसी प्रकार यदि क्षण – क्षण में जैसा वह है और अन्य क्षणो में रहने

वाले स्वभाव से नही है। यहां यदि यों कोई ठान ले कि अन्य क्षणो में रहने वाली पर्याय से जैसे घटका नास्तित्व है इसी प्रकार उस क्षण में रहने वाले घटभाव की अपेक्षा भी नास्तित्व है। तब तो घटके आश्रय से व्यवहार ही नही बन सकता। स्वरूप से भी अब घट नही रहा तो घट कहेंगे किसको? जैसे जो घट अभी उत्पन्न ही नही हुआ ऐसी माटी में कौन घट का व्यवहार करता है? अथवा घट नष्ट हो गया तो उन कपाल टुकड़ो में कौन घट का व्यवहार करता है। तो जैसे नष्ट और अनुत्पन्न घट मे घट का व्यवहार नही होता इसी प्रकार पूर्वोत्तर पर्यायो में रहने वाले घटो में भी घटका व्यवहार नही होता। और अपने क्षण में रहने वाले घट की अपेक्षा से भी यदि अस्तित्व माना जाय तो उसमें भी घटका व्यवहार न होगा।

**घटका पृथुबुध्नोदराद्याकार स्वरूप से अस्तित्व इतराकाररूप पररूप से नास्तित्व** – अथवा अब और उससे सूक्ष्म दृष्टि करे तो उस ही क्षणवर्ती घट पर्याय में और स्वरूप पररूप का भेद किया जा सकता है। घट है रूप, रस, गंध, स्पर्श का समुदाय रूप अब उस समय में घट समझने वाले ने निरखा है वह प्रतिबुध में उदररूप आकार अर्थात् बीच में मोटा विशाल और ऊपर नीचे संकुचित ऐसा आकार देखता हुआ वह घट समझ रहा है। तो उस समय में वह आकार स्वरूप है और अन्य आकार पररूप है। तो वहाँ उस प्रतिबुध्नोदर आकार से तो घट है और अन्य आकार से घट नही है। अब यह विचार कर लें कि प्रतिबुध्नोदर आदिक आकार के सत्व आकार से घट नही है वह आकार न हो तो घट व्यवहार नही होता क्योकि व्यवहार उस उसव प्रकार के आकर में ही नियत हुआ करता है। अब यहाँ यदि प्रतिबुध्नोदर आकार से भी घट अस्तित्व न माना जाय तो स्वरूप से सत्व न माना जाय तो घटका असत्व हो जायगा। यदि अन्य आकार से भी अस्तित्व मान लिया जाय अर्थात् पररूप से अस्तित्व मान लिया जाता तो उस प्रकार के आकार से शून्य घट आदिक में भी घट व्यवहार का प्रसंग हो जायगा। यहाँ दृष्टि हो रही है एक प्रतिनियत आकार की और उसको ही दृष्टि में रखकर घट जाना जा रहा है। तो घट का स्वरूप है यह प्रतिनियत आकार है, अन्य आकार पररूप है। तो इस आकार से घट है अन्य आकार से घट नही है। मानो कई प्रकार के घट रखे है– कुछ लम्बे, कुछ, मोटे, कुछ कलशा जैसे कुछ सुराही जैसे। अब जिस आकार को निरखकर घट समझा रहा है बस घट का स्वरूप भी आकार है और अन्य आकार उसका पररूप है। तब वहाँ यह लगाया जायगा कि वह घट अपने स्वरूप से है और पररूप से नही है।

**रूप स्वरूप से घटका अस्तित्व व रसादिपररूप से नास्तित्व** – अथवा ओर भी सूक्ष्म दृष्टि से आगे चले तो देखिये! जिसको चक्षु से घट दिखा तो रूप सहित ही तो घट देखा। तो अब उसका इस घट व्यवहार में स्वरूप बना रूप और रसादिक बने पररूप तो वहाँ वह घड़ा रूप मुख से तो है और रसादिक मुख से नही है। यद्यपि घट पिण्ड में रूप, रस, गंध, स्पर्श ये चारो ही बातें है, एक बात तो कभी रहती भी नही। प्रत्येक पुद्गल पिण्ड में चारो ही बाते एक साथ होती है। लेकिन जब चक्षु से देखा तो ग्रहण में रूप ही आया। उस समय घट का स्वरूप रूप है और घट का पररूप रसादिक है। तो कैसे यह घटित होगा कि यह रूप स्वरूप से तो है, क्योकि चक्षुइन्द्रिय द्वारा ग्राह्य हो रहा है और पररूप से नही है। यदि घट पररूप से हो जाय अर्थात् चक्षुइन्द्रिय के द्वारा जो देखा गया है घट वह घट यदि रस रूप से भी अंगीकार कर लिया जाय तब फिर रसना आदिक इन्द्रिय की कल्पना करना व्यर्थ है। आँखो से निरखा और उस घट में मान लिया रसादिक से तन्मय तो फिर अन्य इन्द्रियकी क्या आवश्यकाता रही ?

चक्षुसे ही सब कुछ समझ लिया रूपवान घट रसवान घट आदि तो फिर अन्य इन्द्रिय की कल्पना करना व्यर्थ हो जायगा। किन्तु ऐसा तो नही है। प्रत्येक इन्द्रिय अपने–अपने विषय में प्रतिनियत है। तो यो यह घ्झट पररूप से नही है, इसी प्रकार जैसे कि घट रस आदिक पररूप से नही है यो ही रूपात्मक रूप से भी न रहे तो घटका फिर ग्रहण ही नही हो सकता। क्या घट है ? कैसे समझे ? उसमें कुछ भी ग्रहण में नही आया, क्योकि वहाँ तो घट ज्ञान रूपज्ञान में नियत है। तो जिस समय जिस इन्द्रिय के द्वारा देखा जाकर स्वरूप का निर्णय हो रहा है उस समय उस ही विषय रूप से है और पररूप से नही है।

**घटन क्रियाविशय कर्तृत्व स्वरूप से अस्तित्व कुटत्वादि परूरूप से नास्तित्व** – अथवा और भी सूक्ष्म दृष्टि लगाकार आगे बढ़े तो दखिये शब्द का भेद होने पर नियम से अर्थ का भी भेद हो जाता है। नाना अर्थो का ग्रहण करने वाला समभिरूढनय है। समभिरूढनय से मतलब है कि एक शब्द नाना अर्थो का भी वाचक हो लेकिन वह जिस अर्थ में रूढ है उस ही अर्थ की बताया। तो नाना अर्थो का ग्रहण करने वाले समभिरूढनय की अपेक्षा से घट के पर्यायावाची शब्द जितने है उन शब्दो को धर्म भेद है। जैसे कहा घट–तो मतलब निकला जो घड़ा जाये सो घट। और, कहा कुट्ट, तो जिसमें कुटिलता हो सो कुट्ट। यद्यपि घड़ा जाना और टेढापन होना ये दोनो बाते उस घट में पायी जा रही है लेकिन घट शब्द कहकर जो अर्थ भान में आया उसने भिन्न कुट्ट शब्द का अर्थ है। जैसे कि देवताओ के स्वामी का नाम इन्द्र भी है और शक्र भी है, किन्तु इनका अर्थ जुदा–जुदा है। इन्द्र वह जो ऐश्वर्य सहित हो और शक्र वह जो शत्रुओ को पराजित करने में समर्थ हो। यो ही शब्दो के भेद से घट अर्थ में भी भेद हो गया। जब घट शब्द कहा तो घड़ने की क्रिया का विषय बनता है और जब कुट्ट कहा तो उसका अर्थ है कुटिलता। कुटिलता आदिक है पररूप, तब यह कहना होगा कि घट स्वरूप से नही हे। अर्थात घडने की अपेक्षा से घट है किन्तु कुटिलता की अपेक्षा से घट नही है। इस प्रकार स्वरूप और पररूप की भांति अन्य भी विचार कर लेने चाहिए। यहां तक घट का उदाहरण देकर घट का स्वरूप और घट का पररूप उत्तरोत्तर सूक्ष्म दृष्टि से वर्णन किया गया।

**द्रव्यापेक्ष्या मृदात्मकता स्वरूप से घट का अस्तित्व व सुवर्णाद्यात्मक पररूप से नास्तित्व** – अब द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से घट का स्वरूप क्या है और पररूप क्या है ? इस विषय का वर्णन करते है। घट का स्वद्रव्य है मिट्टी द्रव्य और परद्रव्य है स्वर्णादिक। तब यों प्रयोग होगा कि घट मिट्टी रूप से तो है, स्वर्णादिक रूपसे नही है। यदि घट जैसे स्वद्रव्यरूप से है इसी तरह परद्रव्यरूप से भी हो जाय तो घट मिट्टीमय न रहेगा किन्तु स्वर्णादिक रूप हो जायगा, किन्तु ऐसा नही है। यह घट मिट्टी का ही है। स्वर्णादिक में नही है, यह तो नियम देखा जा रहा है और जब जैसे घट स्व द्रव्य से है ऐसे ही पर द्रव्य रूप मान लिया जाय तो यह नियम नही हर सकता। जब यह नियम न रहेगा तो द्रव्य का प्रतिनियम भी विरूद्व पड जायगा। द्रव्यमे प्रतिनियम के विरूद्व की बात सुनकर शंकाकर कहता है कि देखिये संयोग विभादिक गुण अनेक द्रव्यो के आश्रय रह रहे है फिर भी इनमें द्रव्य के नियम का विरोध नही आता। जैसे संयोग कहते है अनेक द्रव्यो के आश्रय नही, जिस पर भी विभाग पृथक हो जाना इसका भी आश्रय अनेक द्रव्य है। गुण क्या पृथक हुआ? यों आधार अनेक द्रव्य हुए तिस पर भी यह द्रव्य इससे अलग किया ऐसा नियम देखा ही जा रहा है तो यह कहा कि अनेक द्रव्य रूप से अगर सत् हो जाय तो द्रव्य का प्रतिनियम न रहेगा। यह बात नही कह सकते। संयोग विभाग आदिक मे अनेक द्रव्यो का आश्रय होने पर भी द्रव्य का प्रतिनियम

विरोध नही देखा जा रहा है। इस शंका के उत्तर में कहते है कि यह कहना युक्त नही है। कारण यह है कि संयोग विभाग आदिक ये अनेक द्रव्य के गुण है। याने एक गुण है और अनेक द्रव्यो के आश्रय है ऐसा नही है, किन्तु जितने द्रव्य है उतने ही संयोग विभाग आदिक गुण है। तो उन प्रत्योक गुणो का अपने –अपने आधारभूत द्रव्य ही स्वद्रव्य है। इस कारण अनेक उनका आधार होने से अनेक स्वद्रव्य रूप से उनकी सत्ता युक्त है और अपना जहां आश्रय नही है ऐसा द्रव्यान्तर अथवा संयोग विभाग आदि के लिये हम द्रव्य कहलाते है। यदि अपने आश्रय वाले द्रव्यात्मक रूप से भी संयोग आदिक की सत्ता बन जाय तो वहां भी अपने अनाश्रयभूत द्रव्य का प्रतिनियम न रहेगा। तो यों संयोग विभाग आदि के स्वद्रव्य कहलाते है। देखिये वहां भी तो द्रव्य का प्रतिनियम पड़ा हुआ है कि यह संयोग विभाग इस द्रव्य का है इस संयोग विभाग का स्वद्रव्य यह है। है वे अनेक द्रव्य, पर वहाँ भी नियम है और जिसमें संयोग विभाग नही है और संयोग विभाग के आश्रय भूत है ऐसा कहलाता है परद्रव्य। तो परद्रव्यात्मक की तरह से स्वद्रव्यात्मक रूप से घट का असत्व हो जाय तो समस्त द्रव्यो की अनाश्रयता होगी, फिर उसका कभी भी आश्रय ही न रह सकेगा। तात्पर्य यह है कि घट का स्वद्रव्य मृत्तिका है और परद्रव्य स्वर्णादिक है। यदि घट स्वद्रव्य रूप से जैसा है उस प्रकार यह द्रव्यरूप से भी हो जाये तो वहां द्रव्य में नियम न रहेगा कि यह घड़ा मिट्टी ाक है और यदि जैसे परद्रव्यरूप से घट का असत्व है यो ही स्वद्रव्यरूप से घटका असत्व हो जाय तो वहां घट का असत्व हो जायगा। कोई आधार न रहा तो घटवस्तु ही न रही, फिर सप्तभंगी क्या लगायी जायगी ? अथवा व्यवहार भी कैसे चलेगा? इस प्रकार स्वद्रव्य की अपेक्षा घट का स्वरूप और पररूप कहा।

**घट का स्वक्षेत्र की अपेक्षा से अस्तित्व व परक्षेत्रापेक्षया नास्तित्व** – अब क्षेत्र की अपेक्षा से घटका स्वरूप और पररूप क्या है यह बतलाते है ? जिस स्थान में घट है वह जमीन अथवा भींट आदिक घट का स्वक्षेत्र है और अन्य भट आदिक जहाँ कि घट नही है वह घट का परक्षेत्र है। अब यहां यह घटित कीजिए कि घट अपने क्षेत्र में है पर क्षेत्र में नही है। घटकी जैसे स्वक्षेत्र में सत्ता है ऐसे ही यदि परक्षेत्र में भी मान लिया जाय तो यह घट अमुक जगह है। अमुक जगह नही है, यह विभाग न बन सकेगा, क्योकि अब तो घटका सत्व अपने क्षेत्र में और अन्य क्षेत्र में दोनो जगह मान लिया गया तो घट कहां है, कहां नही है, यह विभाग न हो नही है, ऐसे ही जहां घट है उस क्षेत्र में भी असत्व माने तो घट निराधार हो गया। फिर घट की कोई सत्ता ही न रही। यह बात कही गई है पर क्षेत्र के स्वरूप और पररूप को लगाकर। यदि स्वक्षेत्र में ही स्वरूप पररूप लगाकर घटित किया जाय तो घट जिस देश में है वह घट का स्वक्षेत्र और उनके अतिरिक्त अन्य देश परक्षेत्र है। तो इस स्व़क्षेत्र की अपेक्षा से भी यह घटित किया जा सकता है कि घट स्वक्षेत्र से है, परक्षेत्र से नही है। यों घट के उदाहरण से क्षेत्र की अपेक्षा से स्वरूप बताये गए है।

**घटका स्वकाल की अपेक्षा से अस्तित्व व परकाल की अपेक्षा से नास्तित्व** – अब काल की दृष्टि से घट का स्वरूप और स्वरूप अथवा स्वकाल और परकाल का निरीक्षण करो। घट का स्वकाल है वर्तमान काल। जिस काल में घट हे वह है घट का स्वकाल। और, भूत, भविष्य की स्थितियां परकाल है। तो उनमें से स्वकाल में तो घट है और परकाल में घट नही है। यदि स्वकाल की तरह परकाल में भी घट का सत्व माना जाय तो इस काल में यह घट है इस प्रकार का नियम तो रहेगा नही। तब घट नित्य कहलायेगा। घट कितने समय तक रहेगा, बाद में फूट गया। पहिले पता न था, ये

सब बातें विरूद्व पड़ जायेगी। क्योकि घट का सत्व स्वर्ण की तरह परकाल से भी मान लिया गया, किन्तु ऐसा है नही, इससे मानना होगा कि घट स्वकाल में है, पर काल मे नही है। इसी प्रकार जैसे कि परकाल में घट का असत्व है यों ही स्वकाल में भी घट का असत्व मान लिया जाय तो जब अपने काल में भी घट न रहा तो घट कुछ रहा ही नही। फिर घट अवस्तु हो गया क्योकि काल से सम्बन्धित होने का ही नाम वस्तुपना है। अपने काल से रहे तब तो वस्तु का वस्तुपन है। वह न स्वकाल में रहा न परकाल में। तो जब कालमें रहा ही नही तो वस्तुतः इसकी कोई स्थिति नही, कोई परिणमन नही। तब वस्तुपना ही क्या हो सकता है। इस तरह अपने काल से है, परकाल से नही है यो काल में भी स्वरूपास्तित्व और पररूपनास्तित्व का वर्णन किया।

**भावापेक्षया घट का घटत्व स्वरूप से अस्तित्व व पटत्वादिपररूप से नास्तित्व** – अब भावकी अपेक्षा से स्वरूप देखिये! घट का भाव है घटत्व और पर भाव है अघटत्व, पटल आदिक। तों घट घटत्वरूप से है, पटत्वरूप से नही है यों भाव की अपेक्षा से घट में स्वरूप, पररूप होते है। यदि घट जैसे घटत्वरूप से है वैसे ही पटत्व रूपसे भी हो जाय तो वहाँ भाववान का प्रतिनियम नही हो सकता कि यह घटत्व धर्म से अवच्छित्र पदार्थ है। यह घट है और उस स्थिति में घट का व्यवहार और उपयोग भी न हो सकेगा। जैसे घट पटत्व आदिक रूप से नही है ऐसे ही घटत्व रूप से भी न रहे तब घट अवस्तु हो जायगा। इस कारण से भाव की अपेक्षा भी स्वरूपस्तित्व ंऔर पररूप नास्तित्व मानना होगा। इस तरह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा से और एकदम निर्णय व्यवहार में लेने की दृष्टि में इसका कथन किया जाय तो यो कहना चाहिए कि घट मिट्‌टी द्रव्य से है, स्वर्णादिक द्रव्यरूप से नही हे। घट अपने क्षेत्र से है परक्षेत्र से नही है। घट अपने काल से है, परकाल से नही है और अपने धर्मोरूप से है, पर के धर्म से नही है। इस प्रकार घट का अस्तित्व स्वरूप से रहा, पररूप से न रहा।

**घटत्वेनास्ति व पटत्वादिनी नास्ति इन दो वाक्यो का बोधप्रकार** – अब यहाँ पर इन वाक्यो का अर्थ समझना है तो उसका रीतिपूर्वक वर्णन करते है। घट घटत्व से है, इस वाक्य का अर्थ है कि घट घटरूप से है। यहांपर घटत्वेत ऐसा तृतीय विभक्ति में बता दिया है उसका अर्थ है अवच्छित्रत्व, सहितपन। घट घटत्वरूप से है इसका अर्थ हुआ घट घटत्व धर्म से सहित है। घट तो एक प्रकृत बात है, जिसके विषय में निर्णय किया जा रहा है और अस्ति शब्द अस धातु से बना है। अस धातु का अर्थ है सत्व में होना, उसमे तित् प्रत्यय लगाया गया जिससे कि उसका प्रसिद्वि अर्थ हुआ आश्रय रहना। तब घटः घटत्वेन अस्ति, इस वाक्य का स्पष्ट बोध यह हुआ कि घटत्व का अवच्छित्र जो अस्तित्व है उसके आश्रयभूत घट है याने घटत्व धर्म से सहित है अस्तित्व । उस अस्तित्व का आधार घट है। जहां घट कें धर्म पाये जा रहे है ऐसा यह घट है। यह घटः घटत्वेन अस्ति, इस प्रथम वाक्या का अर्थ है। यहां पटत्वेन नास्ति इसका अर्थ भी एक आधार रूप से बनेगा, क्योकि अभाव भी अधिकरणात्मक रूप से होता है। अभाव तुच्छाभाव नही माना गया है, किन्तु अभाव भी किसी एक का अभाव बाला होता है। जैसे पटका अभाव घट और घटका सद्‌भाव घट। तो अभाव का अधिकरणात्मक रूप होने से पटत्व से सहित अभाव भी घटस्वरूप रहा। याने पटत्व धर्म का अवच्छित्र जो अभाव है मायने पटपना न होना, इसका आश्रय भी क्या रहा? घट। घट में पटके धर्म नही है। तो यों घटः पटत्वेन नास्ति, इस वाक्य का अर्थ हुआ कि पटत्व का अवच्छित्र अभाव का आश्रय है घट। इस दूसरे वाक्य में जो नय सभास लगाया गया है नास्तित्व, उसका अर्थ है अभाव। तो यों अर्थ

लगाना कि अघटत्व अर्थात् पटत्व आदिक धर्मो का अवच्छित्र अभाव घट है। इससे भी बात सत्य हुई कि घट में घटत्व आदिक का अभाव स्वरूप है। अभाव अधिकरणात्मक माना गया है। तो यो घटः घटत्वेन अस्ति इसका अर्थ हुआ घटत्व धर्म से सहित अस्तित्व का आश्रय है घट घटः पटत्वेन नास्ति इसका अर्थ हुआ कि पटत्व धर्म से सहित अभाव का आश्रय घट है। उक्त दो वाक्यो के बोध प्रकार की तरह घट मृत्तिका द्रव्यरूप से है इत्यादि वाक्यो का भी तत्तद्धर्मविच्छित्ररूप से अर्थ समझ लेना चाहिऐ।

**शंकाकार द्वारा स्वरूप का स्वरूप पररूपान्तर मानने व न मानने में दोषापत्ति का प्रदर्शन** – यहां शंकाकार कहता है कि सर्व पदार्थो की व्यवस्था स्वरूप चतुष्टय से और पररूपादिक चतुष्टय से मानी गई है। स्वरूपादिक चतुरूटय से अस्तित्व और पररूपादिक चतुष्टय से अस्तित्व माना है पर यह बतलाओ कि स्वरूपादिकी व्यवस्था कैसे बनेगी क्योकि स्वरूप में स्वरूपान्तर तो होता नही, जिससे कि स्वरूप अपने स्वरूप से कहा जाय पररूप से न कहा जाय। यदि उन स्वरूपादिक चतुष्टयो का भी स्वरूप चतुष्टय मान लिया जाय तो अनवस्था दोष होगा फिर तो उस स्वरूप चतुष्टका भी स्वरूप चतुष्टय होना चाहिए। यों बहुत दूर जाकर भी यदि किसी जगह ऐसा मान लेते है कि उसका स्वरूपान्तर नही भी है तो भी स्वरूप की किसी जगह ऐसा मान लेते है कि उसका स्वरूपान्तर नही भी है तो भी स्वरूप की व्यवस्था है तब फिर पहिले से ही किसी पदार्थ से स्वरूप चतुष्टय की अपेक्षा सत्व और पररूप चतुष्टय की अपेक्षा से असत्व ऐसे समर्थन से क्या फायदा है? वह तो अपने घर की मानी हुई प्रक्रिया है कि प्रतीति के अनुसार वस्तु की व्यवस्था बनती है।

**वस्तुस्वरूप प्रतीति द्वारा स्वरूप स्वरूपान्तर के बोध से पूर्ण समाधान की सहजता** – उक्त शंका के समाधान में कहते है कि स्वरूप चतुष्टाय के लिए स्वरूप चतुष्टय दूसरा माना जाय ना माना जाय आदिक विचारों से दोषापति का उपालम्भ करना अयुक्त है, कारण कि अभी आप, (शंकाकार) वस्तु के स्वरूप की परीक्षा से अनभिज्ञ है वस्तु स्वरूप की प्रतीति स्वरूप से सहित सत्व को विषय करता है और पररूप से सहित असत्व का विषय करता है अन्यथा यदि वस्तु में स्वयं ऐसा स्वरूप न माना जाय तो नाना निरंकुश विवाद खड़े हो जायेंगे। वस्तु की बाधारहित जिस तरह प्रतीति हो सकती है उस ही प्रकार स्वरूप की व्यवस्था की जाती है। क्योकि प्रमेय की सिद्वि प्रमाण के अधीन है ऐसा भगवद् वचन है और इस प्रकार स्वरूपादिक की स्वरूपादि दूसरी प्रतीति होती है या नही, इसके स्वरूप आद्यन्तर तो माना ही नही गया है, इस प्रकार उनके अस्तित्व और नास्तित्व की व्यवस्थानही है इसको अभी बताया हे और आगे भी बतायेंगे। हां स्वरूपादकि में स्वरूपादि अन्य माने जा सकते है प्रतीति के अनुरोध से। कदाचित स्वरूप के सम्बन्ध मे ंभी विवाद हो गया तो वहाँ पर भी स्याद्वाद सप्तभंगी के ढंग का वर्णन किया जायगा। इस तरह वहां अनवस्था नही आती। जहां पर अन्य स्वरूपान्तर की प्रतीति हो रही है बस वहाँ व्यवस्था बन ही जाती है। वस्तु को निरख कर पहिली बार जो स्वरूप समझ में आया उससे वस्तु की व्यवस्था बन गई अथवा जहाँ स्वरूपाद्यनादिकी प्रतीति हुई वही व्यवस्था बन जाती है, फिर अन्य कल्पना करना व्यर्थ है।

**उदाहरण द्वारा वस्तुस्वरूप, स्वरूप स्वरूप आदिक निर्णय** – जैसे जीवका लक्षण उपयोग कहा गया है। उपयोगो लक्षण ऐसा तत्वार्थ महा शास्त्र में कहा भी है। तो जीवका लक्षण उपयोग है। वह तो है जीवका स्वरूप और अनुपयोग हुआ पररूप। अब उपयोग की दृष्टि से जीव का सत्व है, अनुपयोग की दृष्टि से जीवका असत्व

है अर्थात जीव का स्वरूप उपयोगमय है, अनुपयोगमय नही है। उपयोग सामान्य का भी अगर कोई स्व्रूप समझना चाहे कि भाई जीव का लक्षण उपयोग है इस शब्द ने तो बात बता दिया मगर उपयोग सामान्य का भी क्या स्वरूप है? तो उन्हे बताया जा सकता है कि ज्ञान दर्शनरूप है उपयोग का स्वरूप। और, अन्य है पररूप। उपयोग विशेष जो ज्ञान है उसका क्या स्वरूप है ? कोई पूछे तो उसका भी स्वरूप कहा जा सकता है कि अपने अर्थ के निश्चयात्मक जो प्रतिभास है वह है ज्ञान का स्वरूप। और, दर्शन का क्या स्वरूप है। तो उसका स्वरूप अन्य किसी आकार रूप से नही, किन्तु प्रतिभास सामान्य से जो ग्रहण हे वही दर्शन का स्वरूप है। फिर परोक्ष ज्ञान का स्वरूप क्या है ? अविषदपना जहाँ स्पष्टता नही है, निर्मलता नही है वह है ज्ञान का स्वरूप। प्रत्यक्षका क्र्रा स्वरूप है ? निर्मलता। दर्शन का भी क्या स्वरूप है ? तो चक्षु और अचक्षु के निमित से चक्षु आदिक अन्य पदार्थ का सामान्यतया ग्रहण होना यह दर्शन का स्वरूप है। अवधिदर्शन का क्या स्वरूप है? अवधिज्ञान के विषयभूत अर्थ का सामान्यतया ग्रहण होना सो अवधिदर्शन का स्वरूप है। परोक्षज्ञान, मतिज्ञान, उसका क्या स्वरूप है ?इन्द्रिय और मन से उत्पन्न हुआ विषय है श्रुतज्ञान का स्वरूप। प्रत्यक्ष ज्ञान का क्या स्वरूप है ?प्रत्यक्षज्ञान होते है 8 प्रकार के। विकल प्रत्यक्ष और सकल प्रत्यक्ष। तो विकलन प्रत्रूक्ष का स्वरूप है इन्द्रिय और मन की अपेक्षा न रखकर स्पष्ट रूप से अपने विषयभूत पदार्थ का निश्चय करना यह है विकल प्रत्यक्ष का स्वरूप। सकल प्रत्यक्ष का क्या स्वरूप है वह है केवल ज्ञान। समस्त द्रव्य पर्यायो का साक्षातकार करना यह है प्रत्यक्ष का स्वरूप। तो स्वंय में भी स्वरूपान्तर होता है। और जहां स्वरूपांतर जानने की जिज्ञासा नही रहती है। अपने विषय में स्पष्टीकरण हो जाता है बस वहाँ सम्बनिघत होता है उसे आगे अनवस्था का अवकाश्ज्ञ नही है। तो यह है उसका स्वरूप और उससे अन्य जो कुछ है वह पररूप है। यों स्वरूप से सत्व और पररूप से असत्व सभी स्थिनियो में घटित होता है। यहाँ पर भी उत्तरोत्तर विशेषो में पहिचाना जाय तो स्वरूप और पररूप निश्चित होते चले जायेंगे क्योकि जो उनके विशेष है और उनके भी विशेष है वे अनन्त हो सकते है। जहाँ तक जिज्ञासा है वहाँ तक ज्ञान चलता जायगा, जहाँ निर्णय हो चुका उसके आगे ज्ञान परिअवसित हो जाता है अर्थात अब ज्ञान जानता ही रहता है यो सभी पदार्थो में स्वरूप पररूप होता है और उससे ही सत्व असत्व का निर्णय किया जाता है।

**प्रमेय के स्वरूप पररूप के सम्बन्ध में विचार** –अब शंकाकार कहता है कि प्रमेय का क्या स्वरूप है और प्रमेय का क्या पररूप है? जिन स्वरूप और पररूप के द्वारा प्रमेय का अस्तित्व और अन्य का अस्तित्व सिद्व किया जाय? उत्तर में कहते है कि प्रमेय का प्रमेयत्व स्वरूप हे और घटत्व आदिक पररूप है। उसका प्रयोग यों होगा कि प्रमेय का प्रमेयत्व रूपसे है और घटत्व आदिक रूपसे नही है। इस विषय में कुछ लोग यह भी कहते है कि प्रमेय का स्वरूप प्रमेयत्व है और अप्रमेयत्व पररूप है। इस विषय में कोई ऐसा शंका करे कि प्रमेयत्व पररूप है। इस विषय में कोई ऐसी शंका करे कि प्रमेयत्व नाम तो प्रमेयत्व के अभाव का है और प्रमेयत्व का अभाव अप्रसिद्व है क्योंकि प्रमेय का अर्थ है कि जो प्रत्यक्ष प्रमाण आदिक से जाना जाय, सो ऐसा कौन सो पदार्थ है जो प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणो से नही जाना जाता है तो जाना जाता है तो प्रमेयत्व का अभाव अप्रसिद्व है। ऐसी शंका नही कर सकते। चर्चाकार कह रहे है क्यो शंका नही कर सकते ? यों कि प्रमेयत्व का अभाव भी श्रृगं व अश्वश्रृगं आदिक में प्रसिद्व है याने खरगोश के सींग अप्रमेय है, अवस्तु है। प्रमेय प्रमेयत्वरूप से है और अप्रमेय रूप से नही है। चर्चाकार के प्रति शंकाकार कहता है कि खरगोश के सींग आदिक का प्रमेयत्व रूपसे लोकव्यवहार है इसलिए खरगोश

के सीगं आदिक में जो प्रमेयत्व का अभाव है उसका भी प्रमेयत्व हो जायगा। खरगोश के सींग नही है इस प्रकार का ज्ञान तो हुआ ना! तो खरगोश के सींग का दृष्टान्त अत्यन्ताभाव के लिये दिया जाता है ना! सो जो प्रमेयत्व का अभाव है वह भी प्रसिद्व है इसलिये वह भी प्रमेय बन जाता है खरगोश के सींग नही है इस प्रकार का ज्ञान तो हो ही रहा है। उत्तर में कहते है कि यह कह नही सकते, क्योकि प्रमेयत्व के अभाव के जानने में साधक कोई प्रमाण नही हे इस कारण प्रमेयत्व के अभाव में प्रमेयत्व की सिद्वि नही हो सकती। इसका कारण यह है कि प्रमाण से उत्पन्न जो प्रतीतिरूप फल में प्रमितिका विषय है उसको प्रमेय कहते है। तो प्रमेयत्व का अभाव इस प्रकार का प्रमाण नही बनता कि वह प्रमाण जन्य हो ऐसा प्रमितिका विषय बने यह युक्ति से सिद्व नहीहै। तो यों प्रमेत्व स्वरूप से और अप्रमेयत्व पररूप से प्रमेय का अस्तित्व तथा नास्तित्व बराबर सिद्व है ऐसा कुछ लोग कहते है। कि प्रमेय का स्वरूप प्रमेयत्व हे और पररूप अप्रमेयत्व है।

**षटद्रव्यो के स्वरूप पररूप का विचार** – अब यहाँ शंकाकार कहता है– अच्छा, भाई ! यह बताओ कि जीवादिक 6 द्रव्यो का स्वद्रव्य क्या है ? और परद्रव्य क्या है? जिस स्वरूप और पररूप से अस्तित्व और नास्तित्व की व्यवस्था की जाय, क्योकि जीवादिक 6 द्रव्यो के अलावा अन्य द्रव्य कोई हो ही नही सकता। तब 6 द्रव्यो की व्यवस्था करने के लिए स्वरूप और पररूप ये न मिल सकेंगे। इस पर उत्तर देते हे कि उनकी भी सिद्वि यो है कि शुद्व सत् द्रव्य की अपेक्षा से तो आस्तित्व है और पररूप से याने अशुद्व असत् द्रव्यकी अपेक्षा नास्तित्व है। यहाँ प्रश्न यह किया गया थ कि जीव, पुद्‌गल , धर्म अधर्म, आकाश, काल आदि जो 6 द्रव्य है, इनका स्वद्रव्य क्या है? और परद्रव्य क्या है? अथवा 7 तत्व है – जीव, अजीव, आश्रव, बंध आदिक। इनका स्वरूप क्या और पररूप क्या? इस पर उत्तर यह दिया गया कि इन 6 द्रव्यो का शुद्व सत् द्रव्य की अपेक्षा से तो अस्तित्व है और अशुद्व असत् द्रव्यकी अपेक्षा से नास्तित्व सिद्व है। याने 6 द्रव्यो का जो शुद्व सत् द्रव्य है वहतो स्वरूप है और आगे जो अशुद्व है, असत है ऐसा कुछ भी हे वह परद्रव्य है, उसकी अपेक्षा से 6 द्रव्यो में नास्तित्व युक्तिपूर्वक सिद्व है।

**महासत्ता के स्वरूप पररूप का विचार** – अब यहाँ शंकाकार पूछता है कि यही बतलावो कि महासत्व रूप शुद्व द्रव्य का स्वरूप क्या और पररूप क्या ? क्योकि महासत्ता तो समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है। समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको छोड़कर अन्य द्रव्यादिक नही रह सकता, फिर वहाँ तो परद्रव्य कुछ मिलेगा नही। उत्तर में कहते है कि यह बात नही है। महासत्ता का भी सकल द्रव्य, क्षेत्र, काल आदिक की अपेक्षा से सत्व है और विकल द्रव्यादिक की अपेक्षा से असत्व है याने महासत्व समस्त द्रव्यो में व्यापक है ना! तो समस्त द्रव्यो में व्यापक रूप से तो महासत्ता का सत्व है और कुछ द्रव्यादिक में रहे इस रूप से असत्व है, क्योकि महासत्व का यह स्वरूप ही नही कि वह कुछ पदार्थो में रह जाय और कुछ मे न रहे। तो महासत्व के सम्बन्ध में भी स्वरूप और पररूप सिद्व होते है, क्योकि कहा गया है कि सत्ता भी प्रतिपक्षसहित होती है। इस तरह महासत्व का वर्णन किया है और उसका स्वरूप पररूप बताया है।

**आकाश के स्वरूप पररूप का विचार** – महासत्ता के वर्णन से आकाश को भी समझ ले ! समस्त क्षेत्र, काल में रहने वाला जो आकाश्ज्ञ है उसका भी स्वरूप पररूप जान लेना चाहिए अर्थात् समस्त काल, क्षेत्र की अपेक्षा से आकाश का सत्व है और कुछ थोड़े क्षेत्र, काल की अपेक्षा से आकाश में असत्व है। जिसका भाव यह है कि आकाश्ज्ञ तो सदाकाल रहता है और सब क्षे़त्रो में रहता है। ऐसा नही है कि आकाश कुछ

क्षेत्र मे रहे और कुछ काल में। तो कुछ क्षेत्र काल में रहना जब आकाश का स्वरूप ही नही तो उसकी अपेक्षा से वह सत्व नही हो सकता। यों आकाश मे भी स्वद्रव्य क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से सत्व और पररूप की अपेक्षा से असत्व सिद्व होता है। यो किसी भी तत्व का वर्णन करते जाये, जो विवक्षित है, जो दृष्टव्य है वह तो है स्वरूप और उससे इतर जो कुछ है वह है पररूप। यों स्वरूप से सत्व और पररूप से नास्तित्व की व्यवस्था बराबर सर्वत्र बनती है और स्वरूप में स्वरूपान्तर भी माना जाता है। स्वरूप का निर्णय करने जब चलेंगे तो वहाँ  भी कोई स्वरूप और कोई पररूप बनेगा ही। यो सप्तभंगी में स्वरूप से अस्तित्व की सिद्वि है और पररूप से नास्तित्व सिद्व है और उसी के आधार पर 7 भंग की निष्पत्ति होती है।

**अस्तित्व की तरह नास्तित्व की वस्तुस्वरूपताका वर्णन** – यहाँ शंकाकार कहता है कि वस्तु का स्वरूप तो अस्तित्व ही है। नास्तित्व वस्तु का स्वरूप नही हो सकता, क्योकि नास्तित्व पररूप के आश्रय है। पररूप से नास्तित्व बताया गया है तो उसमें आश्रय पररूप का ही हुआ। यदि पररूप के आश्रित रहने वाला भी नास्तित्व वस्तु का स्वरूप मान लिया जाय तो पट में प्राप्त हुए रूपादिक भी घटका स्वरूप बन जायेगे। फिर तो वस्तु की व्यवस्था न रहेगी। इस शंका के उत्तर में कहते है कि यह कहना युक्त नही है कि वस्तु का स्वरू॰ नास्तित्व नही, क्योकि वस्तु में अस्तित्व और नास्तित्व दोनो के ही स्वरूप रूप मानने में प्रमाण मौजूद है। देखिये घटके स्वरूपादिक से सहित अस्तित्व जैसे प्रत्यक्ष से ग्रहण में आता है। मायने घट अपने स्वरूप से सहित है यह बात जैसे स्पष्ट विदित है इसी प्रकार पररूपादिक से सहित नास्तित्व भी घट में प्रत्यक्ष से ग्रहण में आता है। अर्थात यह भी विदित हो रहा है कि घट में पररूप का नास्तित्व है। जैसे घटःघटत्वेन अस्ति, घट घटरूप से है, यह प्रतीति अबाधित है उसी प्रकार घट घटरूप से नही है, यह भी प्रतीति निर्वाध हो रही है।

**अनुमान प्रयोग से नास्तित्व की वस्तुस्वरूपता का समर्थन** – अस्तित्व की तरह नास्तित्व भी वस्तु का स्वरूप है, इस विषय में अनुमान का प्रयोग करके समझा जा सकता है कि अस्तित्व और नास्तित्व ये वस्तु के स्वरूप है। प्रयोग है अस्तित्व स्वभाव नास्तित्व स्वभाव से अविनाभूत है विशेषण होने से, साधर्म्यकी तरह। जैसे कि साधर्म्य वैधर्म्य से अविनाभूत है आर्थात् साधर्म्य कोई चीज हे तब जब कि वह वैधर्म्य भी कुछ चीज है। अविनाभूत का अर्थ है कि एक अधिकरण में रहना। यह न हो तो यह न रहे, ऐसे नियमपूर्वक एक आधार में रहने का नाम हे अविनाभूतपान। इस प्रयोग से भी सिद्व होता है कि घटका अस्तित्व किसी नास्तित्व से अविनाभूत है तब जैसे अस्तित्व घटका स्वरूप है ऐसे ही नास्तित्व भी घटका स्वरूप है।

**वैधर्म्य के बिना साधर्म्य हो सकने के कारण नास्तित्व के वस्तुस्वरूपसमर्थनार्थ प्रयुक्त अनुमान में दृष्टान्त की अयुक्त्तांकी शंका** – यहां शंकाकार कहता है कि यह बात तो युक्त नही जची कि जैसे साधर्म्य वैधर्म्य से अविनाभूत होता है उसी प्रकार अस्तित्व भी नास्तित्व से अविनाभूत होता है क्योकि कह कही वैधर्म्य न भी हो तो भी साधर्म्य दिख जाता है। देखो यह एक प्रयोग है कि घट अभिधेय है अर्थात् कथन किया जाने योग्य है क्योकि प्रेमयत्व धर्म होने से। घटः अविधेय प्रमेयत्वात् अब इस अनुमान में देखिये– जहां प्रमेत्वादिक हेतु है वहां वैधर्म के अभाव में साधर्म है। प्रमेयत्व कहने से सभी चीजें तो आ गयी। जगत में जो भी प्रमेय है वे सब सत् है। अब वैधर्म्य तो तब आता कि जो प्रमेयत्व न हो उसे भी ग्रहण करता, पर

प्रमेयत्व न हो उसका ग्रहण तो नही होता। तो साधर्म्य वैधर्म्य का साहचर्य तो न रहा। तब साधर्म्य वैधर्म्य के सदृश अस्तित्व नास्तित्व का अविनाभूत है यो कहना अयुक्त है। प्रकृत विषय था कि अस्तित्व नास्तित्व से अविनाभूत है और उसके लिए दृष्टान्त दिया– जैसे कि साधर्म्य वैधर्म्य से अविनाभूत है। लेकिन साधर्म्य तो वैधर्म्य से व्याप न रहा। तब उसका दृष्टान्त देकर अस्तित्व का नास्तित्व से व्याप्य सिद्व करना अयुक्त है। स्पष्ट अर्थ इसका यह है कि प्रमेय सब पदार्थ है। तो जहां प्रमेयत्व सब पदार्थ है। तो जहां प्रमेयत्व है वहां प्रमेयत्व का अभाव तो न मिला और जो प्रमेय नही वह अवस्तु है उसका नाम ही क्या। तो देखिये– जब अभाव का हेतू कही न मिला, जो है वह सब प्रमेय है जो नही है उसका ग्रहण क्या? तो जब वैधर्म्य न मिल सकेगा तो उसके साधर्म्य तो हो गया। तब यह दृष्टान्त देना युक्त नही है।

**नास्तित्व के वस्तुस्वरूपसमर्थनार्थ, प्रयुक्त अनुमान में प्रदत्त दृश्टान्त की युक्ता का समाधान** – अब उक्त शंका का उत्तर सुनिये ! साधर्म्य के अधिकरणभूत आधार में जिसका रहना निश्चित हो उसको साधर्म्य कहते हे पहिले साधर्म्य वैधर्म्य का स्वरूप निश्चित कीजिए। साधर्म्य किसे कहते है? साध्य के सद्भाव के अधिकरण में रहने को साधर्म्य कहते है। और, साध्य के अभाव का अधिकरण में रहने रूप से जो निश्चित हो उसे वैधर्म्य कहते है। अब दृष्टान्त से सम्बन्धित अनुमान जो शंकाकारने लिया, उसमें साध्य है अभिधेयपन। किया था ना अनुमान कि घट अभिधेय है प्रमेयत्व होने से। तो यहां साध्य है अभिधेयपन उसके अभाव का अधिकरण है खरगोश के सींग आदिक अर्थात् जहां प्रमेयपना न हो ऐसी बात कह रहे है। खरगोश के सींग नही है और उसमें प्रमेयत्व की वृत्ति भी नही है। साध्य के अभाव में साधन का न होना, यही बात तो वैधर्म्य में घटायी जायगी। तो देख लीजिए, खरगोश्झ के सीगं अभिधेय भी नही और प्रमेय भी नही तब वैधर्म्य कैसे न मिला? खरगोश के सींग अवस्तु होने से अभिधेय नही हो सकते और अवस्तु होने से प्रमेय भी  नही हो सकते। तो इस अनुमान में भी वैधर्म्य मौजूद है अतएव दृष्टान्त अयोग्य न रहा।

**नास्तित्व की अस्तित्व से अविनाभूतता का कथन**– नास्तित्व भी अस्तित्व शब्द से अविनाभूत है विषेषण होने से , वैधर्म्य की तरह। इस अनुमान से भी अस्तित्व और नास्तित्व के अविनाभूत की सिद्धि होती हैं। स्वरूप से अस्तित्व होना, पररूप से नास्तित्व हुए बिना नही हो सकता । पररूप से नास्तित्व होना स्वरूप से अस्तित्व हुए बिना नही हो सकता। अतएव यह कहना कि वस्तु का स्वरूप अस्तित्व ही है नास्तित्व नही है यह बात अयुक्त है। पट आदिक के नास्तित्व का आधार तो घट मे बनाया गया है। घट मे घट का नास्तित्व हैं। तो पट का नास्तित्व घट के आश्रित हुआ, न कि पररूप के आश्रित हुआ। तो जैसे अस्तित्व  वस्तु का स्वरूप इसी प्रकार नास्तित्व भी वस्तु का स्वरूप है। अब शंकाकार कहता है कि देखिये! एक यह अनुमान बताया गया कि पृथ्वी जल आदिक से भिन्न है, गंधवान् होने से। एक सिद्धान्त में पृथ्वी को गंधवान माना जाता है, जल को रसवान माना हैं और अग्नि को रूपवान माना है। उस सिद्धान्त के अनुसार चूंकि पृथ्वी गंधवान है और गंध जलादिक में नही है अतएव जलादिक से भिन्न पृथ्वी सिद्ध होती है। गंधवान होने से, इस अनुमान में जो जो हेतु दिया गा है वह केवल व्यतिरेकी है अर्थात् इसके उदाहरण से वैधर्म्य तो मान लिया जाएगा, याने जिसमे साध्य नही, साधन नही ऐसा दृष्टान्त तो मिल जायगा, पर साधर्म्य न मिलेगा। क्योंकि पृथ्वी में तो सब पृथ्वी आ गई और पृथ्वी ही गंधवान है  अब और चीज अगर उदाहरण के लिये मिले कि जिसमें साधर्म्य

मिले तब तो अनुमान ठीक हो, लेकिन ऐसा कोई दृष्टान्त नही है। तब केवल व्यतिरेकी हेतु में वैधर्म्य तो मिलेगा पर साधर्म्य न मिलेगा। तब यह भी दृष्टान्त देना कि नास्तित्व अस्तित्व का अविनाभूत है विषेषण होने से वैधर्म्य की तरह, यह दृष्टान्त युक्त नही बैठता। अब उक्त शंका के उत्तर में कहते हैं कि केवल व्यतिरेकी हेतु में भी साधर्म्यपना घटादिक मे सम्भव ही है। जो अनुमान बताया गया हैं कि पृथ्वी  जलादिक से भिन्न है गंधवान होने से इस हेतु में भी साधर्म्य मिल जायगा घटकी तरह पृथ्वी जल आदिक से भिन्न है गंधवान होने से। जैसे कि घट। यह साधर्म्य कैसे मिल गया कि साधर्म्य के लिये यह नियम नही बन सकता कि जो पक्ष से भिन्न हो वही साधर्म्य हो, पक्ष नही हो। साधर्म्य के लिए तो इतना देखना है यहॉ कि जलादिक से भेद का अधिकरण होना चाहिए। याने जो जलादिक से भिन्न हो बस वह साधर्म्य बन जायगा। जो साध्य का अधिकरण हो, जहॉ साध्य के सद्भाव पाये जायें वे सब साधर्म्य कहलाते हैं। तो यहां साध्य बनाया गया है जलादिक से भिन्न होना तो जलादिक से भिन्न होने का अधिकरण तो घट भी है और वहां गधवत्त्व हेतु निष्चित रूप से पाया जा रहा है। इसलिए साधर्म्य तो बराबर सही बन रहा है, ऐसा नही कह सकते कि यहां वैधर्म्य साधर्म्य के बिना रह गया। तो जैसे वैधर्म्य साधर्म्य से अविनाभूत है इसी प्रकार नास्तित्व भी अस्तित्व स्वभाव से अविनाभूत है। अतः यह नही कह सकते कि वस्तु का अस्तित्व ही स्वरूप हुआ, नास्तित्व न हुआ या नास्तित्व ही स्वरूप हुआ अस्तित्व न हुआ।

**नास्तित्व का अस्तित्व से अविनाभूत होने के सम्बन्ध में भांका व समाधान**– अब शंकाकार कहता है कि आपका यह कथन कि नास्तित्व अस्तित्व के बिना नही हो सकता, अयुक्त है क्योकिं हम आपको ऐसा उदाहरण देंगे जहॉ नास्तित्व है और अस्तित्व नही हैं। जैसे खरगोष के सींग, आकाष के फूल , मेढ़क की चोटी तो बतलाओ! यहॉ अस्तित्व कहॉ ? नास्तित्व ही तो है। तो इन दृष्टान्तों में अस्तित्व के बिना भी नास्तित्व देखा गया, फिर यह व्याप्त कैसे बनाई जा सकती है कि नास्तित्व अस्तित्व का अविनाभावी हैं या अस्तित्व नास्तित्व का अविनाभूत है? इस शंका के उत्तर मे कहते हैं कि भाई, खरगोष वगैरह के सींग भी जो उदाहरण में बताये हैं वहॉ भी अस्तित्व सिद्ध हो सकता है। खरगोष के सींग का नास्तित्व अस्तित्व का अविनाभूत है, वह किस प्रकार ? सो सुनो! देखिये, सींग तो प्रसिद्ध है ही । अब जो सींग गाय के मस्तक में समवाय रूप से है अर्थात् गाय के तो सींग है ना, और वह सींग गाय के मस्तक मे समवाय रूप से है। याने सभी मिलकर तो वह मस्तक है और वहीं वह सींग है। तो जो सींग गाय के मस्तक के समवाय रूप से प्रसिद्ध है वही सींग खरगोष आदिक के मस्तक मे समवाय रूप से नही है, यह निष्चित हो जाता है ना ? तो देखो ! उस ही का अस्तित्व बन गया, नास्तित्व बन गया। जैसे कि कछुवा के रोम नही होते, लेकिन स्याद्वाद विधि से यहॉ भी परखियें कि नास्तित्व भी अस्तित्व का अविनाभूत है। मेढ़क आदिक के समवाय रूप से जो रोम होना प्रसिद्ध है वह रोम कछुवा आदिक के समवाय रूप से नही है, यह बात तो मानोगे ना ? तो देखिये ! नास्तित्व अस्तित्व से अविनाभूत बन गया अथवा जैसे आक्षेप में कहा गया था कि आकाष के फूल में कैसे नास्तित्व अस्तित्व में अविनाभूत रहा ? सो सुनो ! वहां पर भी यह बात है कि जो फूलपना वनस्पति के सम्बन्धी रूप से प्रसिद्ध हैं वह ही फूल आकाष के सम्बन्धी रूप से नही है। तो देखो ! उसमें भी नास्तित्व और अस्तित्व से अविनाभावी बन गया तो यों यह बात प्रकट सिद्ध है कि अस्तित्व और नास्तित्व परस्पर में अविनाभूत होकर ही रहा करते हैं। अतएव वस्तु का जैसा अस्तित्व स्वरूप हैं उस ही प्रकार नास्तित्व भी स्वरूप हैं।

**नास्तित्व का अस्तित्व से अविनाभूत होने के सम्बन्ध में अन्यवाद**– अन्यवादीजन इस सम्बन्ध में ऐसा विचार रखते है कि जैसे देवदत्त आदिक शब्द बोला तो देवदत्त शब्द मे शक्ति क्या है ? अर्थात् देवदत्त कहने से किसका बोध हुआ है ? तो वह बोध हुआ है देवदत्त के शरीर से सहित आत्मा का। तो देवदत्त कहने से आत्मा का ज्ञान किया गया। कहते भी है ऐसा कि देवदत्त जानता है, देवदत्त सुख का अनुभव करता है, इससे सिद्ध है कि देवदत्त शब्द कहकर देवदत्त के आत्मा का बोध किया जाता है। इसी प्रकार मेंढ़क आदिक शब्द बोलते है तो उससे किसका बोध हुआ ? मेढ़क आदिक के शरीर में रहने वाले आत्मा का बोध हुआ। तो इस तरह कर्म के आदेषवत नाना जाति सम्बन्ध को प्राप्त हुए जीव का जब यह जीव मेंढ़क की पर्याय में था तब मेढ़क कहकर उस पर्याय के जीव का ग्रहण किया और मानो वही मेंढ़क का जीव मरकर स्त्री बन गया तो स्त्री का पर्याय में तो बड़ी लम्बी चोटी होती है। अगर यह कहा जाय कि यह मेढ़क की चोटी है तो ऐसा कदंचित् कह सकते हैं अर्थात् जो स्त्री पर्याय में जीव है वह जीव पहिले मेंढ़क पर्याय में था तो मेढ़क कहकर उस जीव को लिया और चोटी कहकर स्त्री भाव की चोटी को लिया तब यह कह सकते हैं कि यह मेढ़क की चोटी है। तो प्रत्यभिज्ञान को विषयभूत एक जीव है और एक जीव का ही सम्बन्ध हैं। मेंढ़क भी वही था और स्त्री भी वही बना तब जब स्त्री की चोटी का उपचार मेंढ़क के साथ लगाया गया तो देखो अगर कोई यह कह दे कि मेंढ़क की चोटी, तो इसका भी अस्तित्व बन गया। मेंढ़क के शरीर से सहित आत्मा को मेंढ़क के शरीर के समान काल में यद्धापि चोटी नही है उसका वहां नास्तित्व है मगर वह जीव जब स्त्री पर्याय में आया तो उसके चोटी हुई यो कथंचित् मेंढ़क की चोटी का अस्तित्व है। अब नास्तित्व की बात सुनिये ! कोई जीव स्त्री था तब चोटी थी अब वही मेंढ़क बना तो अब तो चोटी नही है अब इस काल की अपेक्षा से कहिये कि मेंढ़क के चोटी का नास्तित्व ।

**प्राणीनाम से भारीर वाच्य मानकर भी नास्तित्व का अस्तित्व से अविनाभावी होने के उदाहरण**– यदि देवदत्त आदिक शब्द मंडूक आदिक शब्द उस शरीर के बोधक माने जायें जीव के बोधक न माने क्योंकि व्यवहार भी ऐसा होता है कि देवदत्त उत्पन्न हुआ और देवदत्त नष्ट हुआ तो वह ही देवदत्त बंधके प्रति एक रूप से बंधवान होने से जीव का बोधक होता है। लेकिन यहॉ देवदत्तादि शब्द से शरीर वाच्य मानकर सुनिये ! अब देखिये, कि मेंढ़क का शरीर जब गुजर गया और मेंढ़क का शरीर मिट्टी में मिल गया और वे ही परमाणु किसी वृक्ष में आ गए और वृक्षो के फलों का मानों स्त्री ने आहार किया और उसके ही परमाणु चोटी रूप बन गए तो कह सकते ना कि मेंढ़क की चोटी यदि मंडूक शब्द कहकर जीवका बोध करेंगे तो भी मंडूक की चोटी, यह बात बन जाती है। और, मंडूक शब्द कहकर यदि शरीर का बोध करेंगे तो मंडूक की चोटी, वहॉ भी यह अर्थ बन जाता है। तों यों बंध्या पुत्र अथवा खरगोष के सींग, मनुष्य के सींग, गधा के सींग, कछुवा के रोम, इन सबका भी अस्तित्व कंथचित् सिद्ध कर लिया जाता है। जैसे मान लो आज बंध्या शरीर का धारी जीव है तो इस जन्म में यद्यपि पुत्र नही है तो भी उसके शरीर में पुद्गल के अवयव ऐसे हैं कि जब उसके पुत्र हुआ था तो उस दषा को लेकर बंध्या पुत्र का अस्तित्व और बंध्या दषा में पुत्र का नास्तित्व ये दोनों बातें सिद्ध हो जाती हैं। इस प्रकार खरगोष के सींग यह भी कहा जा सकता । कोई जीव खरगोष था और मरकर गाय हुआ तो अब गाय में सींग आये। जीव है वही। तो खरगोष के सींग कहना यह बात युक्त हो सकती है। और मानों कोई गाय था तब तो वह सींग थे अब

मरकर खरगोष हुआ तो इस समय सींग नही है सो वर्तमान में यह बात युक्त है कि खरगोष के सींग का नास्तित्व हैं, कोई जीव पहिले कछुवा था, अब वह मरकर मेंढ़क कीं पर्याय में आ गया हैं अब उसके रोम हो गए हैं तो कछुवा कहकर लिया पहिले का जीव और रोम हैं इस समय मेढ़क की अवस्था में तो कह सकते  कि यह कछुवा के रोम हैं। कोई कहे कि आकाष के फूल का अस्तित्व कैसे बनाओगे ? तो सुनो ! जैसे जहॉ फूल हैं वहां पेड़ है और वहीं आकाष हैं तो जैसे पेड़ का फूल कहा जा सकता है ऐसे ही आकाष का फूल कहा जायगा क्योंकि पेड़ में भी फूल हैं और आकाष में भी फूल है। तो यह सब कंथचित् दृष्टियों से वर्णन चल रहा हैं। इन दृष्टियों से कहा जा सकता हैं कि जो नही भी हैं उनका भी कंथचित अस्तित्व है। यह सब प्रकरण इस बात पर चल रहा है कि शंकाकार ने यह कहा था कि अस्तित्व नास्तित्व  से अविनाभावी नहीं है, इस कारण में साधर्म वैधर्म्य का दृष्टान्त देना अयुक्त है। तो सिद्ध किया गया कि जितना नास्तित्व है वह आस्तित्व से अविनाभूत है और जितना अस्तित्व हैं यह नास्तित्व से अविनाभूत है। इस ही प्रकरण को लेकर पहिले यह बताया गया था कि जैसे घट घटरूप से है। किन्तु पटरूप से नही है। तो यहां घट का अस्तित्व पट के नास्तित्व से अविनाभूत हो गया। अब यह कहा जा रहा है कि जो  नास्तित्व है वह नास्तित्व भी अस्तित्व का अविनाभूत है। जैसे खरगोष के सींग इनका भी कंथचित अस्तित्व है अथवा कछुवा के रोम, इनका भी कंथचित अस्तित्व हैं, तो यह नास्तित्व अस्तित्व का अविनाभाव है।

**लतापुश्प व आकाशपुश्प के भाब्दों पर कुछ चर्चायें**– अब यहॉ कोई शंका करता है कि जैसे बेला की लता से जो फूल उत्पन्न होता है उसे बेला का फूल कहते हैं, क्योंकि बेला की लता की जड़ो से जल का  आहरण हुआ, उससे उसका शरीर वृद्ध हुआ, उससे पुष्प निकले, पुष्प को आहार मिला, इस उपयोग से उसे यह कह सकते हैं कि यह बेला का फूल है, मगर आकाष का फूल यह कैसे कहा जायगा ? तो कंथचित आकाष के फूल का अस्तित्व बताते है। अतः यह कह रहे हैं कि आकाष भी सब कार्यो मे अवकाष चंकि दे रहा है तो कुछ उपकार उसका भी है उसमें आकाष का कारण है। और, जब पुष्प अपने में उत्पन्न हुआ अथवा अपने में बढ़ा तो उस समय उसको साधन भी दिया गया। इसलिए आकाष का फूल ऐसा व्यवहार भी कह सकते है। शंकाकार यदि कहे कि आकाष की अपेक्षा से फूल तो बिल्कुल भिन्न पदार्थ है इसलिए आकाष का फूल यह व्यवहार नही हो सकता। तो इसका उत्तर यह है कि आकाष की अपेक्षा फूल को कंथचित् भिन्न कहा या सर्वथा ? यदि कथंचित् भिन्न कहते हो तो जैसे आकाष का फूल यह व्यवहार नही करते ऐसे ही बेला का फूल यह भी व्यवहार नही होता क्योंकि बेला लता की अपेक्षा से फूल भी कंथचित भिन्न है और यदि कहा कि सर्वथा भिन्न है तो जैसे सर्वथा फूल को आकाष से भिन्न माना तो सर्वथा आकाष से भिन्न है ही नहीं। देखो ! द्रव्यत्व की अपेक्षा आकाष भी द्रव्य फूल भी द्रव्य उसमें अभेद है तो इस तरह कथंचित् आकाष का फूल ऐसा भी कहा जा सकता है। प्रयोजन यह है कि नास्तित्व अस्तित्व से अविनाभूत है। भले ही कोई पदार्थ अत्यन्ताभावारूप है लेकिन उस अत्यंताभाव वाले पदार्थ का भी किसी न किसी रूप से अस्तित्व का बोध होता ही है। यों नास्तित्व अस्तित्व का अविनाभाव है।

**अस्तिशब्द व वाच्यार्थ से जीवशब्द वाच्यार्थ को भिन्न अथवा अभिन्न मानने में भांकाकार द्वारा आपत्ति का प्रदर्शन**– यहॉ शंकाकार कहता है कि अब प्रकृत बात पर आइये ! जैसे कहा– अस्ति एवं जीवः। इसमें अस्ति मायने कथंचित् है इस वाक्य में अस्ति शब्द का वाच्य तो हुआ सत्त्व और जीव शब्द का वाच्य भी  हुआ कोई अर्थ। सो इन दोनो का वाच्य भिन्न स्वभाव वाला है अथवा अभिन्न स्वभाव वाला है ? यदि दूसरा पक्ष

मानते है कि भिन्न स्वभाव है याने अस्तित्व का वाच्य अर्थ दूसरा है और जीव का वाच्य अर्थ दूसरा है तब तो वाक्य न बना, सम्बन्ध न बना, जीव का असत्त्व भी हो गया। यदि अभिन्नता स्वीकार करते तो एक शब्द कुछ भी बोला अन्य शब्द बोलना व्यर्थ है क्योंकि अस्ति शब्द से भी जीव जाना गया और जीव शब्द से अस्ति जाना गया, अब अस्ति और जीव में किसी प्रकार का भेद न रहा। तो भेद मानते हो तब भी बात नही बनती। अभेद मानते हो तब भी बात नही बनती । अभेद होने से तो समानाधिकरण न बनेगा। विषेषण विषेष्यभाव भी न बनेगा। क्योंकि अभिन्न में ये दोनो बातें नही होती। एक आधार मे रहने वाली बात न बनेगी, क्योकि वे दोनो एक हैं। क्या घट और कलष में समानाधिकरण व विषेष्य विषेषणभाव हो सकता है ? एक मानने से भी न बनेगा, भेद मानने से भी न बनेगा। इसी प्रकार दोनों ही दषाओ मे विषेष्य विषेषण भाव न बनेगा। जब जीवः अस्ति इनमें जीव और अस्ति का परस्पर में सम्बन्ध क्या है ? सो बताओ ! यह एक इस प्रकरण में अंतिक प्रष्न है। सप्तभंगो में से यह प्रथम और द्वितीय भंग का स्वरूप चल रहा है। घट मे स्याद् अस्ति एवं घटः स्याद् नास्ति एव, इसमे सब बातें बतलाकर अन्त में यह पूछा जा रहा है कि अस्ति शब्द से क्या ग्रहण में आया ? और जीव शब्द से क्या ग्रहण में आया ? अगर अस्ति शब्द से भी जीव ग्रहण में आये और जीव शब्द से भी अस्ति ग्रहण में आया ? अगर अस्ति शब्द से भी जीव ग्रहण में आये और जीव शब्द से भी अस्ति ग्रहण में आये तब तो दो प्रयोग करना अनर्थक है और यदि ये भिन्न–भिन्न अर्थ के वाचक है, तो अस्ति किसी अन्य अर्थ को कहता है और जीव किसी अन्य अर्थ को कहता है तब तो जीव असत् होगा, क्योंकि वह अस्ति् नही, इसमें किसी प्रकार का सम्बन्ध भी नही बन सकता। जैसे घट कलष आदिक एक अर्थ के वाचक शब्दो का समानाधिकरण और विषेष्य विषेषण भाव नही होता ऐसे ही जीव और अस्ति शब्द का समानाधिकरण और विषेष्य विषेषण भाव न होगा। और, अस्ति और जीव का यदि एक ही अर्थ है तब दोनो में से किसी एक शब्द का प्रयोग ही करना चाहिए, दोनो का न करना चाहिए क्योंकि एक में ही दूसरे का अर्थ आ गया है।

**अस्तिशब्दवाच्यार्थ से जीव भाब्दवाच्यार्थ को अभिन्न मानने के पक्ष में अन्य दोश का भांकाकार द्वारा प्रतिपादन**– अब अभिन्न स्वभाव के पक्ष में दूसरी बात भी देखिये! कि सम्पूर्ण द्रव्य तथा पर्याय ये सत्त्व के विषय हैं। अर्थात् सब कुछ सत्त्वरूप है, तब अस्ति से तो सत्त्व बोला गया और सत्त्व से अभिन्न स्वभाव जीव मान लिया है तो यह जीव भी सब द्रव्य रूप हो गया और सब पर्यायरूप हो गया। यदि अस्ति और जीव को अभिन्न मानते हो क्योंकि अस्ति से तो सत्ता का बोध हुआ और सत्त्व में समस्त पदार्थ आये और उससे जीव को माना अभिन्न तो जीव सब पदार्थ रूप से हुए अथवा सब पदार्थ जीवरूप बन गया कदाचित् इस दोष के निराकरण के लिए अस्ति शब्द के वाच्य अर्थ सत्त्व से भिन्न ही जीव शब्द का वाच्यार्थ मानते हो तो सत्त्व से भिन्न मानने से जीव का असत्त्व प्राप्त हो गया, क्योंकि अस्ति का वाच्यार्थ हैं सत्ता, फिर जो सत्ता से भिन्न हो वह तो असत् हो गया तो फिर इस अनुमान का प्रयोग भी हो सकता है कि जीव नही है क्योंकि वह अस्ति शब्द के वाच्यार्थ से भिन्न है। अस्ति का वाच्यार्थ है सत्ता और सत्ता से भिन्न हुआ यह जीव, अतएव जीव का सत्त्व सिद्ध न होगा। अतः क्या जीव से अस्ति भिन्न है अथवा अभिन्न है यह प्रष्न बराबर ही खड़ा रह गया है। तथा जैसे अस्तित्व जीव से भिन्न है ऐसे ही समस्त पदार्थो से भी अस्तित्व भिन्न हो गया। फिर तो अस्तित्व का कोई आधार ही न रहा। जैसे खरगोष के सींग के अस्तित्व का आधार नही है शंकाकार कह रहा है कि ऐसा भी नही कह सकते कि जीवादिक से भिन्न भी अस्तित्व समवाय से जीवादिक में रहता है

क्योकि समवाय से अस्तित्व का पदार्थो मे रहने का निराकरण किया गया है। यों अस्ति एवं जीवः इससे जीव और अस्ति इन दोनो का अधिकरण नही बन पाता है।

**अस्तिशब्दवाच्यार्थ से जीव भाब्दवाच्यार्थ का कंथचित् भेद व कथंचित् अभेद रूप से वर्णन में समाधान**— अब शंकाकार की शंका का समाधान देते है कि देखिये ! अस्ति शब्द का जो वाच्य अर्थ है और जीव शब्द से जो वाच्य अर्थ है उन दोनो अर्थो में द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से अभेद है और पर्यायाथिंकनय की अपेक्षा से भी भेद है। तब अनेकान्तवादियों को इस सम्बन्ध में कोई दोष नही दिया जा सकता। अस्ति शब्द के अर्थ और जीव शब्द के अर्थ में भेद और अभेद हैं, यह बात अच्छी तरह से प्रतीत होती है इस बात का आगे स्पष्ट रूप से निरूपण करेंगे ही , किन्तु यहॉ इतना निर्णय कर लेना कि अस्ति जीवः इसमें जो जीव के अस्ति की बात कही गई है वह बराबर प्रतीति सिद्ध है। यहां तक सप्तभंगी में जो प्रथम दो अंग कहे गए है— स्याद अस्ति एव, स्यादनास्ति एव, इन दोनो भंगो का भली प्रकार से वर्णन किया गया। अब आगे तृतीय भंग के सम्बन्ध में निरूपण करेंगे।

**तृतीय भंग के वितरण का उपक्रम**— तीसरा भंग है घट स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति , घट कथंचित् है और कथंचित् नही है। यहां दो धर्मों को घटरूप धर्मी मे क्रम से अर्पित किया गया है। इस तृतीय भंग का अर्थ यह हुआ कि घटरूप एक धर्मी को विषेष्य मानकर उसमें क्रम से अर्पित विधि और प्रतिपेध के प्रकार का बोध उत्पन्न कराया गया है। जिसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि क्रम से अर्पित स्वरूप की अपेक्षा से अस्ति और पररूप की अपेक्षा से नास्ति, इन दोनों बातों मे तन्मय यह घट है ऐसा अर्थ समझना चाहिए। जिस ज्ञान में पदार्थ तो विषेष्य होवे और क्रम से योजित सत्त्व असत्त्व विषेषण होवे ऐसे ज्ञान का जनक वाक्य तृतीय भंग है।

**चतुर्थ भंग के वितरण का उपक्रम**— अब चतुर्थ भंग की बात सुनो। एक साथ स्वरूप और पररूप की विवक्षा बनायी जाय तो उसमें स्याद् अस्ति, स्याद नास्ति इन किन्ही भी शब्दो में नही कहा जा सकता। अतएव वहां स्याद अवक्तव्य घट है यह चौथा भंग बनता है। इस चौथे भंग का भाव यह है कि यहां पदार्थ तो विषेष्य बना और अवक्तव्यपना विषेषण है। ऐसे बोध के जनक वाक्य को चतुर्थ भंग का लक्षण कहा गया है। याने जिस ज्ञान में कोई पदार्थ तो विषेष्य हुआ और अवक्तव्यपना विषेषण हुआ, उस ज्ञान को उत्पन्न करने वाला वाक्य चतुर्थ भंग है इसी प्रकार कथंचित् अवक्तव्यपने का आश्रयभूत घट है इस चतुर्थ भंग से यह ज्ञान होता है। सीधे शब्दो में इसे यों कह लीजिए कि जब द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से यह बताया गया है कि घट है तो पर्यायार्थिक अथवा भेददृष्टि से पररूप की अपेक्षा से यह बताया गया कि घट कथंचित् नही है तो इन दो बातों को सुनकर कोई यह जिज्ञासा करे तो वास्तव में बात है क्या, एक शब्द में बताओ ? तो वहां उत्तर आयगा कि स्यात् अवक्तव्य है घट।

**घटकी अवक्तव्यता के सम्बन्ध में भांका और समाधान**— अब यहॉ शंकाकार कहता है कि घट को अवक्तव्य कैसे कह दिया ? क्योंकि किसी न किसी रीति से सभी पदार्थ कहे ही जाते है। घट अवक्तव्य है, चलो इस रूप से घटकी ही बात कही। तो अवक्तव्य कैसे हो गया? इस शंका के उत्तर में कहते है सभी शब्द एक काल में ही प्रधानता से सत्त्व और असत्त्व दोनों का प्रतिपादन नही कर सकते। शब्द में एक ऐसी शक्ति ही नही है कि एक काल में प्रधानता से सत्त्व और प्रधानता से असत्त्व दोनो को प्रकट कर दे। एक काल की प्रधानता से एक ही पदार्थ का शब्द विषय बना है इसलिए एक पदार्थ की शक्ति एक ही पदार्थ का विषय करने वाला सिद्ध होता है। यद्यपि कोई शब्द ऐसे भी तो होते कि

जिनके अर्थ कई हों। जैसे सैंधव शब्द के दो अर्थ है– नमक और घोड़ा। तथापि एक काल में एक वातावरण में एक ही अर्थ होगा, किसी पुरूष ने जैसे भोजन के समय यह कहा कि सैंधव लाओ तो उस समय तो सैंधव का अर्थ नमक ही है, न कि नमक और घोड़ा दोनो अर्थ बन गए। यदि वक्ता को दोनो चीजो की जरूरत होती तो वहां केवल सैंधव का प्रयोग न करके सैंधव लाओ और घोड़ा लाओ। दोनो को लाओ। ऐसा कहता, मतलब यह है कि एक बार उच्चारण किया हुआ शब्द एक ही अर्थ को ध्वनित करता है तो शब्द में ऐसी सामर्थ्य नही है कि एक ही काल में वह सत्त्व और असत्त्व दोनो को प्रधानता से वर्णन कर दे। जैसे अस्ति, यह पद सत्तारूप अर्थ को ही कहता है न कि असत्त्वरूप अर्थ को। ऐसे ही नास्ति यह पद असत्त्व रूप अर्थ को ही जताता है न कि सत्त्व रूप अर्थ को। यदि अस्ति आदिक में से एक ही पद सत्त्व और असत्त्व दोनो का वाचक बन जाय तब फिर दोनों का प्रयोग करने की आवष्यकता ही क्या है? एक का ही प्रयोग करे एक का ना करें। जब एक ही पद से सत्त्व को जान लिया , असत्त्व को भी जान लिया तो वहां दोनो के निरूपण की आवष्यकता क्या हैं ? पर आवष्यकता है उन दोनो से जुदे –जुदे अर्थ का लोगो का बोध होता है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि एक शब्द व पद एक काल में प्रधानता से एक ही अर्थ को कह सकता है। तो जब शब्दो में यह शक्ति है वह ही काल में बतायेगा। तो कोई शब्द ऐसा नही होता कि जो सत्त्व और असत्त्व दोनो का प्रधानता से एक काल में वर्णन कर दे। इसी कारण स्याद अवक्तव्य नाम का चतुर्थ भंग होना ही पड़ा।

**एकपदकी एकार्थवाचकता के नियम में भांका और उसका समाधान**–अब शंकाकार कहता है कि सभी एक ही अर्थ के वाचक होते हैं अनेक अर्थ के वाचक होते है, अनेक अर्थ के नहीं। यदि ऐसा नियम मान लोगे तो नाना अर्थों के वाचक जो शब्द हैं उनका फिर उच्छेद हो जायगा। फिर तो कोई शब्द भी ऐसा न कहलायेगा कि जो नाना अर्थो का बोध कराये लेकिन , कोष मे ऐसे अनेक शब्द हैं जो अनेक अर्थो के बोधक होते है। इसके उत्तर में कहते हैं कि ऐसी भी शंका न कीजिए ! जहॉ कोई शब्द जितने अनेक अर्थो का बोधक है तो वहॉ उतने ही शब्द समझ लेना चाहिए। जैसे कि गौ शब्द को पषु , पृथ्वी , किरण , स्वर्ग आदिक अनेक अर्थो के वाचक रूप से बताया गया है, तो समझिए कि वह गौ शब्द भी यथार्थ में अनेक ही है लेकिन एक प्रकार का उच्चारण है उनका, इस समानता से उनके एकत्व का व्यवहार करते है लोक में। मतलब गौ एक सा उच्चारण हो रहा, मगर जितने अर्थो का यह प्रतिपाद है उतनी तरह के विष्लेषणों से सहित शब्द है। यदि ऐसा न माना जाय तब तो सम्पूर्ण जगत एक ही शब्द से वाच्य हो जायगा। फिर अनेक शब्दो का प्रयोग करना ही व्यर्थ हो जायगा। शब्द के नाते से सब शब्द एक ही है। शब्द समस्त पदार्थो का जनक होगा। फिर किसी शब्द से कुछ भी कह दिया जाय, कोई नियम न रह पायेगा। और भी देखिये ! समभिरूढनय की अपेक्षा से जैसे शब्द भेद से अर्थ का भेद माना जा रहा है – शुक्र, इंद्र व पुरन्दर ये तीन शब्द इन्द्र के पर्यायवाची शब्द है चूॅकि तीन शब्द हैं तो उस इन्द्र में भी तीन अर्थ रख दिए गए। ऐसे ही अर्थ के भेद से शब्दभेद भी सिद्ध है।जिस शब्द के अर्थ अनेक हैं उन अर्थो के भेद से उस शब्द में अनेक भेद मानने होंगे। यदि ऐसा न माना जाय अर्थात अर्थ के भेद होने पर भी शब्द का भेद न माना जाये तो वाच्य वाचक का जो नियम है वह नियम न रह पायगा। याने शब्द तो वाचक है और जो पदार्थ कहा गया वह वाच्य है। जैसे गो शब्द में ग और ओ ये दो अक्षर है। यह गौ पद गाय पषु अर्थ को कहता है तो दूसरे पृथ्वी आदिक अर्थरूप वाच्य का वाचक दूसरा है गो शब्द समझा जाता है। अथवा वातावरण और प्रकरण के भेद से एक समान उच्चारण में आया हुआ भी शब्द भिन्न रूप से परख लिया जाता है। यह सिद्ध हुआ

कि एक शब्द एक साथ प्रधानता से दो अर्थो का प्रतिपादक नही हो सकता, इस कारण स्याद अवक्तव्य ऐसा भंग बोलना युक्त है।

**एक पक्ष की एकार्थवाचकता की भांति एक वाक्य की एकार्थविशयता का निरूपण**— जिस प्रकार एक ही अर्थ का वाचक अनेक अर्थो का नही इसी तरह एक वाक्य एक साथ अनेक अर्थो का विषय करने वाला नही होता। जैसे कहा स्याद अस्ति नास्ति एव घटः अर्थात् स्वरूप चतुष्टय से तो अस्तिव और पररूप चतुष्टय से नास्तित्व इन दोनो धर्मों का क्रम से विषय किया है और फिर उनका उपचार से एकत्व स्वीकार किया है। याने दो धर्मो की बात क्रम से कहकर उनको किसी एक सीमा में एक संख्या का रूप देना यह उपचार से स्वीकार किया है। अथवा उनमें क्रम से विवक्षित जो दोनो का प्राधान्य है वह एक वाच्य है। वह ही अस्ति और नास्ति शब्द से कहा गया है। उस प्रकार के वाक्य एक अर्थ के कहने वाले होते है। यो इनमें एक वाक्यपना हैं। सभी वाक्य एक क्रिया प्रधान होने से एक अर्थ को ही विषय किया करते है, प्रत्येक वाक्य में क्रिया एक ही होती है। क्रिया के अनुसार वाक्यो की संख्या कहलाती है। तो एक क्रिया होने से एक ही वाक्य कहलाता है। और क्रिया में बताया गया है कोई काम । उस दृष्टि से बात एक वाक्य में एक ही सम्भव हुई। यों शब्द में एक अर्थ को ही समझाने की शक्ति सिद्ध होती है। शब्दो में किसको बताने का सामर्थ्य है उसका उल्लंघन करके अन्य अर्थ के प्रतिबोध में उनकी प्रवृत्ति नही हो सकती।

**अवक्तव्य भंग की सकारण उपपत्ति का वर्णन**— अब यह निर्णय करने के पष्चात् कि शब्द एक काल में एक ही अर्थ का वाचक होता है, निर्णय करे कि इस तृतीय भंग का अर्थ क्या हुआ? इसमें जो अस्ति शब्द हैं उसका सामर्थ्य तो सत्त्व मात्र कहने में है। असत्त्वादिक अनेक धर्मो के कहने की सामर्थ्य नही हैं। इसी प्रकार नास्ति जो शब्द कहा गया हैं उसके असत्त्व मात्र की वचन में सामर्थ्य है सत्त्वादिक अनेक धर्मो के कहने में नास्ति का सामर्थ्य नही हैं। फिर इसमें जुड़ा हुआ है स्यात् शब्द। स्यात् निपात शब्द है। अस धातु के लिंग लकार में स्यात शब्द अव्यय बनाकर निपात शब्द बनाया गया है। जिस स्यात् शब्द का अर्थ किया है – अनेकान्त सामान्य। तो वह स्यात् कहने में ही अपनी सामर्थ्य रखता है। स्यात् शब्द न तो एकान्त का वाचक हैं और न ही अनेकान्त विषेष का। स्यात् शब्द कहने से सामान्यतया अनेकान्त की प्रसिद्धि है। अनेकान्त में जिस किसी प्रसंग की विषेषता उत्पन्न करने के लिए विषेष अनेकान्त बताना होता है सो अन्य श‌ द उसके साथ लेना होता है तो स्यात् शब्द अनेकान्त सामान्य का वाचक है। वह न तो एकान्त का वाचक हैं और न अनेकान्त विषेष का स्यात् शब्द निपात है और वह वाचक और द्योतक भी है। निपात शब्द द्योतक तो होते ही है पर कोई निपातवाचक भी होते है तो स्यात् शब्द हैं अनेकान्त सामान्य का वाचक । अब द्योतकपने की दृष्टि से स्यात् शब्द की सार्थकता समझे तो समझिये। यह स्यात् शब्द अनेकान्त की सूचना में अपनी सामर्थ्य रखता है। अन्य बातो की सूचना में इसकी सामर्थ्य नही है। तो इस तरह शब्दो का प्रयोग है। वे शब्द जिसके वाचक है उसकी सूचना में ही सामर्थ्य रखते है। उसका उल्लघंन करके शब्द का प्रयोग अन्य जगह में लगे, ऐसा विद्वानो की गोष्ठी में स्वीकार किया गया है। यहॉ तक यह बात सिद्ध हुई कि कोई भी शब्द अपने एक अर्थ का ही वाचक है। तब तीसरे भंग में स्याद अस्ति नास्ति कहा गया है। तो दो धर्मो को क्रम से अर्पित किया गया है। इन दो धर्मो का वाचक कोई एक शब्द नही हो सकता इसलिए चौथे धर्म में अवक्तव्य बताया गया है।

**शंकाकार द्वारा एक शब्द की नानार्थवाचकता दिखाकर अवक्तव्य भंग की अनावश्यकता का प्रतिपादन** – इस प्रसंग में शंकाकार कहता है कि भाई, संकेत के

अनुसार ही तो शब्दो की प्रवृत्ति होती है। अब एक काल में सत्त्व और असत्त्व दोनो ही अर्थो का प्रतिपादक कोई शब्द बनें, ऐसे संकेत का निर्णय कर ले, तो देखो ! उस संकेत से दोनो ही अर्थो का बोध हो जायगा ना ? जैसे कि व्याकरण शास्त्रों मे एक सन् संबा बताई गई हैं। कृदन्त के प्रकरण में जहॉ शतृ और शानच दो प्रत्यय का विधान बताया है तो दोनो प्रत्ययों का संकेत एक सन् शब्द से किया गया है। इससे जाहिर होता है कि एक शब्द कई अर्थो का संकेत कर सकने वाला भी माना गया है तब इसी प्रकार एक शब्द कोई सोच लीजिए जैसा कि जो स्याद् अस्ति और स्याद् नास्ति इन दोनो का बोधक हो जायगा। शतृ और शानच में जो दो प्रत्यय होते है तो यों समझिये कि परस्मैपदी धातु मे शतृ प्रत्यय जुड़ जाता है, जिससे भवन गच्छन आदिक रूप बनते है और आत्मनेपदी धातु मे शानच् प्रत्यय जुड जाता है, जिससे एधमान , वर्द्धमान आदिक शब्द बनते हैं अर्थ दोनो प्रत्ययो का का एक है और दोनो प्रत्ययों का बोधक एक सन् शब्द बताया गया है। तो ऐसी पद्धति है कि कई अर्थो का संकेत करने वाला एक  शब्द भी हुआ करता है। तो स्याद् अस्ति नास्ति इन दोनो धर्मो का प्रतिपादक कोई एक शब्द का संकेत कर लीजिए। तब यह बात न रही कि एक शब्द केवल एक ही अर्थ का वाचक हुआ करता है। और भी देखिये ! चन्द्र और सूर्य दोनो का एक साथ बोध होवे उसके लिए एक संकेत शब्द दिया गया है पुष्पवन्त। पुष्पवन्त शब्द से सूर्य और चन्द्रमा इन दोनो का एक साथ बोध होता है। तो उससे भी यह जाहिर होता है कि एक शब्द नाना अर्थो का वाचक हो सकता है। तब यह कहना युक्त नही है कि शब्द चूंकि एक ही अर्थ को कहते हैं अतएव स्याद् अस्ति, स्यादनास्ति, इन दोनो का एक साथ शब्द से प्रतिपादन न हो सकने से अवक्तव्य नाम का चौथा अंग बनाया गया है।

**एक शब्द की नानार्थ प्रतिपादनाशक्ति होने से अवक्तव्य भंग की आवश्यकता का सयुक्तिक विवरण**—अब उक्त शंका के समाधान में कहते है कि देखिये ! ऐसा संकेत भी बनता है, जो अनेक अर्थो को बोध कराये , लेकिन वह भी वाक्य वाचक शब्द के अनुसार ही बनता है । वाच्य वाचक शब्द का उल्लघंन करके कहीं भी संकेत की प्रवृत्ति नही देखी गई। इस बात को इस दृष्टान्त से समझिए कि जैसे लोहे की सलाई काठ के छेदने और भेदने की सामर्थ्य रखती है, ऐसी वह लोहसलाई बज्र के छेदने भेदने की सामर्थ्य नही रखती तब यह सिद्ध हुआ कि एक लोह काठ को छेदने भेदने की शक्ति रखता है उसमें बज्र के लेखने काटने की शक्ति नही है। और जैसे उस लोह सलाई मे बज्र के लेखने की अषक्ति है उस तरह काठ के छेदन भेदन की अषक्ति नही है। इस तरह से भी देखो कि जैसे काष्ठ में यह सामर्थ्य नही है कि वह लोह लेखनी द्वारा लिखित हो जाय इस तरह की बज्र में सामर्थ्य नही है कि वह लोह लेखनी द्वारा लिखित हो जाय और , जैसे बज्र में लोह द्वारा लेख्य होने की अषक्ति है उस तरह काष्ठ मे लोह लेखनी द्वारा लिखा जाने छेदे भेदे जाने की अषक्ति नही है, इसी तरह यहॉ भी समझिये कि शब्द की  भी एक बार एक ही अर्थ मे प्रतिपादन करने की शक्ति है। अनेक अर्थो के प्रतिपादन की एक शब्द में शक्ति नही हैं।  तो यहॉ तक यह निष्चय हुआ कि एक शब्द एक ही अर्थ का वाचक है अनेक अर्थो का नही। और इसी तरह एक अर्थ एक शब्द  द्वारा वाच्य है उस प्रत्येक अर्थ में भी एक पद द्वारा वाच्य होने की शक्ति है। अनेक अर्थो के वाच्य होने की शक्ति नही है कि एक पद द्वारा अनेक अर्थ वाच्य हो जायें । अब जो एक उदाहरण दिया था पुष्पवंत शब्द का तो पुष्पवंत शब्द क्रम से दो अर्थो के प्रतिपादन की सामर्थ्य रखता है। अतएव इस उदाहरण से प्रकृत बात में कोई दोष नही दिया जा सकता। एक शब्द एक ही अर्थ का बोधक होता हैं और चूँकि धर्म यहॉ मूल मे दो बताये गये अस्ति और नास्ति । तो

इन दो धर्मो का प्रतिपादन एक शब्द द्वारा नही हो सकता हैं। अतएव स्याद् अवक्तव्य नाम का चौथा भंग बना है।

**एक शब्द द्वारा अनेकार्थ का प्रतिपादन होने की पुनः भांका व उसका समाधान**— अब शंकाकार यहॉ कहता है कि देखिये ! सेना, वन , युद्ध माला, पानक , ग्राम , नगर आदिक शब्द तो एक अर्थ के प्रतिपादन करने वाले देखे गये। जब सेना कहा तो उसमें हाथी, घोड़ा , प्यादे आदिक का समूह आ गया । तो एक सेना शब्द न कितने ही अर्थो का प्रतिपादन किया। वन कहा तो वन में जितने प्रकार के वृक्ष है, जितने प्रकार के नाले, नदी , पहाड़ आदि है, जितने प्रकार के पषु , पक्षी हैं उन सब का बोध हो जाता है। तो एक शब्द अनेक अर्थो का प्रतिपादक हो गया। ऐसे ही पानक (षर्बत ) कहा तो उसमें इलायची, शक्कर आदिक अनेक चीजे पड़ती है। तो पानक , यह एक शब्द कह देने से उन अनेक रूपो का बोध हो गया। नगर कह देने से कितने ही मकान, कितने ही मनुष्य सभी का बोध हो जाता है । तो एक शब्द मे अनेक अर्थो का प्रतिपादन करने का सामर्थ्य देखा गया है ना ? इसके उत्तर मे कहते है कि भाई, वहॉ भी सभी शब्द एक अर्थ का प्रतिपादन करते है। सेना शब्द के द्वारा हाथी, घोडे, प्यादे इन सबका समूहरूप कोई एक ही अर्थ कहा गया है। सेना ने अनेक अर्थ को नही कहा किन्तु सेना शब्द अन्य अनेक शब्दो का समूहरूप एक अर्थ हो जाता है। वन शब्द के कहने से कहीं अनेक वृक्ष नही कहे गये, किन्तु अनेक वृक्षो का समूहरूप एक पदार्थ कहा गया है। माला शब्द से अनेक फूलो को नही बताया गया है, माला अनेक फूलो का वाचक नही है। किन्तु अनेक फूलों का समूहरूप जो एक पदार्थ है उसका वाचक है। पानक कहा गया तो वह नाना अर्थो का वाचक नही है किन्तु इलायची , शक्कर आदिक बहुत से पदार्थो के समूहरूप एक अर्थ का वाचक है। यों ही नगर शब्द ने भी अनेक अर्थो को नही बताया, किन्तु मकान आदि के समूहरूप एक ही अर्थ को बताया है। तो इन शब्दो को पेष करके यह कहना कि देखो एक शब्द अनेक अर्थो का प्रतिपादक है सो बात अयुक्त है। इन शब्दो के कहने पर भी प्रत्येक शब्द से एक –एक अर्थ का प्रतिपादन हुआ है। तो यों सिद्ध हुआ कि शब्द एक ही अर्थ का प्रतिपादक होता है अतएव स्याद् अस्ति , स्यादनास्ति , इन दो के वाच्य का प्रतिपादक शब्द न होने से या इसका एक साथ कथन ना करना अषक्य होने से स्याद अवक्तव्य नाम का चतुर्थ भंग बना है। तृतीया भंग और चतुर्थ भंग में यह अन्तर है कि तृतीय भंग तो उन दो धर्मो का क्रम से अर्पण करके बना है और अवक्तव्य में वे दोनो एक साथ अर्पित होकर अवक्तव्य हो सका तो यो क्रमयोजित दो धर्मोरूप तृतीय भंग हुआ और सहयोजित दो धर्मोरूप यह चतुर्थ भंग हुआ है।

**वृक्षो वृक्षाः आदि पदो से अनेक का बोध होने से रूप भांका व समाधान**— इस प्रसंग में शंकाकार कहता है कि यदि किसी प्रकार से कह दिया जाय कि एक शब्द एक ही अर्थ का प्रतिपादन करता है तो जब "वृक्षो" यह पद बोला गया तो दो वृक्षो का बोधक कैसे बन गया ? अथवा वृक्षाः यह पद बोला गया तो यह बहुत से वृक्षो का बोधक कैसे बन जायेगा ? वृक्षौं शब्द दो वचन है जिससे दो वृक्षो का बोध होता है तो शब्द तो यहॉ एक है और अर्थ बताया उसने दो वृक्ष, इसी प्रकार वृक्षाः यह बहुवचनान्त शब्द है तो यहा शब्द तो एक ही है और अर्थ कराया दो चार आदिक अनेक वृक्ष तो देखो एक शब्द द्वारा अनेक अर्थ कहे गये ना ? इस शंका के समाधान मे कहते हैं कि देखिये व्याकरण शास्त्र में दो पद्धतियां अपनाई गई है एक तो पाणिनी आदि के व्याकरण में दूसरा जैनेन्द्र व्याकरण में। पाणिनी के व्याकरण से एक शेष आरम्भ की बात कही गई है। जैसे कि दो वृक्ष कहे है तो दो वृक्ष सबसे पहिले लिखे जायेंगे उसके बाद लिंग वचन में औ प्रत्यय

आया। द्विवचन के औ प्रत्यय आने पर शेष वृक्ष शब्द हटा दिया और एक शब्द रह गया। तो वृक्षाः ऐसा कहने पर उसमें वृक्ष शब्द न समझना उसमें कई वृक्ष शब्द गर्भित है। जो सप्त शब्द हो गए और बचा हुआ शब्द है वे दोनो एक ही समान है । और जिनका अर्थ वृक्ष ही वृक्ष है। तो अर्थ भी समान है इसलिए एकत्व के विचार करने से एक शब्द के प्रयोग की उपपत्ति बन गई , पर वहां वस्तुतः अनेक वृक्ष शब्द लिखे गए। अब जैन व्याकरण की दृष्टि से निरखें तो जितने शब्द होते है वे सब स्वाभाविक उसे अपना ही अर्थ बोलते है। तो वृक्ष शब्द मे जब द्विवचन का प्रयोग किया गया तो उसका अर्थ तो एक ही अर्थ है वृक्ष। पर द्विवचन लगने से द्वित्व का अर्थ हुआ। तो यों प्रकृति और प्रत्यय ये दो होने से दो तरह का बोध हुआ। प्रत्यय का जो अर्थ है वह प्रकृति के अर्थ में मिल जाता है। तब अर्थ यह हुआ द्वित्व विषिष्ट वृक्ष । वृक्ष अर्थ में वृक्ष ही है पर जब उसमें द्विवचन शब्द का प्रत्यय लगा दिया तो उसका अर्थ हुआ दुत्व सहित वृक्ष। इसी प्रकार, यह वृक्षा, यह बहुवचन का प्रयोग है तो वहां अर्थ यह कि बहुत्व विषिष्ट वृक्ष। प्रकृति का जो शब्द है उसने तो एक ही अर्थ बताया, पर उसमें जो प्रत्यय मे गर्भित हुआ है तो दुत्व या बहुत्व अर्थ हो गया। तब शब्द का अर्थ हुआ द्वित्व विषिष्ट वृक्ष। अथवा बहुत विषिष्ट वृक्ष। तो मतलब यह समझना चाहिए कि पाणिनीय व्याकरण के अनुसार एक शब्द जो शेष रह गया है वह लुप्त हुए शब्द अनेक अर्थो का बोधक होता है। और, जैन व्याकरण के अनुसार चूंकि प्रत्यय से सहित यह निकला कि चूंकि एक शब्द एक ही अर्थ का बोधक होता है अतएव किसी शब्द में यह सामर्थ्य नही है कि एक साथ दो अर्थ कह सके। इसी कारण इस दृष्टि में स्यात अवक्तव्य नाम के चतुर्थ भंग की उत्पत्ति होती है।

**प्रत्ययवान् प्रकृति भाब्द से भी एक भाब्द की एकार्थवाचकता के नियम का अभंग—**

अब वृक्षौ, वृक्षाः इन शब्दो के सम्बन्ध मे अन्य बातें भी स्पष्ट रूप से समझ लीजिए ! जैनेन्द्र व्याकरण के अनुसार द्विवचन आदिक जो शब्द है वे शब्द स्वभाव से ही द्वित्व और बहुत्व संख्या सहित वृक्षादिक के बोधक है, यह बात यहां सिद्ध की गई है। तो अब अनेक धर्मो से सहित अर्थ इस वृक्षाः शब्द ने नही बताया, क्योकि वृक्षत्व रूप धर्म तो एक ही है। केवल प्रत्यय सहित वृक्षाः शब्द ने उन समान समान वृक्षो की संख्या जाहिर की है। धर्म तो एक वृक्षत्व ही है चाहे बहुत वृक्ष कहे गए तब उन वृक्षो में वृक्षत्वरूप धर्म हैं और उस धर्म से सहित एक वृक्षत्व धर्म का ही भान हुआ। कहीं द्विवचन या बहुवचन लग जाने से अन्य —अन्य धर्मो से वृक्ष का भान नही होता। इस तरह से अस्ति आदिक पर से अस्तित्वरूप धर्म से सहित पदार्थ का ही ज्ञान एक काल में सम्भव हैं। और नास्तित्व शब्द से नास्तित्व धर्म से सहित पदार्थ का ही ज्ञान एक काल में संभव है। अतएव कोई शब्द ऐसा नही है जो दो अर्थो का एक साथ प्रतिपादन कर दें, इसी कारण स्याद् अवक्तव्य नामक चौथा भंग होता ही है।

**प्रत्ययवान् प्रकृतिभाब्द के प्रयोग मे एक भाब्द से अनेक धर्म का परिज्ञान होने की भांका—** अब शंकाकार यहॉ कहता है कि देखिये ! जब वृक्षाः शब्द बोला तो यहॉ हुआ क्या कि जस प्रत्यय सहित प्रकृति वृक्ष है, याने प्रकृति शब्द तो है वृक्ष और उसमें प्रत्यय लगा है जस, तो सुवन्त और तिडन्त शब्द की पदसंज्ञा होती है ऐसा सभी व्याकरणों मे बताया गया है। तो वृक्षाः बहुवचनान्त शब्द से जो वृक्षत्वरूप धर्म जाना गया प्रत्यय जस सहित , सो वृक्षत्व धर्म से सहित वृक्षरूप अर्थ का ज्ञान हुआ ना, तब यह सिद्ध हो गया "कि एक पद ने अनेक धर्मसहित अर्थ का ज्ञान कराया। देखो! जहॉ बोला गया वृक्षाः मे दो शब्द पडे हुए है। प्रकृति शब्द और प्रत्यय शब्द। प्रकृति तो है वृक्ष और प्रत्यय है जस तो

प्रत्यय का अर्थ है बहुत और प्रकृति का अर्थ है वृक्ष तो अब वृक्षत्व व बहुत्व ये दो इसके धर्म हुए ना ? और शब्द बोला गया एक वृक्षाः । तो देखो ! वृक्षाः इस शब्द ने दो धर्मो सहित पदार्थ का बोध कराया तब यह नियम तो न रहा कि पद एक ही अर्थ का बोधक होता है। देखो ! समंतभद्राचार्य ने भी कहा है कि "अनेकमेकं च पदस्य वाच्यं वृक्षा इति प्रत्ययवत्प्रकृत्या " ऐसा वृहद स्वंयभूमरण स्तोत्र मे बताया है कि एक तथा अनेक अर्थ भी पद के वाच्य होते है। जैसे– वृक्षाः यहां प्रत्यय सहित वृक्षरूप प्रकृति से बहु संख्या वाले वृक्षरूप अर्थ का ज्ञान हुआ। इस प्रमाण से यह भी समझ लेना चाहिए कि एक पद अनेक अर्थो का भी बोधक हो जाता है।

**प्रत्ययवान् प्रकृतिभाब्द के प्रयोग में दो धर्मो का प्रधानता व गौणत्वं से परिज्ञान होने से एकभाब्द की एकार्थ वाचकता के नियम का अभंग रूप समाधान–** अब उक्त शंका के समाधान में कहते है कि जो कुछ कहा है वह यद्यपि किसी दृष्टि से यथार्थ है परन्तु एक पद प्रधानता से एक ही काल मे अनेक धर्म से सहित पदार्थ का बोधक नही होता। यह नियम भी अकाट्य है। देखिये। इस ही प्रकृति प्रसंग मे कि वृक्षाः कहने में जो प्रकृति शब्द है वृक्ष, उसने तो एक वृक्षत्वरूप जाति से सहित वृक्ष का ही ज्ञान कराया। या कहो वृक्षत्वरूप धर्म से सहित वृक्ष पदार्थ का ही ज्ञान कराया। इसके पष्चात लिंग और संख्या का शब्द जन्य ज्ञान हुआ। इसमें बहुवचन शब्द लगा है, इससे बहुत वृक्ष है ऐसा बहुत संख्या का बोध होता है। तो यहॉ भी यद्यपि प्रकृति और प्रत्यय दो शब्द जुडें हुए है और दो शब्द परस्पर मिल गए है। प्रत्यय सहित प्रकृति है लेकिन बोलने के क्रम से भी देख सकते है कि जिस समय वृक्षाः बोला तो पहिले वृक्ष प्रकृति के अर्थ का ज्ञान हुआ । उससे तो जाना गया वृक्षत्व धर्म सहित वृक्ष । पष्चात प्रत्यय का बोध हुआ । उससे जानी गयी बहुत्व संख्या यों प्रत्यय वाली प्रकृति के द्वारा भी उस शब्द के दो अर्थ विदित हुए। तब वहॉ यह नही कहा जा सकता कि देखो ! एक पद ने अनेक अर्थो का बोध करा दिया। इसमें भी प्रमाण देखिये । सिंद्वान्त में भी कहा है स्वार्थमभिधाय शब्दो निरपेक्षो द्रव्यमाह समवेतम्। समवेतस्य तु बचले लिंग संख्या विभक्ति युक्त सन्। सबसे पहिले तो शब्द अर्थ को कहते है। शब्द में जो प्रकृति है जिस प्रकृति के बाद प्रत्यय मिलाया गया। पहिले तो उस प्रकृति ने अपने अर्थ को बताया जैसे वह निरपेक्ष शब्द होता और जो कुछ बताता गया। अब उसमें वचनों को मिला दिया गया । विभक्ति मिल जाने के कारण अब वचन के अर्थ का उसने बोध किया। तो वृक्षाः इस शब्द के बोलने से क्रम ज्ञान यह निकला कि पहिले तो वृक्ष शब्द ने वृक्षत्व जातियुक्त वृक्ष अर्थ कहा, फिर प्रत्यय लगने से उस प्रत्यय वाले अर्थ का उसने बोध कराया । तो बोध में भी क्रम है और यहॉ जोड़ में भी क्रम है। अतः यह नियम अवाधित है कि एक पद एक काल मे एक ही अर्थ का ज्ञान कराता है। ऐसा जब सिद्धान्त बन गया तो वृक्षाः इस पद से वृक्षत्व धर्म से अविच्छिन पदार्थ का बोध तो प्रधानता से हुआ और उसमे जो लिंग है अथवा वचनबोधक प्रत्यय लगा है उससे बहुत्व संख्या अथवा लिंग का ज्ञान गौणरूप से हुआ , इस कारण एक पद एक समय की प्रधानता से एक ही धर्म सहित पदार्थ का ज्ञान सभी जगह कराता है इस सिद्धान्त में किसी भी प्रकार का दोष नही है।

**एक पद द्वारा एक अर्थ ही वाच्य होना मानने पर अनेकान्त की सिद्धि के अभाव की भांका व उसका समाधान–** अब शंकाकार यहॉ कहता है कि यदि एक पद अथवा वाक्य से प्रधानता से अनेक धर्म सहित वस्तु का बोध नही होता, यह पक्ष मानते हो अथवा कहो कि एक पद या वाक्य से अनेक धर्मसहित वस्तु का बोध होता है यह स्वीकार नही करते हो तब यह बतलाओ कि प्रमाण वाक्य अनेक धर्मस्वरूप वस्तु का प्रकाषक कैसे

हो सकता है? जब यही कहा गया कि एक पद एक ही अर्थ का बोधक होता है, तो फिर अनेकान्त कैसे बनेगा ? अनेकान्त में तो अनेक धर्मस्वरूप वस्तु का प्रकाष होता है और यहॉ आग्रह कर रहे हो यह कि एक पद एक ही धर्मसहित वस्तु का बोधक होता है। तब तो अनेकान्त की सिद्धि न हो सकेगी ? उक्त शंका के उत्तर में कहते है कि देखिये ! काल, आत्मा स्वरूप अर्थ आदिक के द्वारा द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से अभेदोपचार किया जाता है तब उस प्रमाण वाक्य से उस सम्पूर्ण वस्तु का कथन होता है, यह बात तो पहिले प्रसंग मे अच्छी तरह बता दी गयी है।

**अवक्तव्य भाब्द से उभयधर्मात्मकको बाच्यता सिद्ध करने के लिए द्वन्द्व समास की साक्षिता का भांकाकार द्वारा कथन व उसका समाधान–** अब शंकाकार यहॉ कहता है कि 'सत्त्वासत्त्वे' इस प्रकार का यदि द्वन्द्व समास में पद कर लिया जाय तो यह पद सत्त्व और असत्त्व दोनो का प्रधानता से बोधक बन जायेगा, कारण यह है कि द्वन्द्व समास मे दोनो ही पदार्थ होते है। व्याकरण में कहा भी है– 'उभयपदार्थ प्रधानो द्वन्द्वः' द्वन्द्व समास मे जितने पद आये हुए हो वे सभी के सभी पदप्रधान होते है। तो इस तरह द्वन्द्व समास में पद के द्वारा जब सभी का प्रधान कथन हो जाता है तब सदसत्त्वात्मक वस्तु को अवाच्य कैसे कहा जायेगा याने वस्तु ही तो बताना है उसे द्वन्द्व समास द्वारा कहा जायगा, फिर अवक्तव्य कैसे कह रहे हो ? इस शंका के समाधान में कहते है कि देखिये! द्वन्द्व समास भी कर दिया जाय, लेकिन वहॉ भी दो अर्थो का परिज्ञान क्रम से ही कराने में वह समर्थ है। द्वन्द्व समास होने पर जितने शब्दो का समास किया गया है। उन शब्दो का अर्थ क्रम से ही बताने मे वह द्वन्द्व समास समर्थ हो सकता है। और दूसरी बात यह है कि इसी कारण द्वन्द्व समास होने पर भी किसी का प्रधानता से कथन, किसी का गौणरूप से कथन सम्भव है याने वहॉ भी सत्त्व प्रधानता से और गौणता से हुआ करता है। तभी तो यह बताया गया है द्वन्द्व समास में जहॉ कि अनेक पदो का समास होता है और जहॉ यह विवाद होता है कि किस पद को पहिले रखना चाहिए ? तो वहॉ निर्णय होता है कि अभ्यर्हितं पूर्व मायने जो पद पूज्य हो, महत्वषाली हो उसका पहिले स्थापन किया जाता है। तो प्रधानभूत अर्थ का शब्द पहिले रख देना यह बात तब ही संगत है जब कि द्वन्द्व समास

में यह निर्णय है कि समस्त पदों का कथन और बोध क्रम से होता है और किसी का प्रधानता से व किसी का गौणता से । भले ही कथन है उसमें प्रधानता से , लेकिन मान भी लो कि द्वन्द्व समास में दोनो पदों का बोध प्रधानता से होता है। हो गया मानो तो भी प्रधानता से अस्तित्व और नास्तित्व दोनो धर्मो से सहित धर्मो का प्रतिपादन करने वाला शब्द नही है, इसी कारण अवक्तव्यपना तो ज्यों का त्यों निर्वाध बना।

**द्वन्द्वगर्भित तत्पुरूश समास की साक्षिता में भी अवक्तव्य भाब्द से उभयात्मक पदार्थवाच्यता की अनुद्भूति–** अब शंकाकार कहता है कि देखिये ! एक वाक्य बोला कि सद्सत्त्वविषिष्टं वस्तु ! अब यह है द्वन्द्वगर्भित तत्पुरूष समास याने इसमें सदसत्त्व का तो द्वन्द्व समास किया गया, फिर उसके बाद विषिष्ट शब्द का तत्पुरूष समास किया गया जिसका अर्थ कि सत्त्व और असत्त्व से सहित वस्तु। तो इस पद के द्वारा दोनो धर्मो से सहित वस्तु का बोध तो बन गया तब अवक्तव्यपना कैसे सम्भव रहा ? वक्तव्य तो हो गया, दोनो धर्म एक साथ इस पद के द्वारा कह दिए गए। इस शंका के उत्तर में कहते हैं कि भाई, इस समास में सत्त्व और असत्त्व से विषिष्टपने की प्रधानता है न कि सत्त्व और असत्त्व की प्रधानता है। इस समास में जो कि द्वन्द्वगर्भित तत्पुरूष समास हैं ?वहॉ सत्त्व और असत्त्व दोनो की अप्रधानता हैं, प्रधानता तो वैषिष्ठ्य की है, क्योकि व्याकरण में कहा गया है उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरूषः याने तत्पुरूष समास में उत्तर पदार्थ की प्रधानता होती है

जो अन्तिम शब्द हो , उसकी प्रधानता होती है। जैसे बच्चों से सहित देवदत्त तो यहॉ प्रधान कौन रहा ? जो सहित हो वह देवदत्त प्रधान रहा। तो द्वन्द्व समास मे तो उभयपद प्रधान होता है, लेकिन बोध उनका क्रम से होता है और तत्पुरूष समास में उत्तर पदार्थ की प्रधानता होती है। तब यहॉ भी दो धर्मो का प्रतिपादक कोई शब्द न मिला इस कारण सब धर्मो का एक साथ प्रतिपादन कर सकने वाला कोई पद नही हैं। अतएव स्याद् घट यह कहना बिल्कुल सिद्ध हैं याने चतुर्थ भंग युक्तिपूर्ण सिद्ध हो जाता है।

**अवक्तव्य भाब्द की वाच्यता के सम्बन्ध में भांका और उसका समाधान**—अब इस अवक्तव्य धर्म के सम्बन्ध में अन्य भी बात सुनो ! यहॉ कोई संत जन कहते है यह अवक्तव्यरूप अर्थ सर्वथा ही अवक्तव्य नही है कि किसी भी तरह न बोला जा सके। क्योकि देखिये ! अवक्तव्य शब्द तो यही ही कहा जा रहा हैं और जब कहा जा रहा है अवक्तव्य शब्द को तब स्याद अवक्तव्यः यह चतुर्थ भंग बनता है। इस प्रकार से कोई संतपुरूष कहते है तो यहां पर विचार करना चाहिए कि अवक्तव्य शब्द का वाच्य अर्थ क्या है ? याने इस अवक्तव्य शब्द से पदार्थ क्या कहा गया है ? कदाचित् यह कहो कि प्रधानता को प्राप्त सत्त्व और सत्त्व धर्मो से सहित पदार्थ अवक्तव्य शब्द से कहा गया है याने अवक्तव्य शब्द से वह पदार्थ कहा गया , जिस पदार्थ में सत्त्व और असत्त्व दोनो ही धर्म प्रधान है। सो ऐसा नही कह सकते क्योकिं प्रधानरूप से रहे सत्त्व और असत्त्व का एक काल में कोई वाचक शब्द नही है। प्रधानरूप रहे सत्त्व और असत्त्व ऐसा कुछ किसी भी शब्द द्वारा वाच्य नही होता । और , यहॉ कह रहे हो यह कि वह पदार्थ अवक्तव्य शब्द से कह दिया गया है, तो इसका अर्थ यह होगा कि दोनो प्रधान धर्मो से सहित पदार्थ को कहने वाला अवक्तव्य शब्द बन गया। कोई शब्द वाचक हो गया तब इस नियम का भंग हो जायगा कि सर्व धर्मो को एक साथ कह सकने वाला कोई शब्द नही है । तो यों अगर अवक्तव्य शब्द का वाच्य अर्थ लगा दिया जाय कि अवक्तव्य शब्द ने प्रधान समस्त धर्मो सहित एक पदार्थ को कह दिया तो इसमें सिद्धान्त का विधात है। सिद्धान्त में दो नियम कहे गए है। एक तो यह कि सबका एक साथ वर्णन कर दे ऐसा कोई शब्द नही है, दूसरा नियम यह कि एक पद एक काल में प्रधान रूप से अनेक धर्म सहित वस्तु का बोधक नही होता। अतएव यह बात युक्तिसंगत न जची कि अवक्तव्य शब्द का वाच्य एक साथ योजित दोनो धर्मो से सहित पदार्थ है।

**संकेत सिद्ध मानकर भी अवक्तव्य भाब्द से उभयात्मक पदार्थ की वाच्यता का अभाव**— यदि यह कहो कि यह तो संकेत शब्द है। किसी भी वाच्य का वाचक कुछ भी संकेत बना लीजिए । संकेत से वही पदार्थ ग्रहण में आये, यही तो संकेत का प्रयोजन है। सो इस अवक्तव्य शब्द को हम संकेत सिद्ध शब्द मान लेंगे कि इस शब्द द्वारा अर्पित अनेक धर्मो से सहित वस्तु का बोध किया जायेगां तो इसके समाधान में कहते है कि इस तरह अवक्तव्य संकेत सिद्ध शब्द होने से अवक्तव्य यह शब्द यदि दोनो धर्मो से सहित वस्तु का वाचक मान लिया जाय तो जैसे इस संकेत से उभयधर्म सहित वस्तु वाच्य मान लिया , ऐसे ही संकेत से सिद्ध अन्य संकेत इस पदार्थ के वाचक क्यो नही हो जाते ? याने संकेत करने की बात पर जब आ गए तो संकेत अटपट हो जाय या किन्ही भी संकेत शब्दों से जिस चाहे का अर्थ ज्ञान में लगा दिया जाय, पर ऐसा तो नही है। शंकाकार कहता है कि बात वहां यह है कि अन्य जो संकेत सिद्ध पद है वे क्रम से ही सत्त्व असत्त्व से सहित वस्तु के बोधक है। शंकाकार के प्रति यह आक्षेप देने पर कि अगर अवक्तव्य संकेत सिद्धि शब्द से दोनो धर्मो से सहित वस्तु का बोध किया गया तो अन्य भंग भी तो संकेत सिद्ध मान लीजिए। वहां क्यो नही दोनो धर्मो से सहित वस्तु का बोध किया जाता ? उसके उत्तर में शंकाकार यहां यह कह रहा है कि अवक्तव्य शब्द को छोड़कर अन्य जो संकेत

सिद्ध पद है वे क्रम से सत्त्व असत्त्व धर्म से सहित वस्तु का बोध कराने वाले है, इसके उत्तर मे कहते है कि तब संकेत सिद्ध अन्य पदो के समान संकेत सिद्ध अवक्तव्य यह पद भी एक काल में सत्त्व और असत्त्व धर्म से सहित वस्तु का बोधक हो सकेगा। जैसे कि अन्य संकेत सिद्ध पदो से अनेक धर्म सहित पदार्थ का ज्ञान क्रम से ही हुआ ऐसे ही अवक्तव्य इस पद से भी अनेक धर्मो का ज्ञान क्रम से ही हो सकेगा, क्योंकि दोनो ही संकेत सिद्ध पद है। अवक्तव्य को संकेत सिद्ध शंकाकार कह रहा है उसी प्रकार बाकी अन्य शब्द भी तो संकेत सिद्ध ही है ।तब किसी एक संकेत सिद्ध शब्द का ही कोई बात मान ली जाय यह विषेषता कैसे बन सकेगी ? अतः यहॉ यों नही कह सकते कि अवक्तव्य इस पद से तो दोनो धर्मो से सहित वस्तु का बोध हो जायगा। और अन्य संकेत से न होगा किन्तु इस विषय मे अवक्तव्य शब्द का वाच्य यह है कि अवक्तव्य इस शब्द पद से यह कहा गया वक्तव्यपने का अभावरूप धर्म से सहित पदार्थ । अर्थात ऐसे धर्मो वाला पदार्थ जो वक्तव्य न हो सके यह कहा गया है अवक्तव्य शब्द से , न कि सत्त्व और असत्त्व दोनो धर्मो सहित पदार्थ कहा गया है। यह तो जो विवेकी होगें उन सबके अनुभव में उतरने लायक बात है।

**स्याद् अवक्तव्य में एकान्त में अवाच्यता के अभाव की ध्वनि**— शंकाकार कहता हैं कि फिर समन्तभद्राचार्य ने आप्तमींमासा में यह कहा है कि उक्तिष्चावच्यतैकानावाच्यमिति युज्येते' याने आवच्यता का तो कथन हैं कि वह एकान्तरूप से अवाच्य है ऐसा मानने से अवाच्यपना भी न कहा जा सकेगा, ऐसे समन्तभद्राचार्य के वचन की संगति कैसे रहेगी, क्योकि आचार्य के इन वचनो के कहने का भावार्थ यह है कि सत्त्व असत्त्व धर्मसहित वस्तु को अवक्तव्य मानोगे तो वह अवक्तव्य इस पद से भी न कहा जा सकेगा और स्यादस्ति किसी शब्द से भी कुछ वक्तव्य न होगा, क्योकि जब सर्वथा अवक्तव्य हैं तो उसके मायने है कि वह बिल्कुल ही अवक्तव्य है, किसी भी पद से नही कहा जा सकता । अतः अवक्तव्य का अर्थ कथंचित वक्तव्य रूप से लेना ही चाहिए। अब इस शंका का उत्तर कहते है कि भाई तुमने समन्तभद्राचार्य के वचनों का अर्थ ही नही समझा, उस वचन का अर्थ यह है कि सत्त्वादिक धर्मो में से किसी एक धर्म के द्वारा जो पदार्थ कहे जा सकन के योग्य है वही पदार्थ प्रधानतया सत्त्व असत्त्व इन दो धर्मो से युक्त रूप से अवाच्य है। अवाच्य का अर्थ यह है कि दोनो धर्म प्रधानरूप से एक साथ नही कहे जा सकते। यदि सत्त्व असत्त्व धर्म सहित पदार्थ को सत्त्वादिक एक धर्म के द्वारा भी अवाच्य मानें तो वाच्यत्व का अभावरूप धर्म है उस अभावरूप धर्म के द्वारा वस्तु को कहने वाले अवाच्य इस शब्द से यह वस्तु वाच्य न बनेगा, स्वामी समन्तभद्राचार्य के वचन का यह अभिप्राय है। कथंचित अवक्तव्य है इसका अर्थ यह है कि एक धर्म को प्रधानरूप से कहने की दिषा में वह वक्तव्य है। ऐसा शुद्ध अर्थ का व्याख्यान न करके यदि ऐसा व्याख्यान करेंगे कि सत्त्व असत्त्व इस उभयधर्म से अवाच्य जो पदार्थ है वही सत्त्व असत्त्व इस उभय धर्म सहित वस्तु को कहने वाला अवाच्य शब्द है। मायने अवक्तव्य इस शब्द से उभय धर्म सहित वस्तु को कहा गया है। ऐसा व्याख्यान करेगें तो इससे क्या निष्कर्ष निकलेगा कि जिस रूप से पदार्थ अवाच्य है उसी रूप से वह वाच्य भी हो गया। अब देखिये ! स्याद्वाद का इसमें कितना विधात है कि जिस अपेक्षा से पदार्थ को अवाच्य कहा उसी अपेक्षा से पदार्थ को वाच्य भी कह डाला। और जब यह बात बना ली तब फिर यह प्रसंग आ गया कि जिस रूप से वस्तु का सत्त्व है उसी रूप से उसी वस्तु का असत्त्व भी है। यह उल्टा प्रसंग आ जायगा। पर ऐसा कहीं होता है क्या ? अपने द्रव्य , क्षेत्र , काल, भाव से वस्तु असत् हो जायगा ? यदि इस प्रकार मानोगे तो समन्तभद्रस्वामी के इस वचन का विरोध प्राप्त होगा कि विरोधान्नौभयैकात्म्यं

स्याद्वादनयवेदिनां अर्थात विरूद्ध होने से सत्त्व असत्त्व इन उभय धर्म में किसी प्रकार एक धर्म रूप से अवक्तव्यपना स्याद्वाद न्याय के जानने वाले स्वीकार नही करते । विरूद्ध होने से दोनो का एकात्म्य नही है इस वचन का फिर विरोध हो जावेगा क्योंकि अब तो इस पद्धति पर आ गए कि जिस अपेक्षा से अवाच्य है उसी अपेक्षा से वाच्य भी बन गया इस कारण अवक्तव्यत्व का यह अर्थ न करना कि अवक्तव्य शब्द से उभय धर्म से युक्त वस्तु कहाा जाता है। अवक्तव्य शब्द से तो यह कहा गया है कि दोनो धर्म प्रधानतया एक काल में कहे जा सकने के योग्य नही है। इस सम्बन्ध में सिद्धान्तवेदी पुरूष कहते है कि अवक्तव्य घट है ऐसा जो चतुर्थ भंग किया गया है तो उसमें घट को सर्वथा अवक्तव्य नही कहा। कंथचित अवक्तव्य है। यदि यह कह देते है कि घट अवक्तव्य ही है तो ऐसा कहने से घट का सर्वप्रकार से अवक्तव्यपना आ जाता है। जब सर्वथा अवक्तव्यपना आ जाता है तो इसके मायने यह है कि अस्तिनास्तित्व आदिक प्रथम द्वितीय भंगो के रूप में भी उसका वर्णन न हो सकेगा। इसलिए अवक्तव्य शब्द के पहिले स्यात् इस निपात का प्रयोग किया गया है। और , इस स्यात निपात के लगने से यह अर्थ हुआ कि सत्त्व आदिक रूप से तो घट वक्तव्य है, किन्तु एक ही समय मे प्रधान रूप सत्त्व असत्त्व ये दो धर्म कह दिये जायें इस रूप से अवक्तव्य है। स्याद् अवक्तव्य एवं घटः जितने भी शब्द दिए गए है वे शब्द सार्थक है, कथंचित अवक्तव्य है घट इसके मायने यह है कि स्याद् अस्ति स्याद्नास्ति आदिक अन्य भंगो की अपेक्षा वक्तव्य है ऐसा चतुर्थ भंग का तात्पर्य निकला ।

**स्यादस्ति अवक्तव्य नाम का पंचम भाग**– अब 4 भंगो के बाद तीन भंग और आते है वे सब संयोगी है। 5वॉ भंग स्याद अस्ति अवक्तव्य। छठा है स्यादनास्ति अवक्तव्य और सातवॉ स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य। तो समुदित संयोग रूप से द्रव्य पर्याय का आश्रय करके ये अंतिम 3 भंग बना करते है। जैसे कि 5वॉ भंग बना। उसमें प्रथम तो द्रव्य अर्पित लिया और सह अर्पित द्रव्य पर्याय ली। देखो ! द्रव्य दृष्टि से तो अस्ति है पर्याय दृष्टि से नास्ति है अथवा स्वरूप की अपेक्षा से अस्ति है, पररूप की अपेक्षा से नास्ति है। तो यहॉ अस्ति तो एक पृथक रूप से लिया और अस्ति नास्ति दोनो एक साथ लेना चाहा। तो व्यक्त रूप में अस्ति व नास्ति दोनो समस्त एक साथ यों जब आश्रय करते है तो बनता है स्यादस्ति अवक्तव्य। इस तरह से तो द्रव्य का और एक साथ अर्पित दोनो को द्रव्य पर्याय का आश्रय करके यह पंचम भंग हुआ स्याद अस्ति अवक्तव्यएव घटः इसका तात्पर्य यह है कि घटरूप जो एक धर्मी है उसे तो बनाया विषेष्य , क्योकिं उसकी ही बात विषेषता में बतानी है उस एक धर्मी में सत्त्व विषिष्ट अवक्तव्यता के प्रकार के ज्ञान को उत्पन्न करने वाला यह वाक्य हुआ। यहॉ पर द्रव्य की विवक्षा मे तो अस्तित्व की बात आयी, और एक साथ द्रव्य पर्याय की अपेक्षा से अवक्तव्यपने की बात आयी।

**स्यान्नास्ति अवक्तव्य एव नाम का छठा भंग**– अब छठवॉ भंग है स्याद्नास्ति अवक्तव्यएवघटः इसमें पृथकरूप से पर्याय तथा मिलाने रूप से द्रव्य पर्याय का आश्रय करके यह भंग बना है। पररूप की अपेक्षा से नास्तित्व कहा है और स्वपर रूप दोनो को एक साथ प्रधानरूप तकने की दृष्टि से अवक्तव्य कहा है। इसमें क्या बोध बना कि घट तो है एक धर्मी विषेष, जिसके विषय में कुछ वर्णन है, जिसकी विषेषता बताते है उस विषेष्य में नास्तित्व सहित अवक्तव्यपने के प्रकार वाला ज्ञान उत्पन्न हो । तो यों छठे भंग में दो आश्रय हुए । अलग अलग रूप से तो पररूप का अथवा पर्याय का आश्रय है और एक साथ प्रधान रू‹ से द्रव्य पर्याय का आश्रय किया। ऐसी स्थिती में यह बोध उत्पन्न हुआ कि स्यादनास्ति अवक्तव्यएवघटः ।

**स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्य नाम का सप्तम भंग**— अब 7वॉ भंग कह रहे हैं। 7वें भंग का रूप है स्याद अस्तिनास्ति अवक्तव्य एव घटः। इसमें अलग—अलग क्रम योजित द्रव्य पर्याय का आश्रय किया है। तथा मिले हुए एक साथ योजित द्रव्य पर्याय का आश्रय हुआ है, तब यह बोध बना कि स्याद अस्तिनास्ति अवक्तव्यएव घटः । इस लक्षण में ज्ञान किस प्रकार से हुआ कि घट रूप से तो एक वस्तु विषेष्य है जिसके सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की विषेषता बताते है, उस मे सत्त्व असत्त्व से विषिष्ट अवक्तव्यपने के प्रकार का बोध उत्पन्न किया जा रहा है। इस तरह सप्तभंग में क्रम से अर्पित द्रव्य पर्याय का आश्रय है और एक साथ अर्पित द्रव्य पर्याय का आश्रय है। तब यह भंग जो कि तृतीय और चतुर्थ भंग का मेल सा दिखता है, सप्तभंग निष्पन्न होता है।

**द्रव्यकान्त व पर्यायकान्त का निराकरण**— अब इस समय शंकाकार कह रहा है कि द्रव्य ही तत्व है। पर्याय तो तत्व नही है। इसलिए स्याद अस्ति एव यही एक भंग बनेगा, स्याद नास्ति का भंग बनना अयुक्त है। यह शंका सांख्यसिद्धान्त से मिलकर होती है। सांख्यसिद्धान्त तो केवल विधि है, वहॉ प्रतिषेध का स्थान नही। वहॉ अस्तित्त्व ही बताया गया है। नास्तित्त्व का विधान नही है। उस दृष्टि से शंकाकार कह रहा है कि स्याद अस्ति ही पदार्थ है, क्योकिं द्रव्य ही तत्व है। पर्याय है ही नही। पर्याय मानी ही नही गई। जो भी सत् है, ब्रह्म अद्वैत , सर्व एक है पररूप तो कुछ है ही नही, वह मूल मे अपरिणामी है। इस तरह स्याद् अस्ति एव यही भंग सत्य है। इसके उत्तर मे कहते है कि यह कथन करना अयुक्त है, जैसे द्रव्य का सत्त्व प्रतीत होता है, उसी प्रकार पर्याय की भी प्रतीति होती है। कोई भी सत् ऐसा नही है कि वह है, पर वहॉ परिणमता न हो। इस कारण परिणमन शून्य सत् न होने से कोई द्वितीय भंग का निषेध नही कर सकता। सत् है और वह परिणमता है। तो यों द्रव्य का प्रतिपक्षी पर्याय है स्वरूप का प्रतिपक्षी पररूप है। तो प्रथम दोनो भंगो का होना आवष्यक हैं और यों ही सीधा समझिये कि कोई कुछ भी कहे उस सम्बन्ध में यह तो कहना होगा कि जो बात रखी गई है इससे विपरीत नही है। जैसे किसी ने कहा कि मैं सच बोलता हूं तो उसका अर्थ तो यही निकला कि मैं झूठ नही बोलता हूं। यों ही जब कहा गया कि पदार्थ नित्य है तो दूसरी बात आ ही गई कि अनित्य नही है। इस तरह भी भंग चलेगा और द्रव्य पर्याय का सहारा लेकर भी उससे भंग बनता है। यों प्रथम और द्वितीय भंग का अस्तित्व बराबर प्रतीति सिद्ध है। यदि नास्ति नही मानते तो अस्ति भी नही बन सकता। जैसे कि अस्ति न मानने पर नास्ति नही बना करती । तो यों स्याद अस्ति इस प्रथम भंग के एकान्त वाला सिद्धान्त युक्त नही है। जैसे कि कोई क्षणिकवाद में पर्याय ही तत्व है इस कारण नास्ति यह भंग नही है। ऐसा मानने का सिद्धान्त गलत है, क्योकिं वहां भी द्रव्य की प्रतीति बराबर है। सांख्य तो परिणमन नही मानते और क्षणिकवादी द्रव्य नही मानते , पर वस्तु द्रव्यपर्याय स्वरूप है अतएव स्याद अस्ति और स्याद नास्ति ये दोनो ही भंग युक्तिसिद्ध है।

**अवक्तव्यैकान्त का निराकरण**— जिस प्रकार कोई स्याद अस्ति यह ही एकान्ततः माने और स्याद् नास्ति यह ही एकान्ततः माने तो वह मानना अयुक्त है, क्योकिं द्रव्य भी प्रतीतिसिद्ध है और पर्याय भी प्रतीतिसिद्ध हैं, ऐसे अवक्तव्य ही वस्तुतत्त्व है, ऐसा कोई अवक्तव्यपने का एकान्त करे तो वह भी स्ववचनवाधित है, जैसे कि अभी सांख्यमतानुयायिता में यह एकान्त किया गया था कि स्याद् अस्ति यह ही एक भंग है और जैसे क्षणिकवाद में यह एकान्त किया गया था कि स्यादनास्ति यही एक भंग सही है। इसी प्रकार यदि यह एकान्त किया जाय कि अवक्तव्य ही वस्तु सत्त्व है तो यह एकान्त भी उन एकान्तों की तरह बाधित हैं और अवक्तव्य ही वस्तु तत्व है। इस तरह का कथन तो स्पष्ट

स्ववचनबाधित है। कहते तो जा रहे हैं वक्तव्य तो हो रहा है और कह रहे हैं कि अवक्तव्य ही है। जैसे कोई पुरूष यह कहे कि मै तो सदा मौन ब्रत में ही रहता हूं तो वह बोलता तो जा रहा है और बताता है कि मै तो सदा मौन ब्रत में ही रहता हूं । तो जैसे यह स्ववचनवाधित है इसी प्रकार अवक्तव्य ही वस्तु है यह कथन भी स्ववचनबाधित है। इसी प्रकार अन्य जो एकान्त है वे भी प्रतीति द्वारा बाधित है। उन एकान्तो के विरूद्ध अनेकान्त स्वरूप वस्तु तत्व की प्रतीति होती है। इस कारण अनेकान्तवाद ही युक्तिसिद्ध निर्विवाद प्रतीत होता है।

**अनेकान्त में भी सप्तभंगी होने या न होने का प्रश्न**– अब शंकाकार यहॉ कहता है कि भाई ! अनेकान्त में भी तो विधिषेधरूप सप्तभंगी जोड़नी होगी या नही ? यदि कहो कि अनेकान्त में भी विधि और प्रतिषेध की सप्तभंगी चलती है तो अनेकान्त का जब निषेध किया तो उस कल्पना में एकान्त ही तो सिद्ध हुआ। फिर एकान्त पक्ष में जो दोष दे रहे हो वह दोष यहॉ भी आयगा, क्योकिं अनेकान्त का विधि और प्रतिषेध मानने पर यही तो कहा जायेगा कि स्याद अनेकान्त है स्याद अनेकान्त नही है। इसका निष्कर्ष यह निकला कि एकान्त है तो एकान्त में जो दोष है वह यहॉ भी लगेगा। और फिर अनवस्था दोष भी होता है। क्योकिं उस प्रकार के अनेकान्त में भी अन्य अनेकान्त की कल्पना द्वारा विधि और प्रतिषेध वक्तव्य हो जायगा, याने इस प्रकार एकान्त की भी अन्य अनेक कल्पनाएं करे तो वहॉ भी विधि और निषेध करते हुए चले जाओ जो जितना अनेकान्त कहेंगे वहॉ सब जगह ही विश्राम और प्रतिषेध की कल्पना करते जाना होगा। तब कहीं भी विश्राम न मिलेगा। तो यहां अनावस्था दोष आता है तो यदि एकान्त में भी सप्तभंगी चलती है। यह पक्ष मानते हो तो यदि कहो कि अनेकान्त मे सप्तभंगी नही चलती है तब तो यह कहना कि "समस्त वस्तु समूह सप्तभंगी से व्याप्त है" यह सिद्धान्त फिर न रहेगा।

**अनेकान्त में भी सप्तभंगी की पद्धति के वर्णन का उपक्रम**– उक्त शंका के समाधान में कहते है कि अनेकान्त में भी सप्तभंगी है अथवा नही है और दोनो ही पक्षो में कुछ दोष की कल्पना करना सब अयुक्त है क्योकिं प्रमाण और नय की विवक्षा के भेद से अनेकान्त में भी सप्तभंगी की उपपत्ति है। वह किस तरह सो समझिये। एकान्त होता है दो प्रकार का एक सम्यक् एकान्त और दूसरा मिथ्याएकान्त । याने एक सही एकान्त और एक गर सही एकान्त। इसी तरह अनेकान्त भी दो प्रकार होता है एक सम्यक् अनेकान्त और दूसरा मिथ्या अनेकान्त । सम्यक् एकान्त प्रमाण के विषयभूत अनेक धर्मात्मक वस्तु में रहने वाले एक धर्म को विषय करता है और धर्मान्तरो का निषेध नही करता है। सम्यक् एकान्त में दो बाते दृष्टि में लानी चाहिए एक तो यह कि प्रमाण के विषयभूत अनेक धर्मोत्मक वस्तु में से एक धर्म को विषय कर रहा है याने सम्यक् एकान्त का उपयोग करने वाले ज्ञानी पुरूष के निर्णय में प्रमाण का निर्णय भरा पड़ा है। अब उस प्रमाण से परिगृहीत वस्तु में से एक धर्म को इस समय जान रहा है। दूसरी विषेषता यह है कि सम्यक् एकान्त अकथित अन्य धर्मो का निषेध नही करता। अब मिथ्या सिद्धान्त का स्वरूप सुनो ! मिथ्या एकान्त एक धर्म मात्र के ही निष्चय करने से अन्य समस्त धर्मो का निराकरण करने में चतुर रहता है। अर्थात मिथ्या एकान्त केवल एक धर्म मात्र का निष्चय करता है और उस वस्तु में पाये जाने वाले अन्य धर्मो का निराकरण नही करता है। यह तो हुआ सम्यक् एकान्त और मिथ्या एकान्त का स्वरूप । अब सुनो सम्यक् अनेकान्त और मिथ्या अनेकान्त का स्वरूप। एक वस्तु में अस्तित्व नास्तित्व आदिक नाना धर्मो का निरूपण करने में समर्थ और प्रत्यक्ष, अनुमान आगम आदिक से अविरूद्ध सम्यक् अनेकान्त होता है। सम्यक् अनेकान्त का स्वरूप समझने के लिए इन दो बातो पर दृष्टि डालियेगा कि एक तो यह वह एक वस्तु में नाना

धर्मो का निरूपण करता है। दूसरी बात यह कि सम्यक् अनेकान्तनयने जो कुछ बताया वह न तो प्रत्यक्ष से ही बाधित होगा, न अनुमान से , न आगम आदिक से । ऐसा निर्वाध समस्त धर्मो का वर्णन करने वाला सम्यक् अनेकान्त होता है और मिथ्या अनेकान्त प्रत्यक्ष आदिक से विरूद्ध अनेक धर्मो की कल्पना करने को कहते है। मिथ्या अनेकान्त मे ऐसे अनेक धर्मो की कल्पना की जाती है जो प्रत्यक्ष अनुमान, आगम आदिक से विरूद्ध पड़ते है। तो इस तरह एकान्त और मिथ्या एकान्त के स्वरूप हुए। अब उन 4 बातों मे से पृथक –पृथक की विषेषता देखिये कि सम्यक् एकान्त तो नय कहलाता है। और मिथ्या एकान्त नयाभांस कहलाता है। याने वास्तविक नय है सम्यक् एकान्त और झूठा नय है मिथ्या एकान्त। इस प्रकार सम्यक् एकान्त अनेकान्त प्रमाण रूप है और मिथ्या अनेकान्त प्रमाणाभास है। याने वास्तविक प्रमाणभूत तो सम्यक् अनेकान्त होता है और जो मिथ्या अनेकान्त है याने प्रत्यक्ष आदिक से विरूद्ध अनेक धर्मो की कल्पना करने रूप जो मिथ्या अनेकान्त है वह झूठा प्रमाण है।

**अनेकान्त में 'सप्तभंगी की विधि** – सम्यक् एकान्त, मिथ्या एकान्त , सम्यक् अनेकान्त , मिथ्या अनेकान्त का स्वरूप समझकर अब यह समझिये कि सप्तभंगी की योजना यहॉ किस प्रकार लगती है ? सम्यक् एकान्त और सम्यक् अनेकान्त का आश्रय लेकर जब प्रमाण और नय की योजना की अपेक्षा की जाती है तो उस अपेक्षा से ये 7 भंग उत्पन्न होते है कि कथंचित् अनेकान्त है, कथंचित एकान्त है, कथंचित् उभय, कथंचित अवक्तव्य, कथंचित् अनेकान्त अवक्तव्य और कथंचित एकान्त रूप और अवअवक्तव्य है। इस तरह सप्तभंगी की योजना बन जाती है। अब उनका विवरण सुनों नयकी विवक्षा से तो स्यात् एकान्त बनता है, क्योकिं स्यात् नय एक एकान्त को विषय करता हैं। तो नय की अपेक्षा से स्यात् एकान्त हुआ। और , प्रमाण की अपेक्षा से स्यात् अनेकान्त हुआ, क्योकिं प्रमाण समस्त धर्मो का निष्चयात्मक होता है। प्रमाण से एक वस्तु के सकल धर्मो का निर्णय होता हैं। अब इन दो भंगो के प्रति परस्पर में ऐसा तर्क बनाये कि देखिये ! यदि अनेकान्त अनेकान्त ही है, एकान्तरूप नही है अर्थात एक अनेकान्त का ही आग्रह किया जाय और एकान्त का निषेध किया जाय तो देखिये , एकान्त का अभाव होने पर एकान्त का समूहरूप ही अनेकान्त था सो अनेकान्त का भी अभाव हो जायेगा। जैसे कोई पुरूष वृक्ष को तो माने और शाखाओ का निषेध करें। कहे– भाई! वृक्ष ही है, शाखा कुछ भी नही है। तो शाखाओं का अभाव होने पर वृक्ष का अभाव हो गया। जहॉ शाखा , पत्ता, पुष्प आदिक कुछ नही हैं वहॉ वृक्ष ही क्या है? तो अनेकान्त होता है एकान्त का समूहरूप याने सम्यक् एकान्त का जो समुदाय है वही सम्यक् एकान्त है। अब एकान्त का किया जाय सर्वथा निषेध तो अनेकान्त कहॉ से बनेगा ? तब मानना ही होगा कि स्यात् अनेकान्त है, स्याद एकान्त है। इस तरह जब ये दो मूल भंग सिद्ध हो जाते है कि स्यात् एकान्त और स्याद् अनेकान्त। तब उत्तर भंगो की भी योजना बन सकती है याने स्यात् एकान्त अनेकानतरूप , स्यात उभयरूप याने अवक्तव्यरूपादिक शेष 5 धर्म भी बन जायेंगे। यों प्रमाण और नय की विवक्षा में सप्तभंगी की सिद्धि होती है।

**स्यान्नित्य आदि के सम्बन्ध में सप्तभंगी का दिग्दर्शन**– सप्तभंगी का निरूपण स्यादस्ति स्यादनेकान्त आदि की तरह नित्यत्व , अनित्यत्व , एकत्व , अनेकत्व आदिक धर्मो के सम्बन्धो में भी लगाना चाहिए। जैसे पहिले बताया था स्याद घटः अस्ति, स्यादनास्ति। अब जरा नियत्व के प्रसंग में भी सप्तभंगी देखो । वहां यो सप्तभंगी चलेगी कि स्याद् नित्य एव घटः स्यादनित्यत्व एव घटः क्योकिं घट द्रव्यरूप से तो नित्य है और पर्यायरूप से अनित्य है। तो द्रव्य की विवक्षा में नित्य हुआ और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य हुआ ।और

जब नित्यत्व के ये दो मूल भंग हो गए तो अब इस के आधार से शेष 5 धर्म भी सिद्ध कर लेना चाहिए। यों ही एकत्व अनेकत्व आदिक धर्मो के सम्बन्ध में भी सप्तभंगी घटित कर लेना चाहिए। पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से नियम से पदार्थ उत्पन्न होते है और नष्ट भी होते है। इस छंद में एक यह बात बता दी कि द्रव्यार्थिकनय से वह पदार्थ नित्य है और पर्यायार्थिक नय से पदार्थ अनित्य है। तो यो नित्य और अनित्य में सप्तभंगी बनी है। इसी प्रकार एकत्व अनेकत्व आदिक धर्मो में भी सप्तभंगी घटित होती है।

**स्यादनित्यः घटः इस तृतीय भंग की उपपत्ति न होने की भांका**— अब शंकाकार कहता है कि प्रथम जो भंग कहा गया है कि स्याद् नित्यः घटः नित्य है इस वाक्य में स्याद शब्द का अर्थ कथंचित् ही है। जो कि सत्पना के संसर्गरूप से प्रति भासित है याने जो नित्यपना है उसे नित्यपने से युक्त घट है यह हुआ प्रथम वाक्य का अर्थ। स्यादनित्यः घटः उसका अर्थ संसर्ग रूप से बना। तो जैसे प्रथम भंग का अर्थ इस तरह संसर्ग रूप से बना कि द्रव्यरूप से सहित है नित्यत्व , उस नित्यत्व से युक्त है घट यह बात स्याद् नित्यः घटः ने बताया। क्योकिं द्रव्यत्व की व्याप्ति नित्यत्व के साथ है और नित्यत्व की व्याप्ति घट में है। तो जैसे प्रथम भंग का अर्थ यह हुआ सो तो ठीक है, पर द्वितीय भंग में तो बात ठीक नही बैठती। याने संसर्ग रूप से अर्थ नही ठीक नही बैठता द्वितीय वाक्य में जो अनित्य पद दिया है उसका तो नित्य भेद अर्थ है। याने नित्यत्व का जो छेदन भेदन करे उसे अनित्य कहते है। तो इस प्रकार से पर्यायरूप से सहित नित्य भेद वाला घट है ऐसा ज्ञान द्वितीय वाक्य से प्राप्त होता है। जैसे कि पहिले वाक्य का अर्थ है कि द्रव्यमान से सहित नित्यत्व धर्म से युक्त है तो द्वितीय वाक्य का अर्थ है कि पर्यायरूप से सहित नित्य भेदवान् घट है। ऐसा अर्थ तो प्राप्त होता है लेकिन यो वाक्यार्थ होना अयोग्य है क्योकि जब द्रव्यरूप से घट नित्य है तब उसमें नित्य का भेद बाधित होता है। नित्य है तो नित्य का भेदन कैसा ? भेद होता है व्याप्त वृत्ति वाला व्याप्य। वृत्ति उसे कहते है कि जिसकी सत्ता पदार्थ के सर्व देषों में रहे । जैसे तिल मे तैल यह व्याप्यवृत्ति है । जितना अंष तिल का है उतने ही अंष में तैल व्याप रहा है। तो भेद होता है व्याप्तवृत्ति में । इसके मायने यह है कि नित्य का भेद पूरे तरह से रहना चाहिए लेकिन नित्य में नित्य का भेद कैसे रह सकता है? तब स्याद् अनित्यः घट यह द्वितीय भंग ठीक नही बन सकता।

**भेद की अव्याप्यवृत्तिता होने स्यादनित्यः घटः इस द्वितीय भंग की उप्पत्ति का समाधान**— अब उक्त शंका के उत्तर में कहते है कि देखिये— जो यह कहा कि भेद व्याप्यवृत्ति वाला होता है सो यह नियम नही बनता। भेद अव्याप्य वृत्तिक भी होता है। देखो जैसे कहा – "मूले वृक्षः संयोगी न" याने मूल स्थान में वृक्ष मरकट आदिक के संयोग से सहित नही है। जैसे वृक्ष पर बन्दर आदिक चढ़ रहे है तो शाखाओं तो बंदरो के संयोग से सहित है मगर उस वृक्ष का मूल भाग बन्दर आदिक के संयोग से सहित नही है। और यह बात प्रतीति में आ रही है। अनेक पुरूष देखतें है कि वृक्षो पर बन्दर चढते है, पर वृक्ष के जड़ से भी कोई बन्दर चिपकता है क्या ? तो देखो वृक्ष मूल में संयोगी न रहा। तो अब यहां भेद की अव्याप्यवृत्तिता बन गई ना ? अर्थात यहां भेद पदार्थ के एक देष मे मे रहा ना। संयोगी का भेद वृक्ष के मूल मे हैं और शाखाओं में नही है। वृक्ष एक है तो यहां भेद अव्यावृत्ति वाला हो गया। और जो अव्याप्य वृत्तिपना है सो इस प्रकृत प्रसंग मे प्रतियोगी वृत्तिपना रूप है। प्रतियोगी वृत्तित्व का अर्थ यह है कि जिसका अभाव कहा जाता है। वह प्रतियोगी कहा जाता है। जैसे नित्य भेद का प्रतियोगी नित्य है, संयोगी भेद का संयोगी संयोगवान् वृक्ष है। प्रतियोगी कहते है मुकाबले में उल्टे को। तो संयोग के अभाव का उल्टा क्या ? संयोग। नित्यपने के अभाव का प्रतियोगी क्या ? नित्य। तो जैसे संयोगी भेद का

प्रतियोगी क्या हुआ? संयोगवानवृक्ष। तो उसका किसी देष में संयोगी का भेद भी पूर्ण रूप से है। जिस देष में संयोग नही है वहां संयोग का अभाव पूर्णरूप से है ना । क्योकिं शाखा आदिक में यद्यपि वृक्ष बंदरो से संयुक्त है लेकिन मूल भाग में संयोग भेद विद्यमान है। वहां अन्य बंदर आदिक नही है। इसी रीति से घट में भी घटाओ। घट मे पर्यायसहित उस नित्य का भेद भी है। यद्यपि घट द्रव्य दृष्टि से नित्य हैं मगर घट को ही जब पर्याय दृष्टि से देखते है तो उसे एक देष मे देखा ना, तो उस एक देष मे नित्य का भेद भी है। मायने नित्य नही है घट। जैसे वृक्ष कहीं संयोग है, कहीं संयोग का भेद है। ऐसे ही घट मे द्रव्य दृष्टि में नित्य का संसर्ग हैं और पर्यायदृष्टि में नित्य का संसर्ग नही है। यों पर्यायरूप से देखा जाय तो नित्य भेद से युक्त घट है ऐसा द्वितीय वाक्य का अर्थ करने में कोई हानि नही है। बात सीधी यह है कि द्रव्य दृष्टि से घट नित्य है। पर्यायदृष्टि से घट अनित्य है। एक ही घट को नित्य कह दिया तो फिर अनित्य कैसे कहा ? यह शंका न करना चाहिए। नित्यत्व की विवक्षा और है , अनित्यत्व की विवक्षा और है। घट में जो मृत्तिका है वह सदा रहता है। उस द्रव्य से नित्य है और घट की पर्याय नष्ट हो जाती है उस दृष्टि से अनित्य है।

**एकत्व धर्म के सम्बन्ध मे सप्तभंगी**– अब एकत्व और अनेकत्व की सप्तभंगी बताते है। प्रथम भंग है स्याद एक घटः दूसरा है स्याद् अनेक घटः। कथंचित् घट एक है और कथंचित् अनेक है ये दो मूल भंग हुए। याने द्रव्यरूप से तो एक ही घट है क्योकिं मृत्तिका रूप द्रव्य पिण्ड में , कोष में, कुषषुल में सभी पर्यायों मे रहा, याने मिट्टी का लौंधा, मिट्टी का डंडा और मिट्टी की कुठिया फिर बना घट। तो जितनी पर्यायें हुई उन सबमें मिट्टी जो है वह ऊर्द्धता सामान्य रूप हुई। ऊर्द्धता सामान्य कहते है कि कलापेक्षया पूर्वोत्तर काल मे जो रहे सामान्य। तो मिट्टी मे जो पिण्डादिक अनेक पर्यायें हुई उन सब पर्यायों मे मिट्टी रही। तो वह ऊर्द्धता सामान्यरूप रहा। यों घट स्यात् एक है और पर्याय रूप से अनेक घट हैं? यद्यपि घट तो वह एक है सामने जिसके बारे मे बात कर रहे है। लेकिन वह घट रूप , रस, गंध, स्पर्ष आदिक अनेक पर्यायरूप है। तो जिन –जिन पर्यायरूप से वह भिन्न है उन–उन पर्यायों की दृष्टि से तो भिन्न –भिन्न बन गया। वही घट काला है, बुरी गंध वाला है, यों कितनी ही बातें बोलेगें। तो उन–उन अपेक्षाओं से घट अनेक हुए। यों जब स्याद एकः स्याद् अनेकः ये दो मूल भंग निर्बाध सिद्ध हो गये तो स्याद् एक अनेक स्याद् अवक्तव्य, स्याद अनेकानेक अवक्तव्य ये सब भंग उसमें सिद्ध हो जाते है।

**"सर्व एक" इसमें सप्तभंगी के संदेह की भांका व समाधान**– अब इस प्रसंग मे शंकाकार कहता है कि द्रव्यार्थिकनय का और पर्यायार्थिनयका आश्रय करके एक और अनेक आदिक सप्तभंगी मान भी ली जाय तब भी यह कैसे संगत होगी कि समस्त पदार्थ स्याद एक है स्याद अनेक है। सप्तभंगी तो सब जगह लगाओ। सर्व वस्तु स्याद एकः स्याद अनेकः यह बात उसमें संगत हो सकती , क्योंकि किसी प्रकार से सब वस्तुओं की एकता नही हो सकती। सारे पदार्थ है, वे एक रूप कैसे हो जायेगें ? यदि कोई यह कहे कि सत्त्व के रूप से तो सब वस्तु एक है, चाहे जीव हो, है तो सभी सत् ! तो उस सत् की दृष्टि से सब वस्तुओं में एकता हो जायेगी, सो भी बात कह सकते , क्योकिं समस्त वस्तु में व्याप्य करके रहने वाले एक सत्त्व को जैन सिद्धान्त ने अंगीकार नही किया जैसे कि मीमांसक सिद्धान्त ने सत्त्व एक है और उसका समवाय सर्व पदार्थो मे होता है। यो अलग से कोई एक सत्त्व है और वह सर्व पदार्थो में व्यापक है। यह जैन सिद्धान्त के अनुसार युक्त नही है। जैन सिद्धान्त के अनुसार तो सदृष परिणमनरूप प्रति व्यक्ति मे रहने वाला सत्त्व जाति अपेक्षा से एक तथा उस व्यक्ति रूप सत्त्व प्रतिव्यक्ति में भिन्न ही सिद्ध है। याने जिस

दृष्टि से सर्व पदार्थो की सदृषता जानी जाय उस दृष्टि से एक सत् कहा है तो वह जाति अपेक्षा से है। मगर प्रत्येक पदार्थ में सत्त्व भिन्न–भिन्न ही सिद्ध हो जैसे जीव का लक्षण उपयोग है पुद्गल का लक्षण मूर्तयना है तो ये सब भिन्न भिन्न ही तो रहे। हॉ सभी मे सत्त्व है, इस जाति से एक सत्ता है, परन्तु परिणमन अनुभव प्रदेष इन सबके जुदे है। ऐसा एक सत्त्व समस्त पदार्थो में व्याप करके नही रह सकता। फिर यह भंगी सामान्य विषेष की अपेक्षा से बनेगी कि सर्व वस्तु स्याद एक है और स्याद अनेक है।

**तिर्यक् सामान्य की अपेक्षा से सर्व मे एकत्व की प्रसिद्धि**– उपयोगी लक्षणं इस सूत्र के तात्पर्य मे तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक में बताया गया है कि उपचार से एक ही काल में सदृष परिणामरूप अनेक व्यक्ति मे व्यापी एक सत्त्व नही माना गया है। अर्थात कोई एक ही सत् नाम का पदार्थ हो और वह फिर समस्त पदार्थो में व्याप करके रहे ऐसा सत्त्व नही है किन्तु जो पदार्थ है वह पदार्थ स्वंय सत् है और उन सब सत् पदार्थो के इस पदार्थो के इस सत्त्व धर्म को देखकर कहा जाता है कि सत्त्व की अपेक्षा सब एक है। जैसे अनेक मनुष्यों को कहा जाता है कि मनुष्यत्व की अपेक्षा सब एक है, पर वहां यह बात तो नही है कि मनुष्यत्वनाम का कोई पदार्थ है और वह एक है। फिर इन मनुष्यों में प्रवेष करके इन्हे मनुष्य बनाता है, ऐसा तो नही है। मनुष्य सब स्वंय स्वतंत्ररूप से पूरे –पूरे मनुष्य है। तो उन सब मनुष्यों में मनुष्यता की समानता है। इस समानता की दृष्टि से उपचार से कहा जाता है कि मनुष्य एक है। तो केवल उपचार कथन हैं। वस्तुतः एक सत्ता सब में व्यापक हो सो बात नही है। इस ही संबन्ध में परीक्षामुख सूत्र में भी बताया हैं कि 'सदृषपरिणामस्तिर्यक खण्ड मुण्डादिषु गोत्ववत्' खण्डी मुण्डी आदिक अनेक गायों में जैसे गोत्व के सदृष परिणाम है ना, तो वे प्रत्येक गाय से भिन्न –भिन्न हैं। परन्तु सदृष परिणाम है उसे कहते है। तिर्यक सामान्य। अर्द्धता सामान्य तो पूर्वोत्तर कालवर्ती पदार्थो में रहने वाला एक द्रव्य सामान्य ग्रहण में आता है और तिर्यक सामान्य में पृथक –पृथक व्यक्तियों में जिस सदृष धर्म द्वारा समानता बताना है उस धर्म की समानता को कहते है तिर्यक सामान्य। इसके सम्बन्ध में मार्तण्ड में खुलासा किया जाता है कि सदृष परिणामरूप प्रत्येक मे भिन्न–भिन्न अनेक सत्त्व तिर्यक सामान्य है। जैसे अनेक मनुष्यों मे यह कहना कि मनुष्यत्व हैं यह तो है तिर्यक सामान्य और एक ही मनुष्य के बालकपन, जवान, बुढ़ापा आदिक सब दषाओं में मनुष्यत्व बताना यह है अर्द्धता सामान्य। तो प्रकरण में यह बात कही जा रही है कि समस्त वस्तु कथंचित् एक है, कथंचित् अनेक है। तो इसमें जो एकपना बताया गया है वह सदृष परिणाम की अपेक्षा कह सकेगें, पर सभी वस्तुवें वस्तुतः एक हो जायें सो नही है। एक तो वह कहलाता है जो अखण्ड होता है, ये दिखने वाले चौकी , भींट आदिक अनेक पदार्थ है। इनमें से एक चौकी को ही दृष्टान्त में ले लो तो चौकी भी एक नही है। पदार्थ की दृष्टि से चौकी में अनन्त परमाणु है और वे एक –एक परमाणु एक –एक पदार्थ है। तो यों यह सिद्ध हुआ कि तिर्यक सामान्यरूप सत्त्व प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न –भिन्न है लेकिन उपचार से एक कह दिया जाता है।

**सत्ता की सप्रतिपक्षता का वर्णन**– अब शंकाकार यहॉ कहता है कि तब तो तिर्यक सामान्यरूप सत्त्व जबकि प्रत्येक व्यक्तियों मे भिन्न है तो सर्व वस्तु में सत्त्व की अपेक्षा से एकता कैसे घटित होगी ? तो इसके उत्तर में सुनो कि सत्ता सामान्य एक अनेक आदिक है, ऐसा सिद्धान्त में स्वीकार किया गया है वह किस तरह कि व्यक्तिरूप से यद्यपि सत्त्व अनेक है याने जितने पदार्थ है। उतने ही सत्त्व है। पदार्थ ही स्वयं सत् है। उनका तो धर्म है सो सत्त्व है। तो प्रत्येक व्यक्ति में उनका अपना सत्त्व है। अतएव अनेक है लेकिन सत्त्व अपने स्वरूप से हैं यो एक है। पूर्व आचार्यो के वचनों से जो सत्ता को

स्वीकार किया गया है वह सत्त्व के स्वरूप से एक है न कि प्रति व्यक्ति एक सत्ता ही रहती है। सत्त्व का स्वरूप क्या है ? उत्पादव्यय धौव्ययुक्त संत्। उत्पादव्यय ध्रौव्य से तन्मय होता है यह है सत्त्व। और प्रत्येक सत्त्व का यही स्वरूप है ? यह नहीं है कि किसी पदार्थ के सत्त्व का स्वरूप तो उत्पादव्यय ध्रौव्यमय हो और किसी व्यक्ति में उसका स्वरूप अन्य कुछ हो। ऐसा भिन्न होने से सत्त्व एक कहलाता है। तब जो लोग सत्त्व को सर्वथा एक ही मानते है। उनका ही निराकरण है न कि कथंचित् एकत्व का निराकरण है। यदि कोई पुरूष सत्त्व स्वरूप को अनेकपन में ही माने तो पृथक्त्व एकान्त पक्ष का आदर होगा। अनेक व्यक्तियों में सम्मानरूप से रहने वाले एक धर्म को यदि नही स्वीकार करते तब फिर सदृषता की बात कहना भी असम्भव है, क्योकिं सदृषता तो उसे ही कहते है कि पदार्थ तो हो भिन्न–भिन्न , किन्तु उनमें रहने वाले धर्म समान हो उसे कहते है सादृष्य । जैसे कोई कविजन मुख की कल्पना चन्द्र से करने लगते है तो चन्द्र तो भिन्न है, मुख भिन्न है, पर चन्द्र के दो धर्म मुख से उपचारित किये गये है। जैसे चन्द्र एक आल्हादकारी है अथवा जैसे उसका गोल आकार है वैसे ही मुख का भी गोल आकार है। ऐसा कुछ धर्मो की सदृषता से सदृषता और उपमा दी जाती है। जहां कहीं किसी भी वस्तु को किसी के भी समान बताया जाय वहां बात क्या सिद्ध होती है कि वे पदार्थ है तो परस्पर में भिन्न –भिन्न लेकिन उनमें रहने वाला कोई धर्म सदृष मिल जाया करता है इससे भी यह समझिये कि पदार्थ तो परस्पर वस्तुतः भिन्न होते है पर उनमें कई धर्म सदृष हो जाते है। इसी तरह घटत्व रूप एक धर्म को लेकर दो घटों में परस्पर साधर्म्य माना गया है, पर प्रत्येक घट मे ंउनका अपना –अपना असाधारण धर्म है। कोई घट कच्चा है, कोई पक्का है। कोई अच्छी मिट्‌टी का है, कोई साधारण मिट्‌टी का है। यों उन घड़ों में जितने घड़े है उतने ही उनमें अन्तर है। तो वे परस्पर में अत्यंत भिन्न है और अपने –अपने उत्पाद व्यय ध्रौव्य को लिए हुए है। किसी भी घडें का उत्पादव्यय अन्य कोई घड़ा नही कर रहा है। यों भिन्न –भिन्न होने पर घटत्व की अपेक्षा वे समान है इसलिए कथंचित् एक भी कहा गया है। वस्तुतः तो वे घट अनेक हैं। अथवा एक ही घट में उनके परखने के साधन भिन्न –भिन्न है ना। चक्षु के द्वारा रूप देखा जाता है, घ्रारण के द्वारा गंध जाना जाता है, सो यों परखने के भेद से अनेक घट हो सकते है।

**साधारण और असाधारण धर्म की अपेक्षा से सबके ऐक्य और अनेक्य की सिद्धि**– यहॉ प्रसंग की बात चल रही है कि शंकाकार ने यह शंका की थी कि समस्त वस्तुवें कथंचित एक है कथंचित अनेक है। ऐसी भी तो सप्तभंगी लगना चाहिए और तब एक कैसे बन गये समस्त पदार्थ ? उसका उत्तर दिया जा रहा है कि उपचार से एक बन गया है अर्थात जो धर्म समस्त पदार्थो में समानता से पाया जाय उस धर्म की अपेक्षा से वस्तु सब एक है। यो यदि सदृष धर्म की अपेक्षा एक नही माना जाय तो फिर साधारण धर्म और असाधारण धर्म का अन्तर ही क्या ? इसका कथन ही कैसे बन सकेगा ? साधारणपना कहते ही उसे है कि अनेक व्यक्तियों में अन्व्यरूप से जो रहे। जैसे जितने भी जीव है उन सब जीवों मे उपयोग सामान्य साधारण रूप से रह रहा है और उपयोग विषेष यह असाधारण रूप से रह रहा है। अथवा समस्त पदार्थो में साधारणरूप से अस्तित्व , वस्तुत्व , द्रव्यत्त्व , अगुरूलघुत्व , प्रदेषवत्व, और प्रमेयत्व ये 6 धर्म रहते है। इसी कारण इन 6 धर्मो को साधारण धर्म कहा गया है। तो साधारणत्व के कथन से भी यही सिद्ध होता है कि प्रत्येक भिन्न –भिन्न व्यक्तियों में अनुगत रूप से जो धर्म रहता है उसे साधारण धर्म कहते है। यों सत्त्व नामक साधारण धर्म की अपेक्षा से समस्त वस्तुओं को एक ही कहा गया है। और यों सब वस्तुवें कथंचित एक है और कथंचित अनेक है ं यह बात सिद्ध हो जाती है

अनेक तो है ही , इसमें कोई विषेष प्रमाण देने की आवष्यकता नही हैं क्योंकि प्रत्येक वस्तु का अपने आप में जुदा –जुदा परिणमन है। और , वे समर्थ पदार्थ एक है उपचार से अर्थात जो साधारण धर्म उन सब पदार्थो में है जैसे सत्त्व, द्रव्यत्व, वस्तुत्त्व आदिक उनकी अपेक्षा से सभी वस्तुयें एक है। इसी बात को स्वामी समन्तभद्राचार्य ने आप्तमीमांसा में बताया है कि " सत्सामान्यात्तु ससैक्य प्रथग्द्रव्यादिभेदतः। भेदाभेदविवक्ष्ज्ञायामसाधारण हेतुवत् "। भेद अभेद की विवक्षा में असाधारण हेतु के समान उस सामान्य से सबकी एकता है और द्रव्यादिक के भेद से पृथकता भी है अर्थात द्रव्य तो पृथक–पृथक हैं, उनका उत्पादव्यय ध्रौव्य उनका उनमें ही पृथक– पृथक है, इस दृष्टि से तो वे अपनी –अपनी आवान्तर सत्ता लिये हुए है, लेकिन सत्ता समान्य की अपेक्षा से देखा जाय तो सब एक है। तो परमार्थतः विचार करने पर तो यह सिद्धान्त होता है कि जो परिणमन जिसमें अभेदरूप से होता है बस वह एक पदार्थ है। यों अपने स्वरूप से परिणमने वाले पदार्थ एक– एक हैं। उनमें सदृष धर्म को निरख करके कहा जाता है कि ये सब पदार्थ एक है। यो सब वस्तुओं में भी स्याद् एक स्याद् अनेक इस प्रकार के भंग घटित हो जाते है।

**'स्व स्यादेक स्यादनेक' की उदाहरणपूर्वक सिद्धि**– स्याद् एक अनेक के बोध के लिए एक उदाहरण है– हेतुपक्षाधर्मत्व आदिक भेद विवक्षा में अनेक हैं और हेतुपने की अपेक्षा से एक है। हेतु मे पक्षधर्मत्व सपक्षसत्त्व और विपक्षव्यावृत्ति ऐसे 3 धर्म माने गए है। तो हेतू इन 3 धर्मो को देखा जाय तो पृथक –पृथक धर्म के आषय मे हेतू पृथक –पृथक रूप से विदित होगें। और, तब हेतू अनेक हो गया। फिर भी वे तीन प्रकार के हेतु जो उदाहरण रूप मे कहे है जिसमें पक्षधर्मत्व है व जिसमें सपक्ष सत्त्व है व जिसमें विपक्ष व्यावृत्ति हैं, ये तीनो ही हेतु ही तो है। सों वे एक ही तो है। यों हेतु रूप से देखने पर वह एक है। इसी प्रकार सर्वसत् एकं अनेकं , सबको सत्त्व की ओर से देखा तो सत्त्व की अपेक्षा से सारा विष्व एक है, पर जीवद्रव्य, पुद्गलद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाषद्रव्य, कालद्रव्य यो द्रव्यादिक के भेद से वे अनेक है। इस प्रसंग मे एक का भेदवान् द्वितीय भंग है, यह भी बात घटित कर सकेगें कि जैसे स्याद् नित्यः और स्याद् अनित्यः इस प्रयोग में की हुई शंका के समाधान मे कहा था। यहां भी यह शंका की जा सकती है कि हेतु कथंचित एक है और कथंचित अनेक है। इसका अर्थ है एक का भेद हो गया, एकत्व को खत्म कर दिया तो एक का जो भेदन है सो वहां यह बोला जायेगा कि पर्याय से सहित एक भेदवान हेतु है। तो यह अर्थ तो अयुक्त रहेगा, क्योंकि जो एक है उसमें एक का भेद कैसे बनेगा ? क्योंकि भेद तो व्याप्यवृत्ति होती है। जितना एक है उस सबमें ही एक का भेद न रहे तो यह कैसे सम्भव है ? ऐसी शंका का उत्तर पूर्ववत ही यों दिया जायगा कि पर्याय से सहित हैं, इस रूप से भेद है। जैसे वृक्ष उन शाखा आदिक में संयोगी है। वहां बन्दर आदिक चढें हुए है और वृक्ष के मूल देष में संयोगी भेद है। तो भेदवान व्याप्यवृत्ति ही हो यह नियम नही हैं। वह एक देष में होता , वह एक देष मे होता, बल्कि भेद प्रायः अव्यावृत्ति ही होता है। तो यों स्याद एक के साथ लगा हुआ जो स्याद् अनेक नाम का दूसरा भंग है उसका वाक्यार्थ ठीक ही घटित हो जाता है।

**'"स्याज्जीवः स्यादजीवः" सम्बन्धी सप्तभंगी**– अब जैसे अब तक अनेक प्रकार की सप्तभंगियॉ दिखाई गई है उनमें से एक सप्तभंगी जीव के सम्बन्ध में भी बताते है। यों कहना कि यह कथंचित् जीव है और कथंचित् अजीव है, ये मूल में दो भंग हुए। इनका वाक्यार्थ क्या हुआ ? कि देखों ! उपयोगरूप से तो यह जीव है और अप्रमेयत्वादिक अन्य धर्मो के रूप से यह अजीव है ऐसा अकलंकस्वामी ने भी बताया है कि 'प्रमेयत्वादिभिर्भमैंरचिदात्मा चिदात्मक : । ज्ञान दर्षनतस्तस्माच्चेतनाचेतनात्मकः।'

प्रमेयत्वादिक धर्मो से तो जीव अचेतनरूप है और ज्ञानदर्षन उपयोग से जीव अचेतनरूप है। यों यह जीव चेतनस्वरूप और अचेतनस्वरूप दोनो प्रकार से परखा जाता है। तात्पर्य यह है कि जीव एक द्रव्य है। द्रव्य में साधारण गुण और असाधारण गुण रहा करते है। तो जीव में जो असाधारण गुण है वह तो है चेतन। उसकी दृष्टि से तो यह पदार्थ जीव है और उसमें जो साधारण गुण है अस्तित्व , वस्तुत्व, प्रमेयत्व आदिक तो ये धर्म जैसे अचेतन में रहते है। ऐसे ही इस जीव में भी रहे। दूसरी बात यह है कि इन धर्मो का स्वयं का स्वरूप चैतन्यात्मक नही है। अस्तित्व का स्वरूप सत्ता कायम करना हैं। वस्तुत्व का स्वरूप स्वद्रव्य से होना, परद्रव्य से न होना। प्रमेयत्व  धर्म का स्वरूप ज्ञान में ज्ञेय बन जाना है। तो यह सब स्वंय चिदात्मक नही हैं। तो यों इन धर्मो की दृष्टि से देखने पर यही जीव चेतनात्मक विदित न हुआ, तब ये दो भंग हुए कि कथंचित् यह जीव है और कथंचित यह अजीव है। इस प्रसंग में अजीववृत्ति प्रमेयत्वादिक धर्मो वाला होना, यह तो है अजीवपना याने प्रमेयत्वादिक धर्म अजीव मे रहते है और उन प्रमेयत्वादिक धर्मो से युक्त यह है तो यह भी अजीब दीख गया। और , जीवत्व के मायने है ज्ञानदर्षनादिक स्वरूप होनां तो यों यह पदार्थ कथंचित् जीव है और कथंचित अजीव है, इस प्रकार मूल के दो भंग सिद्ध होना चाहिए फिर तो शेष 5 भी उसके बन जाते है। तब इसकी सप्तभंगी इस प्रकार हुई  कि कथंचित् यह जीव है और कथंचित यह अजीव है। कथंचित् जीव अजीव है। कथंचित् यह अवक्तव्य है।, कथंचित जीव अवक्तव्य है और कथंचित अजीव अवक्तव्य है। और कथंचित यह अजीव अवक्तव्य है।

**अनेकान्तवाद में छलके सन्देह का अनवकाश**— अब शंकाकार यहॉ कहता है कि यह अनेकान्तवाद तो हमें कोरा छल ही दिख रहा है। यों बोलना कि वही है, वही नही है, वही नित्य है, वही अनित्य है। इस तरह की निरूपणायें की जा रही है अनेकान्तवाद में यह तो छल मात्र जचता हैं। इसके समाधान में कहते है कि अनेकान्तवाद को छल मात्र कहने की बात युक्तिपूर्ण नही है क्योंकि इसमें छल का लक्षण घटित नही होता। छल का लक्षण यह है कि अन्य अभिप्राय से तो बात कही गई और अब उस कथित बात का अर्थ दूसरा रचकर दूषण कर दिया जाये तो वह छल कहलाता है। याने बात कही हो किसी न किसी अभिप्राय से और अर्थ लगा देवे अन्य अभिप्राय का, और फिर दूषण देवे तो यह छल है। जैसे किसी ने कहा कि नवकम्बलः अयं देवदत्तः ? जिसका प्रकृत अर्थ यह है कि देवदत्त कोई नया कम्बल ओढ़कर आया हुआ था उसे देखकर किसी ने कहा कि यह देवदत्त नवकम्बल वाला है याने नये कम्बल वाला है नव यहॉ नव के दो अर्थ होते है। एक नव का अर्थ है नया और एक नव का अर्थ है संख्या के 9। तो उसने कहा कि यह नवकम्बल वाला है अर्थात नये कम्बल वाला है। तो कोई दूसरा उसे नीचा दिखाने के लिए कह उठता है— वाह रे वाह तुम कैसा असत्य कह रहे हो । देवदत्त तो बेचारा गरीब हैं उसके पास तो दो कम्बल भी नही है और तुम कह रहे हो । देवदत्त 9 कम्बल वाला है। तो देखों यहां दोनो के अभिप्राय में ही भेद है। एक का अभिप्राय है नव अर्थात नये कम्बल वाला और एक का अभिप्राय है नव अर्थात 9 कम्बल वाला। तो यह कहलाया छल कि कहा तो किसी अभिप्राय से कुछ और अर्थ लगाया किसी अन्य अभिप्राय से दूसरा। तो उसे दूसरे अभिप्राय की बात उपस्थित करके उसे दूषित ठहराना यह है छल । लेकिन अनेकान्तवाद में यह पद्धति नही है कि किसी अभिप्राय से कोई शब्द बोला जाय और उसका अर्थ दूसरा बनाया जाये। वहॉ तो केवल स्यात् शब्द लगाकर यह स्पष्ट संकेत कर दिया जाता कि यह अमुक दृष्टि से ऐसा ही है। तो छल का लक्षण अनेकान्तवाद में घटित न होने से इसको छलमात्र नही कह सकते। अनेकान्तवाद तो स्पष्ट एक प्रमाणभूत पद्धति है। जिसके बल से

पदार्थ का यथार्थ निर्णय होता है। कभी कोई यह कहे कि किसी एक देवदत्त के प्रति यह पिता है। बड़ा हो जाने पर, उम्र   में उस लड़के से अधिक होने पर लोग कहते है कि अब तो बाप बन गया। तो यह बाप भी है और यह बेटा भी है। यह तो छल की बात है। सो इसमें छल जरा भी नही। परिचयी लोग उसका स्पष्ट अर्थ लगा लेते है कि उत्पन्न हुए लडके की अपेक्षा से तो यह पिता है और अपने पिता की अपेक्षा से यह पुत्र है। तो छल की बात वहॉ नही है। इसी प्रकार अनेकान्तवाद में स्यात् शब्द कहकर सब स्पष्ट कर दिया जाता है कि इस अपेक्षा से यह तत्त्व है। तो अनेकान्तवाद में इस छल का कोई अवकाष्ञ नही है।

**अनेकान्त को संशय हेतुता मानने की भांका**— अब शंकाकार यहॉ कहता है कि अनेकान्तवाद तो संषय का कारण है, क्योकिं एक वस्तु में विरोधी अस्तित्त्व नास्तित्व आदिक धर्म सम्भव ही नही है। संषय का लक्षण यह है कि एक वस्तु का विषेष्य करके उसमें विरूद्ध नाना धर्मो के प्रकार का ज्ञान करना तो संषय है। जैसे सुबह कुछ अंधेरे उजाले के समय में कोई पुरूष घूमने गया, उसे बहुत दूर से कोई ऊंची सी चीज दिखी , वह पुरूष जैसी चीज भी हो सकती थी अब वहां उसे इस प्रकार का ज्ञान बन रहा है कि यह ठूंठ है या नहीं, तो यहां देखिये !कि एक धर्मी को तो विषेष्य बनाया।जो कुछ पदार्थ आंखो दिख रहा है वह तो है विषेष्य जिसको कि यह कहकर बताया है ठूंठ है या नही ।तो यह कहकर जिसका परिज्ञान किया गया है वह तो एक धर्मी विषेष । अब उसमें स्थाणपना हैं या उसका अभाव है इस तरह का ज्ञान बन रहा है तो यह संषयज्ञान हुआ। एक विषेष्य पदार्थ में विरूद्ध धर्म को विषेषण रूप से ज्ञान करने का नाम संषय ज्ञान है, तो इस प्रकार अस्तित्व नास्तित्व आदिक विरूद्ध धर्म भी हुए तो विषेषण और उन विषेषणों से सहित घट आदिक पदार्थ विषेष्य का ज्ञान किया गया तो यहॉ इस ढंग का जो अनेकान्तवाद कहा है वह तो संषय का कारण है। अतः अनेकान्तवाद कोई संयुक्त शासन और पद्धति नही है।

**अनेकान्त में संशय का लक्षण घटित न होने से संशय हेतु का अभाव** — अब उक्त शंका के उत्तर में कहते है कि अनेकान्तवाद को संषय हेतु बताना अथवा वह संषय का कारण है, ऐसा संषय करना योग्य नही है, क्योकि संषय का जो विषेष लक्षण है वह यहॉ नही पाया जाता। यहॉ तो अनेकान्तवाद में निष्चयात्मक विषेष लक्षण पाया जाता है। देखिये ! संषयज्ञान होता कब है कि सामान्य का तो प्रत्यक्ष हो अर्थात जो उन दोनो विषेषणो में सर्व सम्भव हो उसका तो हो रहा हो प्रत्यक्ष। याने जिन दो तत्वों को सन्देह किया गया है उन दो में प्रतिव्यक्ति अलग–अलग जो विषेष धर्म पाये जा सकते है उन विषेष धर्मो का ज्ञान हो नही रहा। लेकिन उन विषेष धर्मो की स्मृति हो रही है। उस समय में संषय ज्ञान होता है। जैसे उस वस्तु में ठूठ अथवा पुरूष दोनो ही संभव हो सकते है। तो जहॉ न अधिक प्रकाष है न अंधकार है ऐसे मलिन समय मे किसी पुरूष को एक ऊंचा सा दीखा तो यह ऊंचापन तो सामान्य हुआ। उतनी ऊंचाई ठूंठ मे भी सम्भव है और पुरूष में भी । तों दोनो में सम्भव हो सकने वाली ऊंचाई तो देख लिया। अब उन दोनो में जो असाधारण धर्म है, जैसे ठूठ के धर्म हैं। कुछ टेढ़ा सा कोटर होना, उसमें पक्षियों का घोसला होना आदिक जो कुछ ठूठ के हो सकते है। उनको इस पुरूष ने नही देखा। वे जानने में ही नही आये। अथवा पुरूष मे जो विषेष धर्म हो सकते है कि कोई वस्तु धारण किए हो, चोटी हो , हाथ– पैर हो। ऐसे कुछ विषेष भी वहां जानने मे नही आये लेकिन उन दोनो का स्मरण जरूर है कि ठूठ मे यह धर्म होता है। तो ऐसी स्थिती में जहॉ पुरूष और ठूठ दोनो पाये जाने वाले साधारण धर्म का तो प्रत्यक्ष हो रहा है और दोनो में विषेष पाये जाने वाले लक्षण का वहॉ ज्ञान नही हो रहा किन्तु विषेष लक्षण का स्मरण हो रहा तो

वहाॅ संषय ज्ञान बना लेकिन अनेकान्तवाद में तो विषेष लक्षण की उपलब्धि निष्चित रूप से हो रही है संषयज्ञान तो वहां बनता कि सामान्य ज्ञान की उपलब्धि न हो, और दोनो विषेष लक्षणों की स्मृति हो , किन्तु अनेकान्तवाद में तो विषेष लक्षण की उपलब्धि तो स्पष्ट और निर्बाध हो रही है, क्योकिं स्याद्वाद्व से प्रत्येक अर्थ मे अपने स्वरूप और पर के रूप इन विषेषों की स्पष्ट उपलब्धि है। इस कारण अनेकान्तवाद में संषय का कारण नही कहा जा सकतां। क्योकि में बिल्कुल स्पष्ट विषेष लक्षण की उपलब्धि है। जब कहा स्यादनित्यः घटः तो निष्चय रूप से यह कहा गया कि द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से घट नित्य ही है। एवकार शब्द से भी प्रयोग हो रहा है। जो निष्चय का सूचक है। स्याद् अनित्यः घटः पर्यायदृष्टि की अपेक्षा से घट अनित्य ही है। अब इसमें संषय का स्थान क्या ? जो विषेष लक्षण है उनकी स्पष्ट उपलब्धि है और एवकार शब्द देकर उनका पूर्ण निष्चय कराया गया है। इस कारण अनेकान्तवाद में संषय का अवकाष नही है।

**अनेकान्त में विशेश लक्षण की उपलब्धि मानने पर संशय की दुर्निवारता की आशंका**— अब शंकाकार यहाॅ कहता है कि विषेष लक्षण की उपलब्धि भी मान ली जाय अनेकान्तवाद में तब भी संषय का निराकरण करना कठिन है। संषय तो यहां सिद्ध होता है। जैसे बतलाओ घट आदिक पदार्थ में अस्तित्व आदिक धर्मो के साधक प्रतिनियत हेतु है या नही ? यदि कहोगे कि घट आदिक में अस्तित्व धर्मो के साधक कोई प्रतिनियत हेतु नही है तब तो जिसमें कोई हेतु नही , जो विवादग्रस्त है , उसका तो प्रतिपादन ही नही हो सकता। और जिसका प्रतिपादन नहीं हो सकता उसके सम्बन्ध में निष्चय चर्चा मार्ग आदिक कुछ नही बताया जा सकता। यदि कहो कि घट आदिक पदार्थो का अस्तित्व आदिक कुछ नही बताया जा सकता। यदि कहो कि घट आदिक पदार्थो का अस्तित्व आदिक धर्मो के साधक प्रतिनियत हेतु है तो संषय तो अपने आप सिद्ध हो गया। क्योकिं एक वस्तु में परस्पर विरूद्ध अस्तित्व और नास्तित्व आदिक धर्मो के साधक हेतू पाये जा रहे है। वस्तु है एक और उसमें अस्तित्व को सिद्ध करने वाला भी  हेतु है और आप नास्तित्व को सिद्ध करने वाला भी हेतु । तो परस्पर विरूद्ध धर्म की सिद्धि करने वाले हेतु पाये जा रहे है। तब तो संषय दुर्निवार हो गया। जैसे उस विवादापन्न ऊंची चीज मे कुछ लक्षण पाये जायें ठूठ के और कुछ लक्षण पाये जा रहे पुरूष के है, अथवा ठूठ के लक्षण ज्ञात हो रहे है तब तो संषय होगा ही। यों तो एक वस्तु में अस्तित्व धर्म के हेतु  भी पाये जा रहे है और नास्तित्व धर्म के पाये जा रहे हैं। तब तो संषय होना तो बिल्कुल ही दुर्निवार है। संषय का निवारण नही किया जा सकता।

**अवच्छेद भेद की अर्पणा में परस्पर विरूद्ध लक्षण वालें धर्मो का एक धर्मी में अविरोध होने से अनेकान्तवाद में संशय का अनवकाश**— अब उक्त शंका के उत्तर में कहते है कि विषेष लक्षण के साधक हेतु बताकर संषय की बात लगाना युक्त नही हैं। क्योकिं अस्तित्व और नास्तित्व का पृथक करने वाले भेद के द्वारा जब उनकी विवक्षा की जाती है तब इनमें विरोध नही रहता। जैसे कि एक ही देवदत्त में एक की अपेक्षा से पितापन कहना और अन्य की अपेक्षा से पुत्रपन कहना , ये दोनो ही परस्पर विरोध रहित है। जैसे देवदत्त के पुत्र का नाम हो यज्ञदत्त और पिता का नाम हो सोमदत्त, तो अब यज्ञदत्त की अपेक्षा से तो देवदत्त पिता हुआ और सोमदत्त की अपेक्षा से देवदत्त पुत्र हुआ। अब उस एक देवदत्त में पितापन भी आ जाना और पुत्रपन भी आ जाना इसमें क्या कुछ विरोध है ? कुछ भी विरोध नही। क्योकिं पितापन और पुत्रपन को पृथक करने वाले भेद उसकी दृष्टि में है अथवा देखिये जो हेतू अन्वय व्यतिरेकी होता है अर्थात जिस हेतु का अन्वय व्यतिरेकी दृष्टान्त , अन्वय व्याप्ति व्यतिरेकी व्याप्ति बनती है उस हेतु का तो सपक्ष

सत्त्व हैं और विपक्ष असत्त्व भी है। तो कया ये दोनो विरूद्ध है ? ये परस्पर अविरूद्ध है। जैसे अनुमान किया गया ि कइस पर्वत मे अग्नि होनी चाहिए धुवॉ होने पर से।तो यहां हेतु दिया गया है धुऑ, यह हेतु अन्वय व्यतिरेकी है। इसका अन्वय व्याप्ति में भी दृष्टान्त है और व्यतिरेकी व्याप्ति में भी दृष्टान्त है। अन्वय व्याप्ति भी बन गया जहां –जहां धुवॉ होता है , वहॉ –वहॉ अग्नि होती है जैसे रसोईघर । तो देखों – यहां अन्वय दृष्टान्त याने सपक्ष मे हेतु का पाया जाना बनाना। और जब इसकी व्यतिरेकी व्याप्ति बनायी जाती है जहां अग्नि नही होती , वहां धुऑ भी नही होता है। जैसे कि तालाब। वहां अग्नि नही धुऑ भी नही ।तो इस विषय हेतु का विपक्ष है तालाब। जहां साध्य का अभाव पाया जाय उसे विपक्ष कहते हैं। तो विपक्ष में धुऑ का असत्त्व हैं। तो हेतु का सपक्ष में होना सत्त्व और विपक्ष में होना अत्त्व होना। ये दोनो बातें परस्पर में विरूद्ध हैं। अर्थात् उस हेतु में पाये जा रहे है। सपक्ष सत्त्व और विपक्षासत्त्व इन दोनो को पृथक करने वाला कोई भेद दृष्टि में बताकर मौजूद है। उस अपेक्षा से इन दोनो में परस्पर कोई विरोध नही हैं। इसी प्रकार समझना चाहिए कि अस्तित्व और नास्तित्व में परस्पर कोई विरोध नही है। घट अपने स्वरूप से है पर अपने रूप से नही है। तो यहां अस्तित्व को सिद्ध किया गया है स्वरूप से और नास्तित्व को सिद्ध किया गया है पररूप से। तो अस्तित्व और नास्तित्व को पृथक कर देने वाला अर्थात अस्तित्व से पृथक हैं नास्तित्व और नास्तित्व से पृथक हैं अस्तित्व ऐसे। किसने बताया ? स्वरूप और पररूप न। अस्तित्व का सम्बन्ध स्वरूप से है पररूप से नही। नास्तित्व का सम्बन्ध पररूप से है स्वरूप से नही। इस प्रकार दोनो को पृथक कर देने वाला स्वरूप और पररूप की जब विवक्षा होती है तो उस विवक्षा में अस्तित्व और नास्तित्व एक वस्तु में बराबर सिद्ध हो जाता है। उनमे परस्पर में किसी भी प्रकार का विरोध नही है। विरोध की बात तो दूर जाने दो। बल्कि यह बात वहां पायी जाती है कि इन दोनो में से यदि एक न हो दूसरा भी न रहेगा। जैसे घट स्वरूप से है, पररूप से नही है। घट घडें के रूप सें है, कपडा के रूप से नही है। अब इनमें से किसको मना करोगे ? यदि कहोगे कि घडारूप से है , यह बात गलत है। तो लो घड़ा कही कुछ न रहा। यदि कहोगे कि कपड़ा रूप से नही है यह गलत है तो अर्थ हुआ कि वह कपड़ा रूप हो गया। फिर वह घड़ा कह रहा तो अस्तित्व और नास्तित्व का विवक्षावष कोई विरोध नहीं। अतः अनेकान्तवाद में संषय के लिए कोई स्थान नही है।

**भांकाकार द्वारा प्रस्तोतव्य विरोधादि और दोनो में प्रस्तुत विरोध दोश** – शंकाकार कहता है कि अनेकान्तवाद में तो विरोध आदिक 8 दोष सम्भव हैं। ये 8 दोष है– विरोध, वैयाधिकरण, अनवस्था, संकट, व्यतिकर, संषय , अप्रतिपत्ति और अभाव। उनमें से विरोध की बात सुनो! देखिये ! एक वस्तु में विधि और प्रतिषेधरूप अस्तित्व और नास्तित्व धर्म सम्भव नही होते है, क्योकिं भाव और अभाव का परस्पर विरोध होता है। जैसे कि ठंड और गर्मी का परस्पर विरोध है जहां ठंडा है वहां गर्म नही। जहां गर्म है वहां ठंडा नही। जैसे ही जिस पदार्थ में अस्तित्व है उस पदार्थ में नास्तित्व नही रह सकता, और जहां नास्तित्व हैं वहां अस्तित्व नही रहता , क्योंकि अस्तित्व तो है भावरूप ,जो कि विधि पद्धति से ज्ञान का विषय होता हैं, और नास्तित्व हैं प्रतिषेधरूप जो कि वहां इस शब्द से समझी गई प्रतीति का विषय हैं। तो जहां अस्तित्व का विरोध हैं, वहां नास्तित्व का अविरोध होता है। यों एक पदार्थ में अस्तित्व और नास्तित्व का विरोध है। अतः सप्तभंगी मे स्यात् अस्ति , स्याद्नास्ति ये भंग ही नही बनते । एक बात कुछ कहना चाहिए। दो धर्म एक वस्तु में सम्भव नही हो सकते।

**एक वस्तु में सत्त्व असत्त्व आदि नाना धर्मो के विरोध का परिहार**— अब उक्त शंका के उत्तर में कहते है कि देखिये ! जब किसी अपेक्षा से वस्तु मे अस्तित्व और नास्तित्व प्रतिभासमान हो रहे है तब उनका विरोध कैसे कहा जा सकता है। सभी जन जानते है कि घट अपने स्वरूप से है, पर के स्वरूप से नही हैं। तब दोनो बातें बराबर उपयुक्त हो रही है, तो उनका विरोध कैसे कहा जा सकता है? विरोध होता है अनुपलम्भ द्वारा साध्य , अर्थात वह यदि एक जगह नही मिलता है तो समझिये कि विरोध हो रहा है। जैसे जिन जानवरों में विरोध हैं वे एक ही जगह कहॉ मिलकर रहते है ? किन्तु भाव और अभाव ये तो एक वस्तु में प्रतीत हो रहे है। घट अपने स्वरूप से पररूप से नही है यह बात तब प्रतीत हो रही है, जिस ही समय स्वरूपादिक से वस्तु की सत्ता पायी जा रही हैं। उसी समय पररूपादिक से असत्त्व भी पाया जा रहा है, क्योकिं जैसे स्वरूप से सत्त्व है इसी प्रकार पररूप से असत्त्व है, यह बात प्रतीति सिद्ध है। एक ही समय भाव और अभाव एक वस्तु में पाये जा रहे है फिर उनमें विरोध कैसा ? देखिये ! वस्तु सत्तात्मक ही है, भाव भावरूप ही है। यदि वस्तु को सर्व प्रकार से भावरूप मान लिया जाय तो स्वरूप की तरह पररूप से भी उसका भाव बन बैठेगा। जैसे स्वरूप से घट है इसी प्रकार पररूप से भी घट बन बैठेगा। फिर कुछ रहा ही नही। इससे दोनो बातें माननी होगी कि स्वरूप से तो अस्तित्व है। पररूप से नास्तित्व है। सर्वथाा अस्तित्व ही है, यह बात भी नही मान सकते। इसी प्रकार यह भी नही माना जा सकता कि वस्तु का सर्वथा अभाव ही है। यदि वस्तु का अभाव कहा जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि जैसे घट पररूप से नही है। इसी तरह स्वरूप से भी नही है।यह बात बन बैठेगी। इस कारण बोला गया कि वस्तु का सर्वथा अभाव ही स्वरूप नही है। वस्तु भाव भावात्मक है और वे दोनो बातें एक पदार्थ मे एक साथ पायी जाती है। इस कारण उनमें विरोध की बात नही कही जा सकती।

**घट है पटादि नही हैं यों प्रयोग का औचित्य बताकर भांकाकार द्वारा द्वितीय भंग को भंग करने का प्रस्ताव**— अब शंकाकार यहॉ कहता है कि देखिये ! पररूप से असत्त्व होने का नाम तो पररूप से असत्त्व है इसका अर्थ क्या है ? पररूप का असत्त्व । सो घट मे पटस्वरूप का अभाव होने पर घट नही है यह नही कहा जा सकता, किन्तु यह समझना चाहिए कि पट नही है। जैसे कथंचित घट है। तो कथंचित घट नही है। इस तरह दूसरी बात न कहनी चाहिए , किन्तु पट नही हैं। यों कहना चाहिए। जैसे कि कमरे में घट का अभाव है तो उस समय यह कहा जाता न कि कमरे में घट नही हैं। कि यों ही कोई कह बैठता है कि कमरा नही हैं। तो जैसे कमरे में घट नही है इस तरह के वाक्य की प्रवृत्ति होती है उसी प्रकार घट में पट का स्वरूप नही है। तो यों कहना चाहिए कि पट नही है। उसको यों कयो कह रहे हो कि कथंचित घट है और कथंचित घट नही है। घट है पट नही है, इस तरह से प्रयोग होना चाहिए। तो आपके दोनो प्रयोग बन जाते है। यों प्रयोग न करके घट है, घट नही है, यो दूसरा प्रयोग उचित नही बैठता है।

**घट में पररूप के नास्तित्व की घटनिशठधर्मता होने से द्वितीय भंग के प्रयोग की निर्वाधता** — अब उक्त शंका के समाधान में कहते है कि यह शंका युक्त नही है। क्योंकि विचार करने पर यह शंका निर्मूल हो जाती है। देखिए। आपने पूछा है कि घट में जो परमरूप से असत्त्व है कपड़े में जो कपडें का असत्त्व है। उसका वह असत्त्व है। उसका वहा असत्त्व कपड़ें रूप से नह होने की बातरूप असत्त्व है। पट का धर्म है या घट का यह बताओ ? घट में पट का असत्त्व है यों तो समझने की और बोलने की पद्धति है, पर यहॉ इस सिद्धान्त का निष्चय करे कि घट में पटरूप से जो असत्त्व पाया जा रहा है वह असत्त्व घट का धर्म है या पट का धर्म है ,यह तो नही कहा जा सकता। क्योकिं पट

रूप का असत्त्व पट की अपेक्षा नही है। पट रूपता तो पट में पायी ही  जाती है अन्यथा पट शून्य हो जायगा। पटरूपता का असत्त्व यदि पट का धर्म माना जाय कि पटरूपता का असत्त्व है पट में, तो पट कोई चीज ही नही रही, क्योकि अपना धर्म अपने में नही है। यह तो कहा ही नही जा सकता । अब पटरूप से असत्त्व को आप पट का धर्म मानते हो ता याने पटरूपता का असत्त्व पट मे रहा, फिर पट ही क्या चीज रही ? पट का असत्त्व यदि घट का धर्म मान लिया जाता है तो पट का असत्त्व पट मे है, यह मानना ही पड़ेगा । क्योंकि यदि नही मानते तो फिर वह पट का धर्म घट के आधार से रहे , यह बात नही बन सकती । पटरूप से असत्त्व का होना पट का धर्म मान रहे हो तो वह पट मे ही होनी चाहिए । स्व का धर्म स्वधर्म के आश्रय ही होता है, पट का धर्म घट के जो वितान आतान प्रकार है, उसका भी आधार घट बन बैठेगा। इस कारण यह नही कह सकते कि पट रूप से असत्त्व होना पट का धर्म है। अब यह स्वीकार यदि करते हो कि पट रूप रूप का असत्त्व होना पट का धर्म है तब सारे विवाद  शांत हो गये ।तब यह हुआ कि घट भावस्वरूप है और घट अभाव स्वरूप है । जैसे कि घट का होना घट का स्वरूप होना घट का धर्म है, ऐसे ही घट के स्वरूप से घट का न होना यह असत्त्व भी घट का धर्म है। यों घट भावस्वरूप और अभावस्वरूप बन गया और इस कारण जब घट भावस्वरूप भी है, अभावस्वरूप भी है, तो घट नही है, यह प्रयोग भी युक्तिसिद्धि हो जाता है। अन्यथा अभावरूप धर्म के सम्बन्ध से जैसे घट असत् न होगा, इसी प्रकार भावरूप धर्म के सम्बन्ध से घट सतरूप भी न होगा। घट का स्वरूप से अस्तित्व होना घट का धर्म है, और उसका आधार घट है और इससे ही  यह प्रयोग बनता है कि घट है। इसी प्रकार घट का पररूप से ना होना यह भी घट का धर्म है। ऐसा यह पररूप से नास्तित्व घट के आश्रय है। और तभी यह प्रयोग युक्तसिद्ध हुआ कि घट नही है। यो घट भावाभावस्वरूप है इसके विरोधी की कल्पना अयुक्त है।

**घटनिश्ठाभावप्रतियोगिता के कारण भी पररूपाभाव की घटधर्मता से अविरोध**— अब शंकाकार कहता है कि घट में पररूप के असत्त्व का अर्थ यह है कि घट मे रहने वाले अभाव की प्रतियोगिता और जो घट मे रहने वाले अभाव की प्रतियोगिता है वह पट का धर्म है। घट में रहने वाले अभाव का प्रतियोगी घट है। प्रतियोगी कहते है मुकाबले में एक विरोधी को याने घट का अभाव मायने घट तो घट के अभाव का प्रतियोगी है पट तो पटरूप से असत्त्व होने का जो अर्थ है अर्थात् घट में रहने वाले अभाव का प्रतियोगी होना यह पट का धर्म है। जैसे कि कमरे में घट नही है, इस प्रयोग में कमरे में घट नही है इसका भाव क्या हुआ कि कमरे में रहने वाले अभाव की प्रतियोगिता है और उस ही का नाम है कमरे में नही है। तो कमरे में रहने वाले अभाव की प्रतियोगिता घट का धर्म है। कमरे में जो अभाव है उस अभाव का प्रतियोगी घट हुआ। तो ऐसे ही घट में पटरूप का असत्त्व है। इसका अर्थ हुआ कि घट में रहने वाले अभाव की प्रतियोगिता है और वह प्रतियोगिता पट का धर्म है। उक्त शंका के उत्तर में कहते है कि यह भी  शंका युक्त नही है। भले ही अर्थ यह हुआ कि पट रूप से असत्त्व का नाम है घट में रहने वाले अभाव की प्रतियोगिता। तो इस तरह कहकर भी पररूप का जो अभाव है वह घट का धर्म है, इसमें तो विरोध नही आया। जैसे कि कमरे में घट का अभाव है तो ऐसे घट का अभाव कमरे का धर्म है, इसमें भी कोई विरोध नही आता। तो अर्थ किसी ढ़ंग से ही बनाया जाय पर यह बात अविरूद्ध है कि वस्तु में पररूप का अभाव है। और, वह पररूप का अभाव उस प्रकृत वस्तु का धर्म है। तो ऐसा सिद्धान्त होने पर यह सिद्ध हुआ कि घट भावाभावस्वरूप है। घट सद्भाव स्वरूप है और अभावरूप भी है। स्वरूप से तो सद्भावरूप है और पररूप

से अभावरूप है। इस तरह घट भावरूप अभावरूप और उभयरूप सिद्ध हो जाता है। कंथचित तादात्म्यरूप जो सम्बन्ध है वह सम्बन्धी का ही स्वधर्म है। घट का सद्भावस्वरूप से सत्त्व का होना कथंचित् तादात्म्यरूप से है। घट में पररूप का न होना इस प्रकार का अभाव स्वरूप धर्म घट में कथंचित तादात्म्यरूप से है। यो भावस्वरूप होना अभाव स्वरूप होना ये घट के धर्म है तब उक्त शंका युक्त नही ठहरती कि घट में पररूप का असत्त्व पररूप का धर्म है।

**द्वितीय भंग में "पट नही हैं " इस प्रकार की योजना के औचित्य की पुनः आशंका**— शंकाकार कहता है कि 'चलो इस तरह से घट का भावस्वरूप और अभावस्वरूप यों उभय धर्मत्व सिद्ध कर लो इतने पर भी घट है पट नही है, प्रयोग तो ऐसा ही करना चाहिए, क्योंकि पट के अभाव का प्रतिपादन करने में तत्पर जो वाक्य होगा उसकी प्रवृत्ति इस ही तरह होती है। जैसे कमरे में घट नही है, इस वाक्य का प्रयोग इस कथन में करने की प्रवृत्ति हो रही है कि घट का अभाव हैं, न कि भूतल नही है। इस रीति से प्रयोग होता है। कमरे में घट नही है, इसका अर्थ यह है कि कमरे में घट का अभाव है तो इस बात को बताने के लिए प्रयोग यों ही किया जायेगा। कि कमरे में घट नही है। यों तो कोई प्रयोग नही करता कि कमरा नही है। घट मे पररूपता का अभाव है। यह बताने के लिए यह ही तो कहना चाहिए कि पट नही है। यों तो न कहना चाहिए कि घट नही है। लेकिन आप तो सप्तभंगी में घट है और घट नही है, इस तरह का प्रयोग करते है। अभाव बोधक वाक्य में अभाव का प्रतियोगी ही प्रधान रहता है। याने अभाव का प्रतियोगी वह पदार्थ जिसका कि अभाव कहा जा रहा है और जो अपने में स्वयं सद्भावरूप है तो जब —जब भी अभाव बोधक वाक्य बोला जायगा तो इसमें अभाव का प्रतियोगी ही प्रधान रहता है ।जैसे यह प्रयोग किया कि घट का प्रध्वंसाभाव कपाल है। कपाल कहते है खपरियों को। जब घट नष्ट हो जाता है तो खपरियॉ बनती है। तो घट प्रध्वंसाभाव खपरियॉ है। इसमें प्रयोग होता है घट नष्ट हुआ कोई यो प्रयोग नही करता कि कपाल नष्ट हुए । घट का प्रध्वंसाभाव कपाल है। तो जिसका अभाव है उसकी ही प्रधानता से कथन होता है। याने घट नष्ट हुआ यह प्रयोग होता है। तो इसी प्रकार घट मे पट का अभाव है तो जिसका अभाव है उसका ही नाम लेकर प्रयोग करना चाहिए कि पट नही है। तो घट का चाहे भाव अभाव उभय स्वरूप सिद्ध कर लिया जाय लेकिन प्रयोग इसी तरह कहना चाहिए कि घट है और पट नही है। तब सप्तभंगी में जो द्वितीय भंग का प्रयोग है वह अयुक्त है।

**पूर्व पूर्वप्रयोगानुसार घट में पररूप के नास्तित्व के "पररूप से घट नही है" इस प्रयोग के औचित्य का समाधान**— अब उक्त शंका के उत्तर में कहते है कि शंकाकार द्वारा इतना तो मान लिया गया कि घट भाव, अभाव व उभय स्वरूप है। विवाद केवल इस बात में रह गया कि घट है और घट नही है। इस प्रकार के भंग बनाकर घट है पट नही है, इस रूप से भंग बनाना चाहिए था। तो इस सम्बन्ध में मूल बात पर आइये। जब यह मान लिया कि घट भाव , अभाव , और उभय स्वरूप है, तो बस इतनी सी बात सिद्ध हो जाने पर सब लोगो का सब विवाद समाप्त हो ही गया, क्योकिं सिद्ध करने की बातें यहॉ वस्तुस्वरूप मे थी कि प्रत्येक द्रव्य भाव, अभाव, और उभयात्मक है अर्थात अपने स्वरूप से है पररूप से नही है। और दोनो प्रकार भाव और अभाव स्वरूप है अब रह गई शब्द प्रयोग की बात घट है स्याद् घट नही है, इस तरह से प्रयोग क्यों नही किया गया ? सो देखियें ! शब्द का प्रयोग पूर्व—पूर्व प्रयोग के अनुसार होगा। जिस सम्बन्ध में पहिले के विवेकी पुरूष जिस प्रयोग को करते आये है उस प्रयोग से ही वाक्य चला करते है,

क्योंकि शब्द का प्रयोग पदार्थ की सत्ता के आधीन नही है, किन्तु प्रयोग करने वाले पुराण पुरूषों के अनुसार होते हैं।

**उदाहरणपूर्वक पट में पररूप नास्तित्व के द्वितीय भंग के रूप में प्रयोग करने के औचित्य का समर्थन**– जैसे दृष्टान्त में लीजिए ! एक वाक्य बोला गया कि देवदत्तः पचति अर्थात देवदत्त खाना पकाता है तो यहॉ पर प्रष्न किया जाय कि देवदत्त शब्द के मायने क्या है? देवदत्त खाना पकाता है, प्रयोग तो यह किया मगर देवदत्त शब्द का अर्थ क्या है ? क्या देवदत्त के मायने है देवदत्त का शरीर। यदि देवदत्त के मायने है देवदत्त का शरीर तो यों प्रयोग करना चाहिए कि देवदत्त का शरीर खाना पकाता है। लेकिन ऐसा प्रयोग कोई नही करता है। अच्छा बतलावों– देवदत्त शब्द का अर्थ क्या यह है कि देवदत्त का आत्मा ? याने वहॉ रहने वाला आत्मा । यदि यह अर्थ है तब तो देवदत्त का आत्मा रसोई बनाता है ऐसा प्रयोग करना चाहिए ।पर ऐसा कौन प्रयोग करता है ? तब तो तीसरी बात यह निष्चय किया कि देवदत्त का अर्थ शरीर सहित देवदत्त का आत्मा । तब यों प्रयोग करना चाहिए कि शरीर सहित देवदत्त का आत्मा खाना पकाता है। पर यों भी कोई नही बोलता। बोला ही यों जाता हैं कि देवदत्त खाना पकाता है। तो इस उदाहरण से आपने समझ लिया ना कि प्रयोग जो होते है वे पूर्व –पूर्व प्रयोग के अनुसार होते है। और जैसा प्रयोग करते चले आ रहे है उस प्रयोग के अनुसार प्रयोग होता है। और उस प्रयोग में उसका सब भाव समझा जाता है। देवदत्तः पचति इतना कहने से वहॉ सब भाव आ जाता है। अब उसमें शब्द की जरा– जरा सी बारीकी देखें वाच्य की और उसमें प्रयोग बदले, फिर तो किसी भी प्रकार ठीक न बैठ सकेगा तो समझना यह चाहिए कि वास्तविकता क्या है ? वस्तु का स्वरूप क्या है? बस उस समझने के लिए ही शब्द प्रयोग है न कि शब्द बोलते जाने के लिए शब्द है। तब इस प्रकरण में भी प्रयोग यह किया गया है कि जो पूर्व–पूर्व संत पुरूषों की धारा से चला आया है। अर्थ उसका क्या है सो शंकाकार ने मान ही लिया है। मानना ही पडेगा। जो वस्तु मे स्वरूप है उसकी बात तो सबको माननी ही पडेंगी । प्रयोग की बात रह गयी थी। उसका जैसे देवदत्तः पचति इसमें 3 विकल्प करके 3 प्रकार के शब्द प्रयोग का प्रसंग होना चाहिए, मगर क्यों नही किया गया इस का प्रयोग ? तो उसका उत्तर है कि पूर्व–पूर्व पुरूषों के प्रयोग नहीं है, इस कारण देवदत्तः पचति प्रयोग से ही उसका अर्थ बताया गया है। बस यही बात यहॉ है। पूर्व–पूर्व प्रकार के अनुसार ही प्रयोग की प्रवृत्ति होती है। सो यहॉ भी घट कथंचित् है। घट कथंचित् ही है, यही प्रयोग युक्त है। जिसका भाव यह है कि घट स्वरूप से है, घट पररूप से नही है। समझना है वस्तु का स्वरूप । क्योंकि हमको अपने ज्ञान की सम्हाल करना है, क्योंकि ज्ञान की सम्हाल में ही आनन्द का लाभ है ।षान्ति का लाभ है। संकटो से मुक्ति पाने की बात है। वह तो सम्यग्ज्ञान से ही होगा। पदार्थ का जैसा स्वरूप है वैसा जानने का नाम सम्यग्ज्ञान है। अब शब्द प्रयोग की बात रह गयी। शब्द प्रयोग मुख्य चीज नही है, क्योंकि उसका उद्देष्य वस्तु स्वरूप का ज्ञान है। अब उस वस्तु स्वरूप के परिचय के लिए जैसा प्रयोग चला आया है बस वही प्रयोग माना जाता है। यों सिद्ध किया गया कि पदार्थ के अस्तित्व का आश्रय लेकर उसका शब्द प्रयोग में आक्षेप करना योग्य नही है। सप्तभंगी में जिस प्रयोग का प्रयोग पूर्व–पूर्व संत करते चले आयें है, वह ही निर्विवाद है और उसमें ही वास्तविकता की झलक हो जाती है क्योकिं ऐसा बोलने में कि घट कथंचित् है, घट कथंचित् नही है यह बात सिद्ध होता है। अस्तित्व और नास्तित्व ये दोनो ही घट के धर्म है।

**घट में पररूपाभाव की घट में भिन्नता व अभिन्नता के विचार में द्वितीय भंग के औचित्य का समाधान**— अब द्वितीय भंग के प्रयोग के सम्बन्ध में और विचार कीजिए जिससे यह बात और स्पष्ट हो जाय। देखियें घट में रहने वाले पररूप का अभाव क्या घट से भिन्न है अथवा अभिन्न है? इस प्रसंग में ये दो पद्धतियॉ जानना है? शंकाकार की ओर से तो पुरूष का अभाव समझ लीजिए। सिद्धान्त की ओर से पररूप की अपेक्षा से अभाव। खैर प्रकृत बात में यह पूछा गया है कि घट में रहने वाला जो पररूप का अभाव है। वह घट से प्रकृत है या घट से अभिन्न है? यदि कहो कि घट में पररूप का अभाव जो बताया गया है वह पररूपाभाव घट से भिन्न है। तो घट से भिन्न होने के कारण पररूपाभावा भी पर हो गया। जो घट से अभिन्न है वह तो होता है घट का स्व और जो घट से भिन्न है वह हो गया पर। अब यहां पररूप का अभाव घट से भिन्न मान लिया तो पररूपाभाव भी पर हो गया। जब पर हो गया तो वहॉ भी अभाव की कल्पना करना चाहिए। यदि पररूपाभाव घट से भिन्न भी है और वहां पर अभाव की कल्पना करते नही हो तो पररूपाभाव घट से पर है यह बात अयुक्त हो जायगी। जो प्रथम पक्ष स्वीकार कर रहे हो, वह प्रथम पक्ष ही न रह पायगा। तो पररूपाभाव के पर न हो पाने से घट आदिक में जो कंथचित् असत्रूपता अनेकान्त पक्ष में मानी गई है उस असत्रूपपने की असिद्धि हो जायगी और पररूपाभाव में भी अभाव कल्पना की जाती है। जैसे कि प्रथम पक्ष मानने पर दूषण दिया गया कि पररूपाभाव यदि घट से भिन्न है तो वह पर हो गया, फिर उसके भी अभाव की कल्पना की जाती है। तो अनवस्था दोष आयगा क्योकिं वह अभाव भी पररूप है। फिर उसका भी अभाव मानियेगा। और, फिर पररूपाभाव का अभाव इसका अर्थ क्या है कि पररूप का अभाव नही। दो अभाव कहने पर विधि बन जाया करती है। तो अब यहॉ यह कह रहे हो घट में पररूपाभाव रूप पर का अभाव है। पट में जो आतान, वितान, तंतु आदिक स्वरूप है उनके अभाव का अभाव है। तो इसका अर्थ यह हुआ कि वे सब घटरूप हो गए। अथवा घट–पट आदिक रूप हो गये, क्योंकि दो का निषेध करने से प्रकृत रूप की सिद्धि होती है। घट के अभाव का अभाव, इसका अर्थ क्या होगा? याने घट। दो अभाव होने पर उसकी विधि बन जाया करती है। ऐसे ही घट में पररूपाभाव का अभाव है ऐसा कहने से क्या अर्थ हुआ कि वह सब पर घटस्वरूप हो गया। तो घट का पररूपाभाव घट से भिन्न है। यह बात तो नही कह सकते । अब द्वितीय पक्ष मानेंगे याने यह कहेंगे कि घट में पररूप का अभाव घट से अभिन्न है तो बस ठीक है यही तो सिद्ध करना था कि घट में पररूप का अभाव घट से भिन्न है और वह घट का धर्म है याने स्वरूप से अस्तित्व का होना जैसे घट का या वस्तु का धर्म है इसी प्रकार पररूप का नास्तित्व होना, पररूपं का अभाव होना यह भी प्रकृत वस्तु का उदाहरण में घट का धर्म है। यही बात सिद्ध करना योग्य था, सो यह द्वितीय पक्ष मानने पर यह सिद्ध हो ही जाता है। तब यहॉ यह स्वीकार कर ही लेना चाहिए कि अपने से भिन्न अस्तित्वरूप धर्म का जैसे घट में सत्त्व माना है उसी प्रकार अपने से अभिन्न पररूप के असत्त्व को भी घट का धर्म मान लेना चाहिए। यों सप्तभंगी में मूल जो दो भंग कहे गए है, घट में स्वरूप से अस्तित्व है, घट में स्वरूप से नास्तित्व है, यों घट भावाभावस्वरूप है, यह बात मान ही लेनी चाहिए।

**भाव अभाव स्वरूप और अभाव भावस्वरूप होने से वस्तु के उभयात्मक होने की भांका व समाधान**— अब शंकाकार कहता है कि देखिये ! स्वरूप से अस्तित्व का होना ही पररूप का अभाव कहलाता है और पररूप से अभाव होने का नाम ही स्वरूप का भाव होना कहलाता है। तो भाव और अभाव इन दोनो का एक वस्तु में भेद न रहा अर्थात भाव अभाव स्वरूप है, अभाव भावस्वरूप है। तब इन दोनो मे भेद न होने से वस्तु

उभयात्मक कही गयी। एकात्मक है, भाव स्वरूप है, उसका भी अर्थ हैं अभाव स्वरूप। अभाव स्वरूप है उनका भी अर्थ भावस्वरूप। याने घट स्वरूप से ही है, इसका अर्थ यह हो गया कि वह पररूप से नही है। घट पररूप से नही है इसका अर्थ यह हुआ कि घट स्वरूप से है। वह तो अर्थ की बात है। वहां दो बातें कहॉ पड़ी है ? तब घट को उभयात्मक नही कह सकते। किसी भी वस्तु को आप उभयात्मक न बता सकेंगे। इस शंका के उत्तर में कहते है कि भाई घट में भाव और अभाव दोनो की जो बातें कही गई है सो जिस –जिस अपेक्षा से है उस– उस निमित्त का भेद होने से भाव और अभाव दोनो भंग कहे जायेगें। यद्यपि शंकाकार का यह कथन एक दृष्टि में सही है कि स्वरूप से भाव होने का नाम ही पररूप से अभाव है, लेकिन स्वरूप से भाव होना इस भाव में अपेक्षा की गई है स्वरूप की, पररूप की। तो अपेक्षणीय जो निमित्त है उसका भेद होने से भाव और अभाव का भेद कहा जाता है, क्योकिं स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूपनिमित्त की अपेक्षा करके तो भाव का ज्ञान होता है और पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा करके अभाव का ज्ञान होता है।

**एकत्व द्वित्व संख्या के उदाहरण पूर्वक स्वरूपाभाव और पररूपाभाव में भेद एवं अभेद की सिद्धि**– जैसे एकत्व द्वित्वादिक संख्या में अपेक्षा के भेद से भेद है, इसी प्रकार एक वस्तु में निमित्त की अपेक्षा से भाव और अभाव का भेद है। देखिये। दुत्व संख्या और एकत्व संख्या इन दोनो की अपेक्षा से भेद यह है कि अन्य द्रव्य की अपेक्षा करके तो दुत्व, तृत्व आदिक अनेक संख्याऐं उत्पन्न होती है और केवल एक अपने आपकी ही अपेक्षा रखा करके एकत्व संख्या बनती है। याने यह वस्तु एक है ऐसा उसे एक बताने में किसी परद्रव्य की अपेक्षा नही करनी पड़ी, किन्तु एक ही उस स्व द्रव्य को ध्यान में रखकर बता दिया गया कि वह एक है, लेकिन जहॉ दो तीन आदिक कहने पड़तें है। जैसा ये केला दो है तो यहां अन्य द्रव्य की अपेक्षा रखकर दो संख्या बनी। तो देखियें। संख्याओं में तो परस्पर भेद हो गया अपेक्षा के भेद से। मगर संख्या जिसकी की जा रही है उस वस्तु से संख्या में भेद तो नही है कि केला तो अलग पड़ें हो और 2,3 आदिक संख्यायें अलग पड़ी हों। यों संख्या संख्येय पदार्थ से भिन्न नही है। तो जैसे एक द्रव्य में द्रव्यान्तर की अपेक्षा करके तो दुत्व आदिक संख्या प्रकट होती है और स्वकीय निज स्वरूप की अपेक्षा रखकर मात्र अन्य की अपेक्षा किए बिना एकत्व संख्या प्रकट होती है मगर वह दुत्व संख्या एकत्व संख्या से अनन्य नही है, भिन्न नही है। ऐसा तो प्रतीत नही होता, अर्थात स्पष्ट समझ में आ रहा है कि एक के मायने अलग है और 2,3, के मायने अलग है। इतने पर भी यह तो देखिये कि वे 2,3 आदिक संख्यायें संख्यावान पदार्थ यदि सर्वथा भिन्न हो जाये तो द्रव्य संख्येय न कहलायेगा फिर उसकी गिनती ही क्या रही ? गिनती भी जुदी हो गई और जिन पदार्थो की गिनती की जा रही वे पदार्थ भी जुदा हो गए। अब गिनती भी न बन सकेगी। तो जैसा गिनती का द्रव्य भिन्न है फिर भी गिनती का आश्रयभूत जो पदार्थ है वह भिन्न नही है। उस ही पदार्थ में गिनती है। ऐसे ही समझना चाहिए कि भाव और अभाव इन दोनो की अपेक्षा के भेद से भेद है। फिर भी भाव और अभाव एक वस्तु में अभिन्नरूप से रह रहे है। वस्तु जुदी हो भाव जुदे हो ऐसा नही है।

**संख्या संख्यावान में सर्वथा अभेद व भेद की असिद्धि की तरह स्वरूप भाव व पररूपाभाव में सर्वथा अभेद व भेद की असिद्धि**– अब शंकाकार कहता है कि जो दृष्टान्त दिया गया है अभी कि जैसे संख्या परस्पर में भिन्न है। क्योकिं उनका अपेक्षणीय भेद है, द्रव्य संख्या द्रव्यान्तर की अपेक्षा से होती है। एकत्व संख्या निज स्वरूप से होती है और जिसपर भी संख्या, संख्यावाद पदार्थ से भिन्न नही है। संख्या संख्यावान में ही

तादात्म्य रूप से है सो  यह बात युक्त नही बैठती कि संख्या संख्यावान से अभिन्न है। संख्या गुण है वह प्रथृक् , पदार्थ है और द्रव्य–द्रव्य ही है, संख्या का द्रव्य मे समवाय सम्बन्ध होने से द्रव्य संख्येय बनता है। यह दोष देना कि संख्या यदि संख्यावान से भिन्न हो जाये तो संख्या अलग हो गयी, संख्यावान पदार्थ अलग हो गया तब तो संषय भी न रहा । उस पदार्थ की संख्या न बन सकेगी। यह बात कहना यों अयुक्त है कि संख्या का जब द्रव्य में समवाय सम्बन्ध होता है। तब द्रव्य संख्येय हो जाया करता है। इस शंका के उत्तर में कहते है कि समवाय कंथचित् तादात्म्य से भिन्न कुछ चीज नही कहलाती। जिसको समवाय सम्बन्ध कहते है। शंकाकार कहता है कि वह सामर्थ्य भी क्या चीज है। दो द्रव्यो के संयोग संबध की तरह नही है। समवाय है कथंचित तादात्यरूप । जैसे पदार्थ में रूप का समवाय है तो पुदगल में रूप तादात्म्य रूप से रह रहा है, यही उसका भाव है।रूप, गुण , अलग है, पदार्थ अलग है, फिर रूप गुण का समवाय होता हो तब पदार्थ रूपी है ऐसी बात नही है। तो समवाय सम्बन्ध कथंचित् तादाम्य रूप ही होता है। इसलिए कथंचित तादात्म्य से अभिन्न कोई समवाय सिद्ध हो सो नही है। तो यों संख्या का संख्येय में कथंचित् तादात्म्य है। तो जैसे संख्या अपेक्षा के निमित्तभूत वस्तु के भेद से परस्पर भेद है फिर भी संख्येय पदार्थ से अभिन्न है। इसी प्रकार भाव और अभाव की अपेक्षा के निमित्त के भेद से भाव और अभाव में भेद है और फिर भी एक पदार्थ में वे भाव और अभाव दोनो रह रहे है। भाव और अभाव का यद्यपि स्वरूप भिन्न –भिन्न है। तिस पर भी दोनो का एक पदार्थ में विरोध नही है, क्योंकि अपेक्षणीय निमित्त के भेद से भाव और अभाव यहां सिद्ध हो रहा है।

**एक वस्तु मे सत्त्व और असत्त्व की प्रतीति का कथन**–शंकाकार यहॉ कहता है कि वस्तु में सत्त्व और असत्त्व की प्रतीति मिथ्या है, क्योंकि सत्त्व और असत्त्व ये दोनों कहां विदित होते है ? या तो यह देखने में आता है कि इसमें सत्त्व है या जब कभी यह दिखने में आता है कि इसमें असत्व है, सत्त्व और असत्त्व दोनो एक वस्तु में नही रहते। भिन्न –भिन्न जगह तो सत्त्व कहीं किसी मे  असत्त्व नजर आता है। पर एक ही पदार्थ में सत्त्व और असत्त्व की प्रतीति होना मिथ्या है। समाधान में कहते है कि भाई एक वस्तु में सत्त्व असत्त्व की प्रतीति में कोई बाधक प्रमाण नही है। यदि कहो कि विरोध बाधक है चूकिं सत्त्व और असत्त्व का एक वस्तु में विरोध है इस कारण यह बाधक प्रमाण हुआ और उससे फिर प्रतीति मिथ्या सिद्ध हो जायेगी। तो उत्तर में कहते है कि ऐसा कहने में तो इतरेतराश्रय आता है, क्योंकि जब पहिले विरोध सिद्ध हो ले तो सत्त्व और असत्त्व का विरोध सिद्ध हो। इस कारण से सत्त्व और असत्त्व में एक साथ वस्तु में पाये जाने की बात मिथ्या नही है किन्तु एक पदार्थ में स्यात सत्त्व स्यात असत्त्व ऐसा ज्ञान परिज्ञान प्रमाणिक पड़ता है।

एक वस्तु में सत्त्व  असत्त्व के रहने में बध्यघातक भावरूप विरोध कहने के पक्ष में दोनो की अवस्थितिका समर्थन– अच्छा, अगर एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के विरोध की ही बात कहते हो तो यह बतलाओ कि देखिये –विरोध होते है 3 प्रकार से । एक बाध्य घातक भाव से याने एक मारने वाला है, है और मर जाने वाला नष्ट हो जाने वाला है। सो एक तो विरोध हुआ करता है बाध्य घातक भावरूप और एक विरोध हुआ करता है सहानवस्थारूप । याने दोनो बातें एक साथ ठहर नही सकती जो एक साथ ठहर न सके। उसका विरोध माना जाता है। तीसरी प्रकार विरोध होता है प्रतिबाध्य प्रतिबाधक रूप याने एक ने रोक रखा और एक रूक गया इस तरह विरोध होता है तो इन तीन प्रकार के विरोधों में से आप किस तरह का विरोध बता रहे है ? तीनो ही प्रकार के विरोध एक वस्तु के सत्त्व असत्त्व में सिद्ध नही होता। जैसे पहिले विरोध की बात पर विचार करें तो बाध्य

घातक भाव के मायने ऐसा ही तो है जैसे सर्प और नेवला का परस्पर बाध्य बाधक है। अथवा जल और अग्नि इनमें परस्पर बाध्य बाधक भाव है। जैसे नेवला सर्प को मार डालता है तो नेवला हुआ बाधक और सर्प हुआ बाध्य , उनका विरोध है। लोक में लोग स्पष्ट जानते है कि नेवले और सर्प का विरोध है जैसे बिलाव और चूहे का विरोध है। तो बाध्य बाधक भाव के मायने है यह। सो बाध्यबाधक विरोध की पद्धति को देखियें। बाध्यबाधक भाव होता है। जहां एक ही समय में दोनो उपस्थित हो। जैसे सॉप और नेवला एक समय मिल जायें, तो उनमें बाध्य बाधक विरोध बन जाता है। एक दूसरे को मार डालता है। तो बाध्यबाधक विरोध बनता ही तब है जब कि दोनो एक ही समय उपस्थित हो । जल गिक अग्नि गर्म कर देती है, अग्नि को जल बुझा देती है। यह बात तब होती जब कि एक ही समय दोनो का संयोग होता है। तो जब ये संयुक्त हुए तब ही तो यह विरोध बनेगा, अगर यह असयुंक्त है तो इसमें विरोध क्या ? एक दूसरे का वध कैसे कर देगा ? तो बाध्यबाधक विरोध बनता ही तब है जब ये एक समय संयुक्त हो जाए। यदि संयोग के बिना ही बाधक अपने बाध्य का विनाष कर दे तब तो सभी जगह सॉप का ,नेवले का, अग्नि का, सब का अभाव हो जायगा, क्योंकि अब तो मान रहे हो यह कि संयोग न होने पर भी इसमें बाध्य बाधक भाव है। लेकिन ऐसा तो नही । उनका संयोग होता है तो उत्तरकाल मे जो बलवान है वह निर्बल का बध कर देता है। सो बाध्य घातक विरोध की पद्धति देख लीजिए । उसमें यह सिद्ध होता है कि एक साधन में एक ही समय में दोनो उपस्थित हुए है। लेकिन आप तो अस्तित्व और नास्तित्व को एक पदार्थ में एक समय में स्थित ही नही करते और इस विरोध में तो यह सिद्ध होता है कि यह विरोध उनमें हैं जो संयोगी है।

**एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के सहानवस्थारूप विरोध का अभाव**– अब यदि कहोगे कि सहानवस्थारूप विरोध है याने सत्त्व और असत्त्व एक साथ उपस्थित नही रह सकते तो यह विरोध भी सत्त्व और असत्त्व में सिद्ध नही कर सकते, क्योकिं वे एक वस्तु मे कालभेद से दोनो विद्यमान होने पर होते है। याने सहानवस्था विरोध होता है। किस परिस्थिती में कि वे दोनो एक वस्तु में रहते है मगर कुछ रहा, पीछे कुछ रहा वहॉ भी तो सहानवस्था विरोध है। जैसे आम के फल मे हरापन और पीलापन का विरोध। जब कच्चा है तब हरा हैं, तब पक गया तो पीला हो गया। तो एक ही आम में रह तो गये दोनो ही, हरापन भी और पीलापन भी, पर कालभेद रहा। पहिले हरापन था, पीछे पीलापन हो गया। तो वहॉ हम कहते है कि पीलापन उत्पन्न होकर इस पीलेपन ने हरेपन को नष्ट कर दिया। तो इस तरह सहानवस्था विरोध वहॉ ही हुआ जहॉ एक पदार्थ में दोनो का रहना सम्भव है। रहें वे पहिले और पीछे लेकिन एक पदार्थ में रहने की बात तो सिद्ध होती है, इसमें इतना तो कबूल कर लिया गया कि अस्तित्व और नास्तित्व दोनो एक पदार्थ में रह सकते है। लेकिन कालभेद से रहे तो क्या आपत्ति है सो सुनो ! यदि अस्तित्व पहिले रहता है तो अस्तित्व के समय में नास्तित्व तो न रहा जैसे घट में अस्तित्व माना। अब पररूप का अस्तित्व है नही । सहानवस्था विरोध के पक्ष में, तो इसका अर्थ यह हो गया कि सारा विष्व घटात्मक हो गया। जीव के अस्तित्व के काल में जीव का नास्तित्व नही मानते। तो इसके मायने है कि सर्व जीव सत्त्वमात्र ही रह गये। , ऐसे ही मानो नास्तित्व के समय में अस्तित्व न रहा। जिस समय पररूप से नास्तित्व की बात कही जा रही थी एक एकान्त मान लिया कि यहॉ तो सर्वथा नास्तिरूप है। अस्तित्व की गुंजाइष नही, तब फिर वह चीज रही ही नही। नास्तित्व ही रहा। एक नास्तित्वरूप रहा तब फिर घट का जो अर्थ कार्य हुआ था पानी रखना आदिक वह कहॉ से किया जाये? फिर तो सब व्यवहार ही खत्म हो जायेगा। अथवा जीव के उदाहरण में नास्तित्व ही मानते , अस्तित्व न मानते, यदि यह

बात जरा भी अंगीकार नही करते तो इसके मायने हुआ कि जब जीव ही नही है तो बन्ध मोक्ष आदिक सब व्यवहार खत्म हो जायेगें। और सर्वथा असत् का अभाव याने नाष अयुक्त न रहा। तब अस्तित्व और नास्तित्व इनका एक साथ सहानवस्था विरोध करना युक्त नही है जीव का अस्तित्व ही तब है जब कि उस ही समय उसमें पररूप का नास्तित्व तब ही तो सम्भव है जब कि जीव का अपने स्वरूप से अस्तित्व हो । यों एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व दोनो का सहानवस्थारूप विरोध भी सम्भव नही हो सकता।

**एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के रहने में प्रतिबध्य प्रतिबन्धक भावरूप विरोध का अभाव**— अस्तित्व और नास्तित्व का प्रतिबध्य प्रतिबन्धक भाव विरोध भी नही बनता क्योंकि प्रतिबध्य प्रतिबन्धक भावरूप विरोध किस स्थिती से बनता है सो सुनो! जैसे अग्नि का काम दाह करना है, किन्तु एक मणि इस प्रकार होती है कि जिसे अग्नि के समीप यदि रख दिया जाये तो अग्नि में दाह नही बन पाता, क्योकि मणि और अग्नि में प्रतिबध्य प्रतिबन्धक भाव बना हुआ है। बहुत से वनस्पति औषधि ऐसे होते है कि यदि पत्ते पर चिपका दिए जाये तो उस पत्ते को अग्नि जला नही सकती ऐसे नौसादर चूना जैसी औषधि को पानी में पीसकर पत्तें पर लगा दिया जाये तो उस पत्तें पर बनी तेनियापर दाल भी पकाई जा सकती है। ऐसा प्रतिबध्य प्रतिबाधक भाव होता है। तो रहे यो वे दोनो एक साथ ना , और प्रतिबध्य प्रतिबन्धक की बात कहॉ रही ? सो मणि और दाह के समान अस्तित्व और नास्तित्व में प्रतिबन्ध नही है कि अस्तित्व के समय में नास्तित्व का प्रतिबन्ध हो या नास्तित्व के समय में अस्तित्व का प्रतिबन्ध हो । एक खत्म हो जाय, एक रूक जाये अपना काम करने से ऐसा नही है क्योंकि अस्तित्व के समय में अगर नास्तित्व अपना काम करने से रूक जाय अर्थात् पररू‌प से नास्तित्व की बात न रहे तो इसका अर्थ यह हुआ कि विवक्षित पदार्थमय ही सारा जहान बन गया। अथवा पररूप के नास्तित्व के काल में स्वरूपास्तित्व काम न कर सके तो स्वरूप ही न रहा, पदार्थ ही न रहा, लेकिन दोनो का बराबर रहना और दोनों का काम होना यह अनुभव सिद्ध बात है। तब यों एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व दोनों का एक साथ न रहने की बात सिद्ध नही होती।

**एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के विरोध में भांकाकार द्वारा दिये गये उदाहरणों के विरोध की सिद्धि का अभाव**— विरोध बताने में जो शीत और उष्ण स्पर्ष का दृष्टान्त दिया है वह भी ठीक नही है। देखों कोई धूपदानी होती है, उसमें अव़च्छेदक के भेद से शीत और उष्ण दोनो स्पर्ष की उपलब्धि होती है। किसी जगह वह धूपदानी ठण्डी है किसी जगह गर्म। अथवा किसी घड़ें में जैसे धूप जलाई जा रही है तो उसमें उस घडें मे शीत और उष्ण स्पर्ष दोनो की उपलब्धि पायी जा रही है। अथवा जैसे एक वृक्ष में चलपना और अचलपना ये दोनों पाये जाते है। पत्ते और टहनियॉ तो चलती रहती है तथा तना अचल रहता है। अथवा जैसे एक घडें में लालरूप , श्यामरूप दोनो की उपलब्धि है, विरोध नही है। या एक ही शरीर में ढ़का हुआ लाल रूप और बिना ढ़का हुआ स्वरूप दोनो ही उपलब्धि सम्भव है कोई विरोध नही है। इसी प्रकार एक पदार्थ में सत्त्व और असत्त्व दोनो की स्थिती रह जाने में किसी भी प्रकार का विरोध नही है।

**एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के रहने में वैयधिकरण्य दोश का अभाव**— अब शंकाकार कहता है कि एक ही पदार्थ में सत्त्व और असत्त्व दोनो को माना जाता वैयधिकरण दोष से युक्त है अतएव यह सप्तभंगी युक्त नही हो सकती। वैयधिकरण कहते हैं उसे कि अनेक धर्मो का भिन्न –भिन्न अधिकरण में रहना और फिर उन्हें किसी एक ही अधिकरण में बताना। जैसे यहॉ अस्तित्व का आधार है अन्य और अस्तित्व का आधार अधिकरण है तो ऐसे भिन्न अधिकरण वाला अस्तित्व और नास्तित्व से एक वस्तु में सद्भाव

बताना यह वैयधिकरण दोष है इसके समाधान में कहते है कि एक ही पदार्थ में अस्तित्व नास्तित्व बताने में वैयधिकरण दोष नही आता । क्योंकि यह तो हर एक के प्रति सिद्ध है कि सत्त्व और असत्त्व का यहॉ एक अधिकरण है। घट है और घट पररूप से नही है तो यहां अस्तित्व का अधिकरण भी घट है और नास्तित्व का अधिकरण भी घट है। याने अस्तित्व किस में बताया गया ? घट मे, नास्तित्व, किसमें बताया गया? घट में। तो इन दोनो धर्मो का अधिकरण एक है यह बात प्रतीति से सिद्ध है। इसी कारण इसमें वैयधिकरण नाम का दोष नही होता।

**एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के मानने में अनवस्था दोश का अभाव**— अब शंकाकार कहता है कि एक पदार्थ में स्वरूप से सत्त्व पररूप से नास्तित्व की बात कहने से अनवस्था का दोष आयगा जिस रूप से अस्तित्व है और जिस रूप से नास्तित्व है उन रूपों मे भी प्रत्येक में अस्तित्व और नास्तित्वपना बताना चाहिए। क्योकि स्याद्वाद शासन की यह टेक है कि हर जगह स्याद्वाद होना चाहिए। जैसे घट का बताना कि स्वरूप से अस्तित्व हैं, तो इस बात को स्याद्वाद से सिद्ध करना होगा। स्वरूप से अस्तित्व है और इसमें भी अस्तित्व और नास्तित्व बताना होगा और अस्तित्व नास्तित्व बतायेंगे किसी स्वरूप की अपेक्षा से , फिर उनमें भी प्रत्येक में जो स्वरूप से अस्तित्व कहा अथवा पररूप से नास्तित्व कहा उस प्रत्येक में भी अस्तित्व नास्तित्वपना बताना होगा। यों उनके लिए फिर तृतीय स्वरूप पररूप लगेगा। वहॉ भी अस्तित्व नास्तित्वपना कहना होगा। यों स्वरूप पररूप अस्तित्व नास्तित्व इनकी परम्परा बतानी होगी और इसका कभी विश्राम नही हो सकता। तब यह अनवस्था दोष हुआ ना ? अनवस्था कहते है उसे कि जहां अप्रमाणिक पदार्थो की परम्परा कल्पित की जाने से विश्राम ही न आये। तो एक वस्तु में जिस रूप से अस्तित्व कहा, उसको सिद्ध करने के लिए फिर अस्तित्व नास्तित्व बताना होगा। फिर उसमें भी प्रत्येक में अस्तित्व नास्तित्वपना बताना होगा। यों अनवस्था दोष सिद्ध हो जायगा। अब इस शंका के समाधान में कहते है कि यहॉ जो अनवस्था दूषण बताया है एक पदार्थ में जिस रूप में सत्त्व है अथवा जिस रूप में असत्त्व है, उनको सिद्ध करने के लिए अन्य अस्तित्व नास्तित्व की कल्पना बताकर जो अनवस्था दोष बताया गया है वह अनेकान्तवाद में नही लग सकता। क्योंकि अनन्त धर्मात्मक वस्तु स्वंय प्रमाण से स्वीकार की हुई है। अनवस्था तो वहां आयेगी जहां अप्रमाणिक पदार्थो में परस्पर कल्पित किया जायगा। पर यहां अप्रमाणिकता तो रंच भी नही है। स्पष्ट तौर पर देख लो कि प्रत्येक वस्तु सत्त्व और असत्त्व स्वरूप है। तो जो प्रमाणसिद्ध बात है उसमें अन्य अप्रमाणिक तत्वों की कल्पना करना युक्त नही है।

**एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के रहने में संकरदोश का अभाव**— अब शंकाकार कहता है कि एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व की कल्पना करने में संकर दोष आयगा। संकर कहते है उस दोष को जहां सब धर्मो की एक साथ प्राप्ति हो जाय। जहां सब अपेक्षाओं की एक साथ उपलब्धि हो । जिस रूप से यहां सत्त्व कहा जा रहा है। तो जब सत्त्व असत्त्व एक ही वस्तु में तादात्म्य है उनमें आधार भेद नही तब जिस रूप से सत्त्व कहा जा रहा उस रूप से असत्व भी बन बैठेगा। जिस रूप से यहां असत्त्व कहा गया है उस रूप से सत्व का भी प्रसंग हो जायगा। क्योकिं जब एक ही पदार्थ में दोनो रह रहे है और एक साथ मिलकर रह रहे है तो उनमें स्वरूप का नियम नही बनाया जा सकता कि अस्तित्व तो इसी रूप से है और नास्तित्व इसी रूप से है। तो यों सबकी एक साथ प्राप्ति होने से संकर दोष होगा। अब उक्त शंका के उत्तर में कहते है कि अनेकान्तवाद में संकर दोष की कल्पना नही हो सकती, क्योंकि इन दोनो धर्मो की स्वरूप

अपेक्षा स्पष्ट भिन्न रू' से प्रतीत हो रही है। अर्थात् घट अपने द्रव्य, क्षेत्र , काल, भाव से है और पर के द्रव्य, क्षेत्र , काल, भाव से नही हो सकता। अस्तित्व पर के द्रव्य, क्षेत्र , काल, भाव से हो ही नही सकता। तो जो प्रतीतिसिद्ध है, प्रमाणसिद्ध है उसमें रूप बदलना और उन सबकी जिस किसी भी धर्म में योजना बनी ऐसे संकर दोष वाली बातें सम्भव नही हो सकती।

**एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के रहने में व्यतिकर दोश का अभाव**— अब शंकाकार कहता है कि एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व की कल्पना करने से तो व्यतिकर दोष हो जायगा। व्यतिकर दोष कहते है परस्पर विषयों में गमन करने को। जिस रूप से सत्त्व कह रहे हो उस रूप से असत्त्व ही रह जाय, सत्त्व न रहे ऐसा भी तो हो सकेगा। जब एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व समान रूप से बिना परदे के साहित्यिक ढ़ंग से मान रहे हो तो वहां यह भी तो हो सकता है कि जिस रूप से सत्त्व हो ही न। अथवाप जिस रूप से असत्व ही कह रहे हो उस रूप से सत्त्व ही रहे, असत्त्व न हो, यों परस्पर के विषयों पर एक दूसरे का अधिकार न बनेगा ।एक दूसरे के विषय में पहुंचेगा। यही तो व्यतिकर दोष है। इस शंका के समाधान में कहते है कि व्यतिकर दोष  की कल्पना करना अविवेक है। जो बात अनुभवसिद्ध है प्रतीतिसिद्ध है, सब लोगो का स्पष्ट समझने मे आ रहा है, वहां विषय बदलना और व्यतिकर दोष बताना यह कैसे सम्भव है ? सब ही लोग प्रत्यक्षतः जान रहे है कि घट का घटत्व घट के रूप से ही है। कहीं घट के रूप से असत्त्व न बन जायगा। घट में नास्तित्व पररूप का ही है। कहीं पर रूप से अस्तित्व न बन जायगा। यह तो साफ बात है। कोई पदार्थ है तो उसमें ये दो बातें न्यायप्राप्त और स्वंयसिद्ध है कि अपने स्वरूप से है, परके स्वरूप से नही है। तो यों प्रतीतिसिद्ध वस्तु में व्यतिकर दोष  की कल्पना नही की जा सकती।

**एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व के रहने के विशय में संशय, अप्रतिपत्ति व अभाव दोश का अभाव**— अब शंकाकार कहता है कि वस्तु को सत्त्वात्मक मान लिया सद्रूप है, असद्रूप है, ये दोनो बातें जब कह रहे है तो वस्तु में फिर यह निष्चय नही किया जा सकता कि वस्तु सद्रूप ही है अथवा असत्त्वमय है। वस्तु में यह ही स्वरूप है, ऐसा ही है, ऐसा निष्चय नही बन सकता। और जहां , निष्चय नही रहता है और अनेक धर्मो का आश्रय किया जाता है, वहां संषयदोष हो जाता है। जैसे किसी पदार्थ में दो धर्म कल्पित किए जा रहे हो कि यह सीप है या चांदी ? तो वहां निष्चय तो हो सका कि यह सीप ही है अथवा चांदी ही है। तो वहॉ संषय दोष हो गया, और संषय दोष होने से वहां कोई निष्चयरूप का ज्ञान न बना। तो यो अप्रतिपत्ति दोष हो गया। और जब अप्रतिपत्ति दोष है उसके सम्बन्ध में कुछ निर्णय ही नही, जानकारी ही नही, तो इसका अर्थ यह हुआ कि सत्त्वात्मक वस्तु का अभाव है। तो यों सत्त्व और असत्त्व का एक वस्तु में कल्पना करना संषय अप्रतिपत्ति और अभाव दोष से युक्त है। अब उक्त शंका के उत्तर में कहते है कि वस्तु के सत्त्व और असत्त्व स्वरूप में संषय , अप्रतिपत्ति और अभाव की कल्पना करना भी युक्त नही है। इस सम्बन्ध में पहिले भी बहुत विस्तार से बताया गया था कि यहां सत्त्व और असत्त्व का संषय नही है, पूर्णरूप से निष्चय है कि वस्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से ही है। वह वस्तु पर के  द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है ही नही। वहॉ संषय को स्थान नही है। पूर्णरूप से निष्चय है और इसी कारण इन भंगो में एव शब्द दिया गया है। इस कारण  न उसमें संषय का अवकाष है और न अप्रतिपत्ति का अवकाष है। स्पष्ट ज्ञान हो रहा है कि पदार्थ है तो है ही अपने रूप से , और यह तब पना तब बन रहा है जब पररूप से नही है। तो यों सत्त्व और असत्त्व दोनो का निष्चय हो रहा है तब अप्रतिपत्ति नही है, और

अप्रतिपत्ति न रहने से स्पष्ट सद्भाव सिद्ध हो जाता है। वहॉ अभाव दोष का अवकाष नही है। तो यों वस्तु को सद्सदात्मक मानने में विरोध आदिक आठों ही दोष सम्भव नही है।

**हेतुवाद में साधकत्व व दूशकतव की स्थिती की भांति एक वस्तु में सत्त्व और असत्त्व की सिद्धि–** अब वस्तु को सत्त्व असत्त्वमय सिद्ध करने के बाद और इनमें शास्त्र और युक्तियों से सत्त्व बताने के बाद इसमें विरोधादिक कोई भी दोष नही है, ऐसा स्पष्ट बताने के बाद अब कुछ उन दार्षनिकों को जो कि मिथ्यादर्षन के आग्रह से तत्त्व का ग्रहण नही कर रहे है उनको सर्वलोक सिद्ध हेतुवाद का आश्रय करके समझाते है तो यह बताते है, कि देखो! हेतुवाद में भी स्वपक्ष और परपक्ष की अपेक्षा से साधकता व बाधकता की बात आती है। जिसको अपने अभीष्ट साध्य की सिद्धि करना है उसे हेतु का प्रयोग अवष्य करना पड़ता है। अनुमान में जिस साध्य को सिद्धि के लिए हेतु अवष्य बोलना पडेगा। तो जो भी हेतु बोला जायगा वह भी हेतु अपने पक्ष का साधक हो और परपक्ष का बाधक हो , यह बात तो होनी ही पडेंगी। अब जब स्वप़क्ष साधकता और परपक्ष दूषण ये दोनो बातें हेतु में आ गयी तो अब देखिये! हेतु इन दो धर्मोरूप हो गया ना ? जैसे कि प्रकृत में वस्तु को सत्त्व असत्त्वमय बताया जा रहा है तो उसके उदाहरण में यही देख लीजिए ना कि हेतु स्वपक्षसाधकता और विपक्ष दूषणता इन दोनो धर्मो से युक्त है तो हेतु कहना जरूरी है, क्योकिं केवल प्रतिज्ञा से साम्य की सिद्धि नही होती। कह दिया इतने से क्या ? इस पर्वत में अग्नि कहने मात्र से अग्नि सिद्ध नही होगी। उसका हेतु देना पडेगा कि धूम होने से। अब जो भी हेतु दिया गया उस हेतु में यह कला होगी ही कि वह हेतु अपने पक्ष को सिद्ध करे, विपक्ष की व्याबृत्ति करे तों ये दो धर्म हेतु के अवष्य होते है। अब इसमें यह देख लीजिए कि जिस स्वरूप से हेतु मे साधकपना है उस रूप से हेतु में दूषकपना नही है। और , जिस रूप से हेतु में दूषकपना है उस रूप से हेतु में साधकपना नही है। यो तो साधकता और दूषकता ये दोनो अत्यन्त भिन्न है, लेकिन है तो वे दोनो हेतु के धर्म । सो हेतु की अपेक्षा से वे कथंचित् अभिन्न है। अब इसमें इस दोष की कल्पना करना निराधार है कि कोई कहे कि जब हेतु की अपेक्षा साधकता और दूषकत्व ये दोनो धर्म अभिन्न है तो जिस रूप से दूषकता हो जाय यों संकर बन जाय कि जिस रूप से साधकता है उस रूप से दूषकता ही रहे। यो व्यतिकर हो जाय अथवा विरोध आदिक हो, साधकता और दूषकता में विरोध हो। इनका भिन्न अधिकरण माना जाय, यह दोष सम्भव तो नही है। सभी दार्षनिक इस बात को स्पष्ट समझ रहें है। तो जैसे इस हेतुवाद में विरोध आदिक 8 दोष नही आ रहे है तो ऐसे ही अनेकान्त क्रिया में सत्त्व और असत्त्व की भी एक वस्तु में वृत्ति हो सकती है। वहॉ भी ये विरोध आदिक 8 दोष सम्भव नही है। अतः वस्तु सदसदात्मक है। और उनकी अपेक्षा देकर यहॉ 7 भंग बताना प्रमाणसिद्ध है।

**सांख्य सिद्धान्त में अनेकान्त प्रकिया के आश्रय का प्रयत्न–** यह बात पूर्णतया तथ्यभूत है कि अनेकान्त प्रक्रिया में सभी वादियों की सम्मति है, क्योकिं किसी न किसी रूप में एकानेक स्वरूप वस्तु सबने ही माना है। जैसे कि सांख्य सिद्धान्त में कहा है कि सत्त्व रजो और तमोगुण की साम्य अवस्था को प्रधान कहते है। तो इस लक्षण में प्रधान की एकानेकात्मकता स्पष्ट विदित हो जाती है। उनके मत में एक प्रधान ऐसा स्वीकार किया गया है जो प्रसन्नता, लघुता, शोक, संताप, कारूण्यं आदिक भिन्न –भिन्न स्वभाव रखते है, ऐसे पदार्थो का एक प्रधान स्वरूप स्वीकार किया है, तब यही तो स्पष्ट हुआ कि यह प्रधान एकानेक स्वरूप है। तो अनेकान्तवाद में भी यही बात कही जाती है। वस्तु सत्त्व असत्त्वमय है, एकानेकस्वरूप है, नित्यानित्यस्वरूप है। तो इस प्रकार की अनेकान्त पद्धति सबने ही अपनाई है। यहां शंकाकार कहता है कि प्रधान तो कोई एक वस्तु ही नही है, किन्तु साम्य

अवस्था को प्राप्त सत्त्व रजो तमो गुण ही प्रधान कहलाते है, क्योकि सत्त्व रजो और तमो गुण के समूह में ही प्रधान पद की शक्ति मानी गई है। इस कारण यहां एकानेक स्वरूप सिद्ध नही किया जा सकता है। उत्तर में कहते है कि यद्यपि तीनो गुणो का समूह ही प्रधान है तो भी यह बात तो अनेकान्तवाद की पद्धति पर प्रकाष डाला जा रहा है। किसी भी रूप में मान लो। तीन गुणो का समूह प्रधान है। ठीक है, पर जाहिर तो यह होगा ना , कि यह प्रधान एक है और त्रिगुणात्मक है। तो एकानेकात्मकपना तो आ ही गया। समुदाय और समुदायी में भेदभाव नही है। तीन गुणों का समूह प्रधान है तो उस प्रधान में और उन तीन गुणो मे क्या भेद है ? उनका ही समूह तो प्रधान माना है। समुदाय के अनेक अवयय वहां तो हुए गुण और समुदायरूप हुई एक वस्तु। इन दोनो मे अभेद माना गया है। जहां गुण पर्यायवान द्रव्य कहा है वहॉ भी तो यही बात है। गुण पर्याय का जो समुदाय है सो ही द्रव्य है। यों ही प्रधान को माना। तीन गुणो का जो समुदाय है सो ही प्रधान है। तो एकानेक स्वरूपता तो आ ही गई। अनेकान्तवाद में यही तो होता है। तो अनेकान्त की प्रक्रिया में सभी वादियो की सम्मति है सबने ही वस्तु को एकानेकस्वरूप माना है।

**नैयायिक सिद्धान्त में अनेकान्त प्रकिया के आश्रय का यत्न** – और भी सुनो ! नैयायिक सिद्धान्त में द्रव्यत्व आदिक को सामान्य विषेष रूप स्वीकार किया है। क्यो है द्रव्यत्व आदिक सामान्य और विषेष स्वरूप की वहॉ अनुवृत्ति और व्यावृत्ति स्वभाव पाया जाता है, याने अनेक पदार्थो में यह भी द्रव्य है । यह भी द्रव्य है, इस प्रकार का अनुवृत्त ज्ञान पाया जाता है। सबकी ही बुद्धि में जो इस प्रकार का उस पदार्थ में विषय है इस कारण तो वह सामान्य स्वरूप हुआ और व्यावृत्त स्वभाव वाले है याने जो अन्य को पृथक करे, जैसे कभी द्रव्य नही है, द्रव्य कर्म नही है तो लो इसमें व्यावृत्त स्वभाव आ गया ना। तो यह विषेषरूप हो गया। यो पदार्थ सामान्य विषेषरूप है यह उनके सिद्धान्त से ही जाहिर होता है। अनेकान्त प्रकिया में भी यही बात है– वस्तु एकानेकात्मक है, सदसदात्मक है, नित्यानित्यामक है, सामान्य विषेषात्मक है। जो अनेकान्तवाद की प्रक्रियायें है उनका ही अनुसरण सबको करनाही पड़ा है। देखिये जितने भी द्रव्य होंगे– जैसे आत्मा, पृथ्वी, जल आदिक द्रव्य माने है, यह भी द्रव्य है, सभी उन पदार्थो मे द्रव्यपने का ज्ञान अनुगत है। यह अनुवृत्त परिज्ञान है। यह भी द्रव्य है, यह भी द्रव्य है अर्थात मानते हो कि द्रव्यत्व सामान्य स्वरूप है और जब द्रव्य गुण कर्म ये सब पदार्थ सामने रखे है तो वहॉ व्यावृत्ति का ज्ञान होता है। द्रव्य गुण नही है। द्रव्य कर्म नही है आदिक व्यावृत्ति का ज्ञान होता है। तो ऐसी दो प्रकार की पद्धतियों के विषय होने से देखो द्रव्यत्व आदिक सामान्य और विषेषरूप है। तो सिद्ध हुआ ना, कि यह द्रव्य सामान्य विषेषात्मक है। यों ही गुणों में लगा लो। गुण भी अनेक होते है। उन अनेक गुणों में यह भी गुण है यह तो हुआ अनुवृत बुद्धि का विषय । याने सामान्य और गुणकर्म आदिक में परस्पर कर्म गुण नही है यह हुआ व्यावृत्ति बुद्धि का विषय। तब यह विषेषस्वरूप हुआ। तब देख लिया ना कि एक ही पदार्थ में सामान्य विषेषात्मक इस सिद्धान्त ने भी माना है। कर्म में भी इसी तरह लगा लीजिए। जितने प्रकार के कर्म है– 5 प्रकार के माने गए उत्क्षेपण, अवक्षेपण आदिका इन सब कर्मो में यह कर्म है यों तो होता है अनुगत बुद्धि का विषय। सो सामान्यस्वरूप और गुण कर्म नही है, द्रव्य कर्म नही है यह हुआ पृथक करने की बुद्धि का विषय अर्थात् यह विषेष स्वरूप हुआ। तो यों सभी पदार्थ सामान्यविषेषात्मक है, यों नैयायिक सिद्धांत में भी अनेकान्त प्रक्रिया मानी गई है।

सौगत सिद्धान्त में अनेकान्त प्रकिया के आश्रय का यत्न– अब सौगत सिद्धान्त की बात सुनो। वहां माना गया है कि एक मेचक ज्ञान चित्रज्ञान अनेकाकार है। जैसे पंचवर्ण

स्वरूपत्न मेचक होता है। जब ज्ञान किया तो वह एक प्रतिभासत्मक ही तो नही हुआ मगर एक प्रतिभास स्वरूप है। पंचवर्ण वाले मेचक रत्न का ज्ञान यदि एक प्रतिभासात्मक है तो भी चित्रज्ञान न रहा। यों तो हुआ यह अनेकाररूप और नील पीत आदिक नाना आकारों का जो ज्ञान है वह चित्रज्ञान है, एकाकार ही न रहा। यों तो चित्रज्ञान अनेकाकार स्वरूप है, फिर भी मेचकज्ञान अनेक नही है। तभी तो उसमें एक–एक वचन का प्रतिबोध किया जाता है कि यह है मेचकज्ञान। तो वह मेचक ज्ञान, चित्र ज्ञान तो एक ही है। तब देखो ना, कि यह ज्ञान अनेकानेक स्वरूप हो गया। अनेक स्वरूप तो यो है कि उसमें प्रतिभास नाना है। और , वह मेंचक ज्ञान एकस्वरूप यो है कि वह परिणमन है, ज्ञान है और इसी रूप में अनुभव होता है कि यह मेचक ज्ञान है, ऐसा किसी को अनुभव नही होता कि यह सब मेचक ज्ञान है। एक ज्ञान में एक ही ज्ञान की बात कही जाती है। तात्पर्य यह है ि कइस सुगत सिद्धान्त में भी चित्रज्ञान को अनेकात्मक कहा गया है। तो अनेकान्त की प्रकिया बिना कोई भी दार्षनिक अपना मन्तव्य सिद्ध नही कर सकता।

**चार्वाकमन्तव्य में अनेकान्त प्रकिया के आश्रय का यत्न**– और भी देखिये ! चार्वाक ने माना है– पृथ्वी, जल , अग्नि, वायु ये चार तत्व है और उन तत्त्वों से चेतन होता है। जैसे कि कोदो आदिक से मद शक्ति प्रकट होती है। ऐसा चार्वाक के गुरू बृहस्पति का सिद्धान्त है। उनके सूत्र में कहा गया है। तो यहॉ विचार करें कि यह सही है या नही ? यह तो अन्य प्रकरण की बात है। यहॉ प्रकरण केवल अनेकान्त प्रक्रिया का बताया जा रहा है तो यहॉ उस चेतन्य को पृथ्वी आदिक भूत चतुष्टय परिणाम माना। तो यहॉ देखो ! उसने एकानेकात्मक स्वीकार कर लिया ना ? वह चेतन एक है जो कि उन चारो से उत्पन्न होता है और वह अनेक रूप है क्योंकि पृथ्वी आदिक चारों से अतिरिक्त अन्य एक कुछ नही माना गया है। कहीं वे 5 होते है कि 4 तो पृथ्वी आदिक और 1 चेतन। अगर इस तरह मान लें तो चेतन एक दूसरा तत्त्व बन जायगा। फिर 4 भूत है इस तरह का सिद्धान्त न रहेगा। तो देखिये। उस एक को उन्होने अनेक स्वरूप माना । अब और भी विचार करिये ! चार्वाक सिद्धान्त में पृथ्वी आदिक एक –एक पदार्थ चेतन नही है, क्योकि ऐसा मानने से घट पट आदिक सभी पदार्थ चेतन बन जायेगे। उनका सिद्धान्त यह है कि पृथ्वी आदिक अनेक स्वरूप यह एक चेतन है। यहॉ प्रक्रिया पर दृष्टि डालिए कि एक अनेकात्मक विधि से ही वे ऐसा बोल सकें। अनेकान्त की प्रक्रिया बिना न तो कोई किसी बात को सिद्ध कर सकेगा। वह मिथ्या हो या समीचीन हो यह तो एक निर्णय की बात है। अगर वचन व्यवहार सिद्धान्त की स्थापना यह अनेकान्त की प्रक्रिया नही हो सकता। दार्षनिकता की बात तो यह है ही लेकिन लोक व्यवहार भी बिना अनेकान्तवाद की प्रक्रिया का अनुसरण किए बन नही सकता। सब जीव ये नित्यानित्यात्मक है। तो है अथवा व`अब नही रहे ये दोनो बातें प्रत्येक मनुष्य में लोग समझते है तभी व्यवहार चल रहा है । किसी को कुछ उधार दिया तो उसी से क्यों मॉगते है ? अटपट किसी अन्य से क्यों नही मॉगते ? इससे सिद्ध है कि नित्यपना है, जिसे दिया था वही है यह , तब उधार देने लेने की प्रक्रिया बनी और यदि पूर्णतया उस ही समय की अवस्थावान हो तो भी नही बन सकता। परिणाम तो होता ही है। काल का परिणमन हुआ, अवस्थाभेद हुआ, दिन भी कुछ गुजरे । तभी उसकी सूद भी कुछ बना। यों इन सभी बातों से अनित्यता भी जाहिर होती है। तो यो नित्यानित्यात्मक माना तब यह लोक व्यवहार बन सका। तो इस तरह अनेकान्त की प्रकिया बिना कोई भी दार्षनिक न अपना सिद्धान्त स्थापित कर सकता और न कुछ लोक व्यवहार ही बन सकता।

**मीमांसक सिद्धान्त में अनेकान्त प्रकिया के आश्रय का यत्न**— मीमांसक सिद्धान्त में ज्ञान के सम्बन्ध में यह बताया गया है कि प्रमाता , प्रमिति एवं प्रमेयाकार एक ही ज्ञान होता है। प्रमाता का अर्थ है जानने वाला आत्मा। प्रमिति का अर्थ जानन क्रिया। और प्रमेय का अर्थ है, ज्ञान के विषयभूत अनेक पदार्थ। तो जो ज्ञान नही होता है वह ज्ञान एक है और प्रमाता प्रमिती तथा प्रमेयाकार ही है। इसका हेतु यह है कि अनुभव ही इस प्रकार होता है— मैं घट को जानता हॅू। यहां मै तो हुआ प्रमाता और घट हुआ प्रमेय और जानता हॅू यह है प्रमिति। यहॉ अनुभव एक है और उस एक अनुभव में सम्बन्ध है इन तीन का । याने ज्ञान की जो मुद्रा बनी वह मुद्रा उस प्रमाता, प्रमिति और प्रमेय के विषयरूप से बनी। ज्ञान कोई ऐसा नही है कि जो केवल एक प्रमाता के ही आकार हो— अहं ! इससे ज्ञान किया और यदि ज्ञान होता है तों मैं अपने को जान रहा हॅू। तो वहॉ तीन बातें आ ही गई। मै हूं प्रमाता, अपने को हुआ प्रमेय और जानता हूं यह है प्रमाण। तो ज्ञान की जो मुद्रा बनती है, वह बनती है प्रमाता प्रमिती तथा प्रमेय के आकार रूप से। दूसरा हेतु यह है कि ज्ञान जितने होते है वे सब स्वतः प्रकाषक होते है। तो जब स्वतः प्रकाषक हुए तो आकार ज्ञान का इन तीन रूप होगा ही । ये भिन्न नही है, पर से ज्ञान आये ऐसी बात नही है। इसलिए यहॉ विषयभूत परपदार्थ आकार की बात नही कह रहे, किन्तु ज्ञान में विषयपने से आये हुए प्रमेय की बात कही जा रही है और वह प्रकाषन स्वतः हुआ है और वह स्व है, प्रमाता और ज्ञान में जानन क्रिया तो है ही । तो यों जो ज्ञान होता है वह प्रमाता प्रमिति और प्रमेयाकार होता है। ऐसा मीमांसक सिद्धान्त में कहा गया है। अब उक्त मीमांसक सिद्धान्त में यह परखना है कि अनेकान्त की प्रक्रिया किस तरह अपनाई गई है। यहां यह स्वीकार किया है कि प्रमाता प्रमिति और प्रमेयरूप अनेक पदार्थ उनके विषयपने से सहित एक ज्ञान है। ज्ञान एक है जिसमें विषय ये तीन हुए। ऐसा ज्ञान स्वीकार किया है तो यहॉ विषयपने की अपेक्षा से तो बात आयी तीन और ज्ञानस्वरूप की अपेक्षा से वह है एक ही। विषयपने का ज्ञान स्वरूपता होने से उन तीन के विषयात्मक ही यह एक ज्ञान स्वीकार किया है। तात्पर्य तो यही हुआ कि यह एक ज्ञान त्रितयात्मक है, एकानेकान्तात्मक है, यही तो अनेकान्त की प्रक्रिया है।

**अनेकान्त प्रकिया मे वस्तुपरिचय की समीचीनता**— अब उक्त सब बातों में सप्तभंगी बनाई जा सकती है। ज्ञान स्यात एक है, ज्ञान स्यात अनेक है। ज्ञान स्यात एक और अनेक है, ज्ञान स्यात अवक्तव्य है, ज्ञान स्यात एक अवक्तव्य है। ज्ञान स्यात अनेक अवक्तव्य है, ज्ञान स्यात एक अनेक अवक्तव्य है। इसी प्रकार इन ऊपर बताये गए सभी दार्षनिकों के सिद्धान्त में एक अनेक सामान्य विषेष सभी अनेकान्त प्रक्रियावों में सप्तभंगी लगायी जा सकती है। जैसे कि नैययिका जन द्रव्य गुण कर्म आदिक पदार्थ मानते है तो वहॉ सामान्य विषेष घटित हो ही जाता है। द्रव्य इस प्रकार अनुवृत्तिका ज्ञान होने से सामान्य आया और द्रव्य गुण नही , कर्म नही, ऐसी व्यावृत्तिका बोध होने से सामान्य आया। अब उस ही एक को जैसे द्रव्य ही लिया तो यह स्यात सामान्य रूप है। यह स्यात विषेषणरूप है, यह स्यात सामान्य विषेषरूप है, यह स्यात अवक्तव्य है, यह स्यात सामान्य अवक्तव्य है यह स्यात विषेष अवक्तव्य है, यह स्यात् सामान्य विषेष अवक्तव्य है। तो यों सभी दार्षनिकों ने अपने सिद्धान्त निर्माण में अनेकान्त प्रक्रिया को अपनाया है और वास्तविकता भी यही है कि प्रक्रियावों को अपनाये बिना न तो कोई दर्षन कर सकता, न लोकव्यवहार हो सकता। बल्कि यह भी कह सकते है कि अनेकान्त प्रक्रिया के अपनाये बिना कोई बोल भी नही सकता।

**अनेकान्तप्रकिया के बिना बोधगति का अभाव**– देखिये ! किसी ने कुछ कहा तो जो कहा सो है, जो नही कहा गया, सो नही है। कोई कहता है कि मै सत्य ही बोलता हूॅ तो उसके साथ –साथ यह तो लगा ही हुआ है कि मैं असत्य नही बोलता हूं। दोनो बातें मानने से ही अभिप्राय बनेगा। भले ही उनमें से बात एक ही कही जाय। लेकिन दूसरी बात उसके साथ लगी हुई ही है। किसी भी चीज के सम्बन्ध में कोई यह कहे कि यह है तो उसके साथ यह दूसरा भंग लगा ही हुआ है कि यह अन्य कुछ नही है– यह ही है, यह अन्य कुछ नही है। और फिर ये दो बातें एक साथ नही कही जा सकती । इस कारण अवक्तव्य है। ये तीन स्वतन्त्र भंग तो स्पष्ट ही आ गए। फिर इनका संयोगी भंग बनकर 7 भंग हो जाते है। तो सप्तभंगी अनेकान्त प्रक्रिया यह प्राकृतिक चीज है और यह मानना ही होगा। अब केवल खेद की बात इतनी ही है कि प्रयोग में तो सब अनेकान्त प्रक्रियावों को लेना है, पर अनेकान्त की पद्धति को समीचीनता का रूप देने में संकोच करते है। क्योकिं उससे अनेकान्त प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से प्रसिद्ध कर लेंगे दार्षनिक तो दर्षन के प्रसंग में एक भी विवाद नही रह सकता। इस प्रक्रिया के मानते ही धीरे– धीरे सर्वत्र सुधार होकर वास्तविकता पर उपयोग पहुंच जायगा। द्रव्य के सम्बन्ध में जैसे सब लोग समझ रहे है कि यह पदार्थ है तो वह पदार्थ है तो पदार्थ शक्तिमय है और किसी न किसी अवस्था में है। और, ऐसे अनेक पदार्थो के साथ समता है फिर भी सत्त्व और परिणमन की दृष्टि से एक की अनेक से भिन्नता है। लेकिन इस विषेषता के वर्णन में द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य विषेष ये 5 बातें आ जाती है। अब ये 5 बातें अलग –अलग है कहॉ ? प्रदेष तो वही वहीं है इन 5 के लिए किसी भी द्रव्य में जो अवस्था बनती है वह उसके प्रदेष में ही है। जो गुण है वह उसके प्रदेष में ही है। अब उनकी तुलना करने से समता विषमता का जो ज्ञान हुआ वही कहीं अन्यत्र नही पड़ा है। जिन धर्मो को निरख कर हम समता विषमता को मानते है वह तत्त्व उन ही प्रदेषो में है। तो जब ये 5 बातें एक ही जगह है तो समवाय फिर क्या रहा ? कथंचित् तादात्म्य ही तो समवाय है और अभाव किसी के भावरूप ही होता है, तब ये 6 पदार्थ 7 पदार्थ कहॉ रहे ? और इस धुन में जिसे पदार्थ कहना चाहिए था वे सब छूट गए। तो अनेकान्त प्रक्रिया अपनाने पर धीरे–धीरे सभी का सुधार होकर वस्तु की वास्तविकता पर उपयोग पहुंच ही जायेगा।

**वस्तु के सत्य परिज्ञान के लिए स्याद्वाद के आश्रय की आवश्यकता**– वस्तु का सत्य परिज्ञान करने के लिए स्याद्वाद का आश्रय करना परम आवष्यक है। स्याद्वाद का आश्रय किये बिना वस्तु के सम्बन्ध में यथार्थ परिज्ञान नही हो सकता है। वस्तु तत्त्व के यर्थाथ परिज्ञान बिना मोह नही हट सकता। मोह के हटे बिना राग द्वेष से दूर नही हो सकते। रागद्वेष दूर हुए बिना संसार के जन्म मरण संकट मिट नही सकते। जन्म मरण का संकट मिटे, इस ही में आत्मा का श्रेय है और यही सर्वोपरि वैभव है।तो ऐसी मुक्ति परम वैभव को पानें के लिए इन तत्वों को परिज्ञान करना आवष्यक है और उनके यथार्थ परिचय का आधार है स्याद्वाद। इसी हेतु इस स्याद्वाद का निरूपण करने वाली सप्तभंगी तरंगिणी अनेक भंगो से व्याप्त है और सिद्धान्त रूपी समुद्र से संयुक्त है। मानो जैसे कोई एक समुद्र होता है और उस समुद्र मे लहरें अनेक होती है। ऐसी ही समझिये कि यह सिद्धान्त समुद्र है। सिद्धान्त कहते है वस्तु तत्त्व का वर्णन करने वाला शब्द और ज्ञानरूप आगम को। उस सिद्धान्त समुद्र में अनेक लहरे उठ रही है स्याद्वाद के प्रताप से। तो जैसे– जैसे कोई संतप्त मनुष्य समुद्र की लहरों का सेवन करके अपने संताप को समाप्त करके आनन्द प्राप्त करता है इसी प्रकार इस सिद्धान्त समुद्र से अनेक लहरों का स्पर्ष करके विद्वान पुरूष भी अज्ञान संताप को हटाकर , मोह संताप को दूर करके विषुद्ध सत्य आनन्द को प्राप्त करते

है। सो ग्रन्थकार यह भावना कर रहे कि अनेक भंगो से व्याप्त सिद्धान्त समुद्र से संयुक्त यह सप्तभंगी विद्वानों को आनन्द प्रदान करें !